॥ श्रीहरिः ॥

2066

श्रीनाभादासजीकृत

# श्रीभक्तमाल

[ श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीका
एवं विस्तृत हिन्दी व्याख्यासहित ]

गीताप्रेस, गोरखपुर

2066

॥ श्रीहरि: ॥

श्रीनाभादासजीकृत

# श्रीभक्तमाल

[ श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीका
एवं विस्तृत हिन्दी व्याख्यासहित ]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

करके सुखी हुए। यह देखकर बादशाह अति प्रसन्न हुआ और श्रीनामदेवजीके चरणोंमें पड़ गया।

यह विचित्र चमत्कार देखकर बादशाहने श्रीनामदेवजीसे कहा कि आप कृपा करके कोई देश या गाँव ले लीजिये, जिससे मेरा भी कुछ नाम हो जाय। आपने उत्तर दिया कि हमें कुछ भी नहीं चाहिये। फिर बादशाहने एक मणिजटित शय्या आपको दी। श्रीनामदेवजी उसे अपने सिरपर रखकर चलने लगे। तब उसने कहा कि दस-बीस आदमी मैं आपके साथ भेजता हूँ, वे इस पलंगको ले जायँगे और आपके निवासस्थानतक पहुँचा देंगे। आपने बिलकुल मना कर दिया और कहा कि यह भगवान्‌के शयनका पलंग है, मैं उनका सेवक हूँ, अतः मुझे ही अपने सिरपर रखकर ले जाना चाहिये। फिर भी बादशाहने कुछ रक्षक भेजे। आगे आपने विचारा कि यह मूल्यवान् वस्तु है, इससे अनेक संकट आ सकते हैं। भजनमें बाधा हो सकती है। इस कारण मार्गमें श्रीयमुना नदीके अथाह जलमें उस पलंगको डाल दिया। राजाको इसकी सूचना मिली तो वह चौंककर आश्चर्यमें पड़ गया। सिपाहियोंसे कहा—उन्हें शीघ्र बुलाकर लाओ। श्रीनामदेवजी फिर आये और बोले कि अब क्यों बुलाया? तब बादशाहने कहा कि जो पलंग मैंने आपको दे दिया है, जरा उसे यहाँ लाकर कारीगरोंको दिखा दीजिये। उसी प्रकारका नया दूसरा बनवाना है। श्रीनामदेवजी बादशाहको लेकर नदीपर आये और जलमें प्रवेश करके अनेक पलंग वैसे और उससे भी मूल्यवान् निकाल-निकालकर डाल दिये और बादशाहसे बोले—आप अपना पलंग पहचान लो। यह देखकर उसकी सुधि-बुधि जाती रही।

***इस वृत्तान्तका वर्णन प्रियादासजी इन कवित्तोंमें इस प्रकार करते हैं—***

**नृप सो मलेच्छ बोलि कही मिले साहिब को दीजिये मिलाय करामात दिखराइयै।**
**होय करामात तो पै काहे को कसब करैं? भरैं दिन एपैं बांटि सन्तन सों खाइयै॥**
**ताहीके प्रताप आप इहां लौं बुलायो हमें दीजिये जिवाय गाय घर चलि जाइयै।**
**दई लै जिवाय गाय सहज सुभाय ही में अति सुख पाय पांय पर्‍यो मन भाइयै॥ १३४॥**
**लेवो देश गांव जाते मेरो कछु नांव होय चाहिये न कछु दई सेज मनि मई है।**
**धरि लई सीस देऊँ संग दस बीस नर नाहीं करि आये जल मांझ डारि दई है॥**
**भूप सुनि चौंकि पर्‍यौ ल्यावो फेरि आये कहौ कही नेकु आनिके दिखावो कीजै नई है।**
**जलतैं निकासि बहुभांति गहि डारी तट लीजिये पिछानि देखि सुधि बुधि गई है॥ १३५॥**

## (घ) नामदेवजीकी भक्तिका माहात्म्य

श्रीनामदेवजीकी करामात देखकर बादशाह भयवश उनके चरणोंमें आ गिरा और प्रार्थना करने लगा कि मुझे ईश्वरके दण्डसे बचा लीजिये। श्रीनामदेवजीने कहा—यदि क्षमा चाहते हो तो एक बात करो कि पुनः इस प्रकार कभी किसी साधुको दुःख मत देना। इसे बादशाहने स्वीकार कर लिया। फिर उन्होंने कहा कि फिर अब कभी मुझे मत बुलाना। ऐसा कहकर श्रीनामदेवजी वहाँसे चल दिये। उनकी इच्छा हुई कि पहले पण्ढरीनाथजीके मन्दिरमें चलूँ। प्रभुके नामगुण-कीर्तनका नित्य-नेम पूरा कर लूँ। मन्दिरपर गये तो द्वारपर बहुत भीड़-भाड़ दिखायी पड़ी। (जूतोंकी चोरीकी शंकासे शायद मन एकाग्र न हो, इसलिये कपड़ेमें लपेटकर) जूतोंको कमरमें बाँध लिया। हाथोंसे भीड़को हटाकर भीतर गये। दर्शन करके पदगान

* विनती सुन जगदीश हमारी।
तेरो दास आस मोहिं तेरो इत करु कान मुरारी॥
दीनानाथ दीन है टेरूँ गाइहिं क्यों न जियावो।
आछे सबै अंग हैं याके मेरे यशहिं बढ़ावो॥
जो कहूँ याके कर्महिं में नहिं जीवन लिख्यो विधाता। तो अब नामदेव आयुष तें होहु तुमहिं प्रभु दाता॥

आरम्भ करना ही चाहते थे कि किसीने जूतोंको देख लिया और रुष्ट होकर पाँच-सात चोटें लगायीं। फिर धक्का देकर मन्दिरसे बाहर निकाल दिया। परंतु श्रीनामदेवजीके मनमें पण्डोंके इस व्यवहारसे थोड़ा भी क्रोध नहीं आया।

अब श्रीनामदेवजी मन्दिरके पिछवाड़े जाकर बैठ गये और भगवान्‌से कहने लगे कि प्रभो! आपने यह बहुत ही अच्छा किया जो मुझमें मार लगायी। मेरे अपराधका दण्ड तुरंत ही दे दिया। अब नित्य-नियमके अनुसार पद गाता हूँ, सुनो। यह कहकर नामदेवजी पद गाने लगे, जिसे सुनते ही भगवान्‌का हृदय करुणासे भर गया। भक्तको विरह-व्यथित एवं दीन देखकर प्रभु व्याकुल हो गये। सम्पूर्ण मन्दिरको घुमाकर श्रीनामदेवकी ओर द्वार कर दिया। यह देखकर जितने भी वेदपाठी पण्डा-पुजारी थे, सबके मुखकी कान्ति क्षीण हो गयी, सब ऐसे फीके पड़ गये, जैसे पानी उतरनेसे मोती फीका हो जाता है। अब उनके हृदयमें श्रीनामदेवजीके प्रति बड़ी भारी श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हो गयी। सबोंने श्रीनामदेवजीके सुख देनेवाले चरणोंमें गिरकर क्षमा-याचना की। उन्हें प्रसन्न देखकर सबको शान्ति प्राप्त हुई।

*इस घटनाका वर्णन प्रियादासजी इस प्रकार करते हैं—*

**आनि पर्‌यो पांय प्रभु पास तें बचाय लीजै कीजै एक बात कभू साधु न दुखाइयै।**
**लई यही मानि फेरि कीजिये न सुधि मेरी लीजिये गुननि गाय मन्दिर लौं जाइयै॥**
**देखि द्वार भीर पग दासी कटि बांधी धर कर सों उछीर करि चाहैं पद गाइयै।**
**देखि लीनी वेई काहू दीनी पांच सात चोट कीनी धका धकी रिस मनमें न आइयै॥ १३६॥**
**बैठे पिछवारे जाइ कीनी जू उचित यह लीनी जो लगाइ चोट मेरे मन भाइयै।**
**कान दैकैं सुनो अब चाहत न और कछु ठौर मोकों यहीं नित नेम पद गाइयै॥**
**सुनत ही आनि करि करुना विकल भये फेर्‌यो द्वार इतै गहि मन्दिर फिराइयै।**
**जेतिक वे सोती मोती आब-सी उतरि गई भई हिये प्रीति गहे पाँव सुखदाइयै॥ १३७॥**

## (ङ) सर्वत्र भगवद्दर्शन

एक बार अकस्मात् ही सायंकालमें श्रीनामदेवजीके घरमें आग लग गयी। पर आप तो जल, थल और अग्निमें सर्वत्र अपने प्यारे प्रभुको ही देखते थे। अत: अपने घरमें जो दूसरे सुन्दर पदार्थ घी, गुड़ आदि जलनेसे रह गये थे, उन्हें भी उठा-उठाकर जलती हुई आगमें डालते हुए प्रार्थना करने लगे—हे नाथ! इन सब वस्तुओंको भी स्वीकार कीजिये। भक्तकी ऐसी सुन्दर भावना देखकर भगवान्‌ने प्रकट होकर दर्शन दिया और हँसकर बोले कि अत्यन्त कोमल मुझ श्यामसुन्दरको तीक्ष्ण, असह्य अग्निकी ज्वालामें भी देखते हो। श्रीनामदेवजीने कहा—प्रभो! यह आपका भवन है, आपके अतिरिक्त दूसरा कौन यहाँ आ सकता है! यह सुनकर प्रभु प्रसन्न हो गये और अग्नि शीतल हो गयी। प्रसन्न हुए भगवान्‌ने अपने हाथोंसे नामदेवजीका सुन्दर छप्पर छा दिया। सुबह होते ही लोगोंने वैसा सुन्दर छप्पर देखा तो आश्चर्यमें पड़ गये और नामदेवजीसे पूछने लगे कि ''यह किसने छाया है?' जिसने यह छाया है, उसे बता दो तो हम भी छवा लें। जितनी मजदूरी वह माँगेगा, हम उतनी दे देंगे।'' नामदेवजीने कहा—ऐसे छप्परकी छवाईके लिये तन, मन, प्राण—सब देने पड़ते हैं।

*इस घटनाके सम्बन्धमें श्रीप्रियादासजी निम्न कवित्तमें इस प्रकार कहते हैं—*

**औचक ही घर माँझ सांझ ही अगिनि लागी बड़ो अनुरागी रहि गई सोऊ डारियै।**
**कहैं अहो नाथ सब कीजिये जु अंगीकार हँसे सुकुमार हरि मोहीको निहारियै॥**
**तुम्हरो भवन और सकै कौन आइ इहाँ भये यों प्रसन्न छानि छाई आप सारियै।**
**पूछे आनि लोग कौन छाई हो छवाइ दीजै लीजै जोई भावै तनमन प्राण वारियै॥ १३८॥**

## (च) श्रीनामदेवजीद्वारा तुलसीदल और रामनामकी महिमाका प्राकट्य

पण्ढरपुरमें एक बहुत बड़ा धनी सेठ रहता था। उसके यहाँ तुलादानका उत्सव हुआ। उसने अपनेको सोनेसे तौलकर नगरके सभी लोगोंको सोना दिया। सेठने लोगोंसे पूछा कि कोई रह तो नहीं गया? तब लोगोंने कहा—श्रीनामदेवजी भगवान्‌के बड़े प्रेमी सन्त हैं, वे रह गये हैं। सेठने कहा—उन्हें बुलाकर लाओ। सेठके नौकर, मुनीम बुलाने गये। दान ब्राह्मणोंको दो, हमें कुछ भी नहीं चाहिये, यह कहकर बड़भागी श्रीनामदेवजीने पहली और फिर दूसरी बार लोगोंको वापस लौटा दिया, जानेसे मना कर दिया। पर तीसरी बार अति आग्रह देखकर आप सेठके घरपर आये और सेठसे बोले—तुम बड़े भाग्यशाली हो। कहो—हमसे क्या कहते हो? सेठजीने कहा—आप मेरे द्वारा दिये गये कुछ धनको स्वीकार कीजिये, जिससे मेरा कल्याण हो। नामदेवजीने कहा—तुम्हारा कल्याण तो हो गया, अब मुझे कुछ देनेकी आपकी प्रबल इच्छा है तो दीजिये।

श्रीनामदेवजीका एकमात्र प्रिय सर्वस्व तो श्रीगोविन्दचरणप्रिय श्रीतुलसी हैं, ऐसे श्रीतुलसीके पत्तेमें आधा राम-नाम अर्थात् केवल 'रा' लिखकर उसे दिया और कहा कि इसके बराबर तौलकर दे दीजिये। सेठने अभिमानपूर्वक कहा—महाराज! क्यों हँसी करते हो, इतने थोड़ेसे सोनेसे क्या होगा? कृपा करके कुछ अधिक लीजिये। जिससे मुझ दाताकी हँसी न हो। नामदेवजीने कहा—इसके बराबर सोना तौलकर देखो तो सही, फिर देखो कि क्या विचित्र खेल होता है। यदि तुम इसके बराबर पूरा करके सोना दे दोगे तो मैं तुमपर प्रसन्न होऊँगा। यह सुनकर सेठजी एक तौलनेका काँटा ले आये और एक ओर तुलसीपत्र तथा दूसरी ओर सोना चढ़ाया। उस समय बड़ा विचित्र आश्चर्य हुआ, सोनेका ढेला तुलसीपत्रसे बराबर नहीं हुआ। सेठजी उदास हो गये, जिससे पाँच-सात मन तौला जा सके—ऐसा बड़ा तराजू मँगवाया। उसपर एक ओर तुलसीपत्र दूसरी ओर घरभरका सम्पूर्ण सोना-चाँदी आदि रखा। पूरा न पड़नेपर जाति-कुटुम्बवालोंके घरोंसे ला-लाकर बहुत-सा धन रखा, परंतु वह सब तुलसीपत्रके बराबर नहीं हुआ।

श्रीरामनामलिखित तुलसीपत्रके महत्त्वको देखकर घरके सभी स्त्री-पुरुषोंके समेत सेठजीको बड़ा शोक तथा दुःख हुआ। श्रीनामदेवजीने विचारा कि अभी इन्हें तुलसीपत्र एवं श्रीरामनामकी महिमाका पूरा अनुभव नहीं हुआ है, इसलिये वे बोले—आपलोगोंने जितने व्रत-दान और तीर्थस्नान आदि पुण्यकर्म किये हों, उनका संकल्प करके जल डाल दीजिये। सभी लोगोंने पुण्योंका स्मरण कर-करके संकल्प पढ़कर जल डाला, पर इस उपायके करनेसे भी काम न चला। जिधर तुलसीपत्र रखा था, वह पलड़ा अपने पैर भूमिमें गाड़ रहा था। यह देखकर सभी लोग लज्जित हो गये और प्रार्थना करने लगे कि इतना ही ले लीजिये। श्रीनामदेवजीने कहा—हम इस तुच्छ धनको लेकर क्या करें? हमारे पास तो रामनाम-धन है, यह धन उसकी बराबरी नहीं कर सकता है। इस धनसे कल्याण होना सम्भव नहीं है। नामकी और तुलसीकी महिमा देखकर आजसे इस धनको तुच्छ समझो और रामनामरूपी धनसे प्रेम करो, गलेमें तुलसी धारण करो, रामनाम जपो। यह कहकर श्रीनामदेवजीने सबके हृदयमें भक्तिका भाव भर दिया। सबकी बुद्धि प्रेमरसमें भीग गयी।

***इस भक्तिभावका वर्णन श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार किया है—***

**सुनौ और परचै जे आये न कवित्त मांझ बांझ भई माता क्यों न जौ न मति पागी है।**
**हुतो एक साह तुलादान को उछाह भयो दयो पुर सबै रह्यौ नामदेव रागी है॥**
**ल्यावो जु बुलाइ एक दोइ तौ फिराइ दिये तीसरे सों आये कहा कहो बड़भागी है।**
**कीजिये जु कछु अङ्गीकार मेरो भलो होय भयो भलो तेरो दीजै जो पै आस लागी है॥ १३९॥**

जाके तुलसी है ऐसे तुलसी के पत्र मांझ लिख्यो आधो राम नाम यासों तोल दीजियै।
कहा परिहास करो ढरो ह्वै दयाल देखि होत कैसो ख्याल याकों पूरो करो रीझियै॥
ल्यायो एक कांटो लै चढ़ायो पात सोना संग भयो बड़ो रंग सम होत नाहिं छीजियै।
लई सो तराजू तासों तुलै मन पांच सात जाति पांतिहू को धन धर्‌यो पै न धीजियै॥ १४०॥
पर्‌यो शोच भारी दुःख पावैं नर-नारी नामदेवजू विचारी एक और काम कीजिये।
जिते व्रतदान औ स्नान किये तीरथमें करियै संकल्प यापै जल डारि दीजिये॥
करेऊ उपाइ पात पला भूमि गाड़े पांय रहे वे खिसाय कह्यौ इतनोई लीजिये।
लैकै कहा करैं सरवरहू न करै भक्तिभावसों लैं भरै हिये मति अति भीजिये॥ १४१॥

## (छ) श्रीनामदेवजीकी एकादशी-व्रतके प्रति निष्ठा

एक बार भगवान्‌के मनमें यह उमंग उठी कि श्रीनामदेवजीकी एकादशीव्रत-निष्ठाका परिचय लिया जाय। यह विचारकर उन्होंने एक अत्यन्त दुर्बल ब्राह्मणका रूप धारण किया। एकादशीव्रतके दिन श्रीनामदेवजीके पास पहुँचकर बड़ी दीनता करके अन्न माँगने लगे कि मैं बहुत भूखा हूँ, कई दिनसे भोजन प्राप्त नहीं हुआ है, कुछ अन्न दो। श्रीनामदेवजीने कहा—आज तो एकादशी है, (दूध-फलाहारादि कर लीजिये) अन्न न दूँगा। प्रातःकाल जितनी इच्छा हो उतना अन्न लीजियेगा। दोनों अपनी-अपनी बातपर बड़ा भारी हठ कर बैठे। इस बातका शोर चारों ओर फैल गया। लोग इकट्ठे हो गये और श्रीनामदेवजीको समझाने लगे कि इस भूखे ब्राह्मणपर क्रोध क्यों करते हो, तुम्हीं मान जाओ, इसे कुछ अन्न दे दो। श्रीनामदेवजी नहीं माने, दिनके चौथे पहरके बीतनेपर उस भूखे ब्राह्मणदेवने इस प्रकार पैर फैला दिये कि मानो मर गये। गाँवके लोग श्रीनामदेवजीके भावको नहीं जानते थे। अतः उन लोगोंने नामदेवजीके सिर ब्राह्मण-हत्या लगा दी और उनका समाजसे बहिष्कार कर दिया। पर नामदेवजी बिलकुल चिन्तित नहीं हुए।

अपने नियमके अनुसार जागरण और कीर्तन करते हुए श्रीनामदेवजीने रात बितायी, प्रातःकाल चिता बनाकर उस ब्राह्मणके मृतक-शरीरको गोदमें लेकर उसपर बैठ गये कि हत्यारे शरीरको न रखकर प्रायश्चित्तस्वरूप उसे भस्म कर देना ही उत्तम है। उसी समय भगवान् प्रकट हो गये और मुसकराकर कहने लगे कि मैंने तो तुम्हारी परीक्षा ली थी, तुम्हारी एकादशीव्रतकी सच्ची निष्ठा मैंने देख ली, वह मेरे मनको बहुत ही प्यारी लगी, मुझे बड़ा सुख हुआ। इस प्रकार दर्शन देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। लोगोंने जब यह लीला देखी तो श्रीनामदेवजीके चरणोंमें आकर गिरे और प्रीतिमय चरित्र देखकर सभी भक्त हो गये।

एक बार एकादशीकी रात्रिको जागरण-कीर्तन हो रहा था। भगवद्भक्तोंको बड़ी प्यास लगी। तब श्रीनामदेवजी जल लानेके लिये नदीपर गये, प्रेतभयसे दूसरोंको जानेका साहस न था। श्रीनामदेवजीको आया देखकर महाविकरालरूपधारी प्रेतराज अपने साथियों-समेत आकर चारों ओर फेरी लगाने लगा। उसका स्वरूप एवं उसकी माया देखकर श्रीनामदेवजी थोड़ा भी भयभीत न हुए, उसे अपने इष्टका ही स्वरूप माना और उन्होंने फेंटसे झाँझ निकालकर तत्काल एक पद* गाया और प्रणाम किया। भगवान् तो बड़े ही दयालु हैं, प्रेतरूप न जाने कहाँ गया! शोभाधाम श्यामसुन्दर प्रकट हो गये, जिनका दर्शन करके श्रीनामदेवजी परम प्रसन्न हुए और जल लाकर भक्तोंको पिलाया।

* भले पधारे लंबकनाथ। धरनी पाँव स्वर्ग लौं माथा, जोजन भरके लाँबे हाथ॥
सिव सनकादिक पार न पावैं अनगिन साज सजायें साथ। नामदेव के तुमही स्वामी, कीजै प्रभुजी मोहि सनाथ॥

*श्रीप्रियादासजीने इन घटनाओंका वर्णन इस प्रकार किया है—*

**कियौ रूप ब्राह्मण को दूबरो निपट अंग भयो हिये रंग व्रत परिचैको लीजिये।**
**भई एकादशी अन्न मांगत बहुत भूखो आजु तौ न दैहौं भोर चाहौ जितौ दीजिये॥**
**कर्‌यो हठभारी मिलि दोऊ ताको शोर पर्‌यो समझावै नामदेव याको कहा खीझिये।**
**बीते जाम चारि मरि रहे यों पसारि पांव भाव पै न जानै दई हत्या नहीं छीजिये॥ १४२॥**
**रचिकै चिताकों विप्र गोद लैकै बैठे जाइ दियो मुसुकाइ मैं परीक्षा लीनी तेरी है।**
**देखि सो सचाई सुखदाई मन भाई मेरे भये अन्तर्धान परे पाँय प्रीति हेरी है॥**
**जागरन मांझ हरि भक्तनको प्यास लगी गये लैन जल प्रेत आनि कीनी फेरी है।**
**फेंट ते निकासि ताल गायो पद ततकाल बड़ेई कृपाल रूप धर्‌यो छबि ढेरी है॥ १४३॥**

एक बार नामदेवजीने जंगलमें पेड़के नीचे रोटी बनायी, भोजन बनाकर लघुशंका करने गये। लौटकर देखते हैं तो एक कुत्ता मुखमें रोटी दबाये भागा जा रहा है। आपने घीकी कटोरी उठायी और दौड़े उसके पीछे यह पुकारते हुए 'प्रभो! ये रोटियाँ रूखी हैं। आप रूखी रोटी न खायँ। मुझे घी चुपड़ लेने दें, फिर भोग लगायें।' भगवान् उस कुत्तेके शरीरसे ही प्रकट हुए अपने चतुर्भुजरूपमें। नामदेव उनके चरणोंपर गिर पड़े।

पंजाबमें बारकरी पन्थके एक प्रकारसे नामदेवजी ही आदिप्रचारक हैं। अनेक लोग उनकी प्रेरणासे भक्तिके पावन-पथमें प्रवृत्त हुए। ८० वर्षकी अवस्थामें संवत् १४०७ वि० में नश्वर देह त्यागकर ये परमधाम पधारे।

## श्रीजयदेवजी

**प्रचुर भयो तिहुँ लोक गीतगोबिंद उजागर।**
**कोक काब्य नव रस्स सरस सिंगार को सागर॥**
**अष्टपदी अभ्यास करैं तेहि बुद्धि बढ़ावैं।**
**राधारमन प्रसन्न सुनन निश्चै तहँ आवैं॥**
**संत सरोरुह षंड कों पद्मापति सुखजनक रबि।**
**जयदेव कबी नृप चक्कवै खँडमँडलेस्वर आन कबि॥ ४४॥**

एक महाकवि श्रीजयदेवजी संस्कृतके कविराजोंके राजा चक्रवर्ती-सम्राट् थे। शेष दूसरे सभी कवि आपके सामने छोटे-बड़े राजाओंके समान थे। आपके द्वारा रचित 'गीतगोविन्द' महाकाव्य तीनों लोकोंमें बहुत अधिक प्रसिद्ध एवं उत्तम सिद्ध हुआ। यह गीतगोविन्द माधुर्यभावापन्न-काव्य, साहित्यके नवरसोंका और विशेषकर उज्ज्वल एवं सरस शृंगाररसका सागर है। इसकी अष्टपदियोंका जो कोई नित्य अध्ययन एवं गान करे, उसकी बुद्धि पवित्र एवं प्रखर होकर दिन-प्रतिदिन बढ़ेगी। जहाँ अष्टपदियोंका प्रेमपूर्वक गान होता है, वहाँ उन्हें सुननेके लिये भगवान् श्रीराधारमणजी अवश्य आते हैं और सुनकर प्रसन्न होते हैं। श्रीपद्मावतीजीके पति श्रीजयदेवजी सन्तरूपी कमलवनको आनन्दित करनेवाले सूर्यके समान इस पृथ्वीपर अवतरित हुए॥ ४४॥

***श्रीजयदेवजीका चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—***

प्रसिद्ध भक्त-कवि जयदेवका जन्म लगभग छः सौ वर्ष पूर्व बंगालके वीरभूमि जिलेके अन्तर्गत केन्दुबिल्व नामक ग्राममें हुआ। इनके पिताका नाम भोजदेव और माताका नाम वामादेवी था। ये भोजदेव कान्यकुब्जसे बंगालमें आये हुए पंच-ब्राह्मणोंमें भरद्वाजगोत्रज श्रीहर्षके वंशज थे। माता-पिता बाल्यकालमें

ही जयदेवको अकेला छोड़कर चल बसे थे। ये भगवान्का भजन करते हुए किसी प्रकार अपना निर्वाह करते थे। पूर्व-संस्कार बहुत अच्छे होनेके कारण इन्होंने कष्टमें रहकर भी बहुत अच्छा विद्याभ्यास कर लिया था और सरल प्रेमके प्रभावसे भगवान् श्रीकृष्णकी परम कृपाके अधिकारी हो गये थे।

इनके पिताको निरंजन नामक उसी गाँवके एक ब्राह्मणके कुछ रुपये देने थे। निरंजनने जयदेवको संसारसे उदासीन जानकर उनकी भगवद्भक्तिसे अनुचित लाभ उठानेके विचारसे किसी प्रकार उनके घर-द्वार हथियानेका निश्चय किया। उसने एक दस्तावेज बनाया और आकर जयदेवसे कहा—'देख जयदेव! मैं तेरे राधा-कृष्णको और गोपी-कृष्णको नहीं जानता या तो अभी मेरे रुपये ब्याज-समेत दे दे, नहीं तो इस दस्तावेजपर सही करके घर-द्वारपर मुझे अपना कब्जा कर लेने दे!'

जयदेव तो सर्वथा निःस्पृह थे। उन्हें घर-द्वारमें रत्तीभर भी ममता नहीं थी। उन्होंने कलम उठाकर उसी क्षण दस्तावेजपर हस्ताक्षर कर दिये। निरंजन कब्जा करनेकी तैयारीसे आया ही था। उसने तुरंत घरपर कब्जा कर लिया। इतनेमें ही निरंजनकी छोटी कन्या दौड़ती हुई अपने घरसे आकर निरंजनसे कहने लगी—'बाबा! जल्दी चलो, घरमें आग लग गयी; सब जल गया। भक्त जयदेव वहीं थे। उनके मनमें द्वेष-हिंसाका कहीं लेश भी नहीं था, निरंजनके घरमें आग लगनेकी खबर सुनकर वे भी उसी क्षण दौड़े और जलती हुई लाल-लाल लपटोंके अन्दर उसके घरमें घुस गये। जयदेवका घरमें घुसना ही था कि अग्नि वैसे ही अदृश्य हो गयी, जैसे जागते ही सपना!'

जयदेवकी इस अलौकिक शक्तिको देखते ही निरंजनके नेत्रोंमें जल भर आया। अपनी अपवित्र करनीपर पछताता हुआ निरंजन जयदेवके चरणोंमें गिर पड़ा और दस्तावेजको फाड़कर कहने लगा—'देव! मेरा अपराध क्षमा करो, मैंने लोभवश थोड़े-से पैसोंके लिये जान-बूझकर बेईमानीसे तुम्हारा घर-द्वार छीन लिया है। आज तुम न होते, तो मेरा तमाम घर खाक हो गया होता। धन्य हो तुम! आज मैंने भगवद्भक्तका प्रभाव जाना।'

उसी दिनसे निरंजनका हृदय शुद्ध हो गया और वह जयदेवके संगसे लाभ उठाकर भगवान्के भजन-कीर्तनमें समय बिताने लगा।

भगवान्की अपने ऊपर इतनी कृपा देखकर जयदेवका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने घर-द्वार छोड़कर पुरुषोत्तमक्षेत्र—पुरी जानेका विचार किया और अपने गाँवके पराशर नामक ब्राह्मणको साथ लेकर वे पुरीकी ओर चल पड़े। भगवान्का भजन-कीर्तन करते, मग्न हुए जयदेवजी चलने लगे। एक दिन मार्गमें जयदेवजीको बहुत दूरतक कहीं जल नहीं मिला। बहुत जोरकी गरमी पड़ रही थी, वे प्यासके मारे व्याकुल होकर जमीनपर गिर पड़े। तब भक्तवांछाकल्पतरु हरिने स्वयं गोपाल-बालकके वेषमें पधारकर जयदेवको कपड़ेसे हवा की और जल तथा मधुर दूध पिलाया। तदनन्तर मार्ग बतलाकर उन्हें शीघ्र ही पुरी पहुँचा दिया। अवश्य ही भगवान्को छद्मवेषमें उस समय जयदेवजी और उनके साथी पराशरने पहचाना नहीं।

जयदेवजी प्रेममें डूबे हुए सदा श्रीकृष्णका नाम-गान करते रहते थे। एक दिन भावावेशमें अकस्मात् उन्होंने देखा मानो चारों ओर सुनील पर्वतश्रेणी है, नीचे कल-कल-निनादिनी कालिन्दी बह रही है। यमुना-तीरपर कदम्बके नीचे खड़े हुए भगवान् श्रीकृष्ण मुरली हाथमें लिये मुसकरा रहे हैं। यह दृश्य देखते ही जयदेवजीके मुखसे अकस्मात् यह गीत निकल पड़ा—

**मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमैर्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय।**
**इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः॥**

पराशर इस मधुर गानको सुनकर मुग्ध हो गया। बस, यहींसे ललितमधुर 'गीत-गोविन्द' आरम्भ हुआ!

कहा जाता है, यहीं जयदेवजीको भगवान्के दशावतारोंके प्रत्यक्ष दर्शन हुए और उन्होंने **'जय जगदीश हरे'** की टेर लगाकर दसों अवतारोंकी क्रमशः स्तुति गायी। कुछ समय बाद जब उन्हें बाह्य ज्ञान हुआ, तब पराशरको साथ लेकर वे चले भगवान् श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करने! भगवान्के दर्शन प्राप्तकर जयदेवजी बहुत प्रसन्न हुए। उनका हृदय आनन्दसे भर गया! वे पुरुषोत्तमक्षेत्र—पुरीमें एक विरक्त संन्यासीकी भाँति रहने लगे। उनका कोई नियत स्थान नहीं था। प्रायः वृक्षके नीचे ही वे रहा करते और भिक्षाद्वारा क्षुधा-निवृत्ति करते। दिन-रात प्रभुका ध्यान, चिन्तन और गुणगान करना ही उनके जीवनका एकमात्र कार्य था।

## (क) जयदेवजी श्रीजगन्नाथजीके स्वरूप

कविसम्राट् श्रीजयदेवजी बंगालप्रान्तके वीरभूमि जिलेके अन्तर्गत केन्दुबिल्व नामक ग्राममें उत्पन्न हुए थे। आपका वैराग्य ऐसा प्रखर था कि एक वृक्षके नीचे एक ही दिन निवास करते थे, दूसरे दिन दूसरे वृक्षके नीचे आसक्तिरहित रहते थे। जीवन-निर्वाह करनेकी अनेक सामग्रियोंमेंसे आप केवल एक गुदरी और एक कमण्डलु ही अपने पास रखते थे और कुछ भी नहीं। सुदेव नामके एक ब्राह्मणके कोई सन्तान न थी, उसने श्रीजगन्नाथजीसे प्रार्थना की कि यदि मेरे सन्तान होगी तो पहली सन्तान आपको अर्पण कर दूँगा। कुछ समयके बाद उसके एक कन्या हुई और जब द्वादश वर्षकी विवाहके योग्य हो गयी तो उस ब्राह्मणने श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें उस कन्या (पद्मावती)-को लाकर प्रार्थना की कि हे प्रभो! मैं अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार आपको भेंट करनेके लिये यह कन्या लाया हूँ। उसी समय श्रीजगन्नाथजीने आज्ञा दी कि परमरसिक जयदेव नामके जो भक्त हैं, वे मेरे ही स्वरूप हैं, अतः इसे अभी ले जाकर उन्हें अर्पण कर दो और उनसे कह देना कि जगन्नाथजीकी ऐसी ही आज्ञा हुई है।

भगवान्की आज्ञा पाकर वह ब्राह्मण वनमें वहाँ गया, जहाँ कविराजराज भक्त श्रीजयदेवजी बैठे थे और उनसे बोला—हे महाराज! आप मेरी इस कन्याको पत्नीरूपसे अपनी सेवामें लीजिये, जगन्नाथजीकी ऐसी आज्ञा है। जयदेवजीने कहा—जगन्नाथजीकी बात जाने दीजिये, वे यदि हजारों स्त्रियाँ सेवामें रखें तो उनकी शोभा है, परंतु हमको तो एक ही पहाड़के समान भारवाली हो जायगी। अतः अब तुम कन्याके साथ यहाँसे लौट जाओ। ये भगवान्की आज्ञाको भी नहीं मान रहे हैं—यह देखकर ब्राह्मण खीज गया और अपनी लड़कीसे बोला—मुझे तो जगन्नाथजीकी आज्ञा शिरोधार्य है, मैं उसे कदापि टाल नहीं सकता हूँ। तुम इनके ही समीप स्थिर होकर रहो। श्रीजयदेवजी अनेक प्रकारकी बातोंसे समझाकर हार गये, पर वह ब्राह्मण नहीं माना और अप्रसन्न होकर चला गया। तब वे बड़े भारी सोचमें पड़ गये। फिर वे उस ब्राह्मणकी कन्यासे बोले—तुम अच्छी प्रकारसे मनमें विचार करो कि तुम्हारा अपना क्या कर्तव्य है? तुम्हारे योग्य कैसा पति होना चाहिये? यह सुनकर उस कन्याने हाथ जोड़कर कहा—मेरा वश तो कुछ भी नहीं चलता है। चाहे सुख हो या दुःख, यह शरीर तो मैंने आपपर न्यौछावर कर दिया है।

श्रीपद्मावतीजीका भावपूर्ण निश्चय सुनकर श्रीजयदेवजीने निर्वाहके लिये झोंपड़ी बनाकर छाया कर ली। अब छाया हो गयी तो उसमें भगवान् श्यामसुन्दरकी एक मूर्ति सेवा करनेके लिये पधरा ली। पश्चात् मनमें आया कि परम प्रभुकी ललित लीलाएँ जिसमें वर्णित हों, ऐसा एक ग्रन्थ बनाऊँ। उनके इस निश्चयके अनुसार अति सरस 'गीतगोविन्द' महाकाव्य प्रकट हुआ। गीतगोविन्द लिखते समय एक बार श्रीकिशोरी राधिकाजीके मानका प्रसंग आया। उसमें भगवान् श्यामसुन्दरने अपनी प्रियाके चरणकमलोंको अपने मस्तकका भूषण बताकर प्रार्थना की कि इसे मेरे मस्तकपर रख दीजिये। इस आशयका पद आपके हृदयमें आया, पर उसे मुखसे कहते तथा पद्मावतीद्वारा ग्रन्थमें लिखाते समय सोच-विचारमें पड़ गये कि इस गुप्त रहस्यको कैसे प्रकट किया जाय? आप स्नान करने चले गये, लौटकर आये तो देखा कि वह पद पोथीमें श्यामसुन्दरने लिख दिया है। इससे जयदेवजी

अति प्रसन्न हुए और संकोच त्यागकर माधुर्यरसकी लीलाओंका गान करने लगे।

*इस घटनाका वर्णन प्रियादासजीने निम्न कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—*

**किन्दु बिल्लु ग्राम तामे भये कविराज राज भर्‌यो रसराज हिये मन मन चाखियै।**
**दिन दिन प्रति रूख रूख तर जाइ रहैं गहैं एक गूदरी कमण्डल कों राखियै॥**
**कही देवै विप्र सुता जगन्नाथदेव जू कों भयो जब समै चल्यो दैन प्रभु भाखिये।**
**रसिक जैदेव नाम मेरोई सरूप ताहि देवो ततकाल अहो मेरी कहि साखिये॥ १४४॥**
**चल्यो द्विज तहां जहां बैठे कविराजराज अहो महाराज मेरी सुता यह लीजियै।**
**कीजिये विचार अधिकार विस्तार जाके ताहीको निहारि सुकुमारि यह दीजियै॥**
**जगन्नाथदेव जू की आज्ञा प्रतिपाल करौ ढरो मति धरो हिये ना तो दोष भीजियै।**
**उनको हजार सोहैं हमको पहार एक ताते फिरि जावो तुम्हैं कहा कहि खीजियै॥ १४५॥**
**सुता सों कहत तुम बैठि रहौ याही ठौर आज्ञा सिरमौर मौपै नाहीं जाति टारी है।**
**चल्यौ अनखाइ समझाइ हारे बातनि सों मन तूं समझ कहा कीजै सोच भारी है॥**
**बोले द्विज बालकी सों आपही विचार करो धरो हिये ज्ञान मोपै जात न सँभारी है।**
**बोली करजोरि मेरो जोर न चलत कछू चाहौ सोई होहु यह वारि फेरि डारी है॥ १४६॥**
**जानी जब भई तिया कियो प्रभु जोर मोपै तो पै एक झोंपड़ी की छाया कर लीजिये।**
**भई तब छाया श्याम सेवा पधारइ लई नई एक पोथी मैं बनाऊँ मन कीजिये॥**
**भयो जू प्रगट गीत सरस गोविन्दजू को मान में प्रसंग सीसमण्डन सो दीजिये।**
**वही एक पद मुख निकसत सोच पर्‌यो धर्‌यो कैसे जात लाल लिख्यो मति रीझिये॥ १४७॥**

## ( ख ) गीतगोविन्दकी महिमा

### (१)

जगन्नाथधामका राजा पण्डित था। उसने भी एक पुस्तक बनायी और उसका गीतगोविन्द नाम रखा। उसमें भी श्रीकृष्णचरित्रोंका वर्णन था। राजाने ब्राह्मणोंको बुलाकर कहा कि यही गीतगोविन्द है। इसकी प्रतिलिपियाँ करके पढ़िये और देश-देशान्तरोंमें प्रचार करिये। इस बातको सुनकर विद्वान् ब्राह्मणोंने असली गीतगोविन्दको खोलकर दिखा दिया और मुसकराकर बोले कि यह तो कोई नयी दूसरी पुस्तक है, गीतगोविन्द नहीं है। राजाका तथा राजभक्त विद्वानोंका आग्रह था कि यही गीतगोविन्द है, इससे लोगोंकी बुद्धि भ्रमित हो गयी। कौन-सी पुस्तक असली है, यह निर्णय करनेके लिये दोनों पुस्तकें श्रीजगन्नाथदेवजीके मन्दिरमें रखी गयीं। बादमें जब पट खोले गये तो देखा गया कि जगन्नाथजीने राजाकी पुस्तकको दूर फेंक दिया है और श्रीजयदेवकविकृत गीतगोविन्दको अपनी छातीसे लगा लिया है।

इस दृश्यको देखकर राजा अत्यन्त लज्जित हुआ। अपनी पुस्तकका अपमान जानकर बड़े भारी शोकमें पड़ गया और निश्चय किया कि अब मैं समुद्रमें डूबकर मर जाऊँगा। जब राजा डूबने जा रहा था तो उस समय प्रभुने दर्शन देकर आज्ञा दी कि तू समुद्रमें मत डूब। श्रीजयदेवकविकृत गीतगोविन्द-जैसा दूसरा ग्रन्थ नहीं हो सकता है। इसलिये तुम्हारा शरीरत्याग करना वृथा है। अब तुम ऐसा करो कि गीतगोविन्दके बारह सर्गोंमें अपने बारह श्लोक मिलाकर लिख दो। इस प्रकार तुम्हारे बारह श्लोक उसके साथ प्रचलित हो जायँगे, जिसकी प्रसिद्धि तीनों लोकोंमें फैल जायगी।

*श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—*

**नीलाचल धाम तामै पण्डित नृपति एक करी यही नाम धरि पोथी सुखदाइयै।**
**द्विजन बुलाइ कही यही है प्रसिद्ध करो लिखि लिखि पढ़ो देश देशनि चलाइयै॥**
**बोले मुसकाइ विप्र छिप्रसों दिखाइ दई नई यह कोऊ मति अति भरमाइयै।**
**धरी दोऊ मन्दिर में जगन्नाथ देवजू के दीनी यह डारि वह हार लपटाइयै॥ १४८॥**
**पर्‍यो सोच भारी नृप निपट खिसानों भयो गयो उठि सागर मैं बूड़ों वही बात है।**
**अति अपमान कियो, कियो मैं बखान सोई गोई जात कैसे? आंच लागी गात गात है॥**
**आज्ञा प्रभु दई मत बूड़ै तूं समुद्र मांझ दूसरो न ग्रंथ ऐसो वृथा तनुपात है।**
**द्वादश सुश्लोक लिखि दीजै सर्ग द्वादश में ताहि संग चलै जाकी ख्याति पात पात है॥ १४९॥**

(२)

एक बार एक मालीकी लड़की बैंगनके खेतमें बैंगन तोड़ते समय गीतगोविन्दके पाँचवें सर्गकी ***'धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली'*** इस अष्टपदीको गा रही थी। उस मधुर गानको सुननेके लिये श्रीजगन्नाथजी जो उस समय अपने श्रीअंगपर महीन एवं ढीली पोशाक धारण किये हुए थे, उसके पीछे-पीछे डोलने लगे। प्रेमवश बेसुध होकर लड़कीके पीछे-पीछे घूमनेसे काँटोंमें उलझकर श्रीजगन्नाथजीके वस्त्र फट गये। उस लड़कीके गान बन्द करनेपर आप मन्दिरमें पधारे। फटे वस्त्रोंको देखकर पुरीके राजाने आश्चर्यचकित होकर पुजारियोंसे पूछा-अरे! यह क्या हुआ, ठाकुरजीके वस्त्र कैसे फट गये? पुजारियोंने कहा कि हमें तो कुछ भी मालूम नहीं है। तब स्वयं ठाकुरजीने ही सब बात बता दी। राजाने प्रभुकी रुचि जानकर पालकी भेजी, उसमें बिठाकर उस लड़कीको बुलाया। उसने आकर ठाकुरजीके सामने नृत्य करते हुए उसी अष्टपदीको गाकर सुनाया। प्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए। तबसे राजाने मन्दिरमें नित्य गीतगोविन्दगानकी व्यवस्था की।

उक्त घटनासे गीतगोविन्दके गायनको अति गम्भीर रहस्य जानकर पुरीके राजाने सर्वत्र यह ढिंढोरा पिटवाया कि कोई राजा हो या निर्धन प्रजा हो, सभीको उचित है कि इस गीतगोविन्दका मधुर स्वरोंसे गान करें। उस समय ऐसी भावना रखें कि प्रियाप्रियतम श्रीराधाश्यामसुन्दर समीप विराजकर श्रवण कर रहे हैं।

(३)

गीतगोविन्दके महत्त्वको मुलतानके एक मुगलसरदारने एक ब्राह्मणसे सुन लिया। उसने घोषित रीतिके अनुसार गान करनेका निश्चय करके अष्टपदियोंको कण्ठस्थ कर लिया। जब वह घोड़ेपर चढ़कर चलता था तो उस समय घोड़ेपर आगे भगवान् विराजे हैं ऐसा ध्यान कर लेता था, फिर गान करता था। एक दिन उसने घोड़ेपर प्रभुको आसन नहीं दिया और गान करने लगा, फिर क्या देखा कि मार्गमें घोड़ेके आगे-आगे मेरी ओर मुख किये हुए श्यामसुन्दर पीछेको चलते हैं और गान सुन रहे हैं। घोड़ेसे उतरकर उसने प्रभुके चरणस्पर्श किये तथा नौकरी छोड़कर विरक्त वेश धारण कर लिया। गीतगोविन्दका अनन्त प्रताप है, स्वर्गकी देवांगनाएँ भी इसका गान करती हैं। इसकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है, जिसपर स्वयं रीझकर भगवान्ने उसमें अपने हाथसे पद लिखा है।

***श्रीप्रियादासजी इस घटनाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—***

**सुता एक मालीकी जू बैंगनकी वारी मांझ तोरै वनमाली गावै कथा सर्ग पांच की।**
**डोलैं जगन्नाथ पांछे काछें अंग मिहींझँगा आछे कहि घूमैं सुधि आवै विरहांच की॥**
**फट्यो पट देखि नृप पूछी अहो भयो कहा? जानत न हम अब कहो बात सांच की।**
**प्रभु ही जनाई मनभाई मेरे वही गाथा ल्याये वही बालकी कौं पालकी में नाच की॥ १५०॥**

**फेरी नृप डौंड़ी यह औंड़ी बात जानि महा कही राजा रंक पढ़ैं नीकी ठौर जानिकैं।**
**अक्षर मधुर और मधुर स्वरनि ही सों गावै जब लाल प्यारी ढिग हिलैं आनिकैं॥**
**सुनि यह रीति एक मुगल ने धारि लई पढ़ै चढ़ै घोड़े आगे श्यामरूप ठानि कैं।**
**पोथी को प्रताप स्वर्ग गावत हैं देव बधू आप ही जू रीझि लिख्यो निजकर आनि कैं॥ १५१॥**

## (ग) श्रीजयदेवजीकी साधुता

श्रीजयदेवजीको एक बार एक सेवकने अपने घर बुलाया। दक्षिणामें आग्रह करके कुछ मुहरें देने लगा, आपके मना करनेपर भी उसने आपकी चद्दरमें मुहरें बाँध दीं। आप अपने आश्रमको चले, तब मार्गमें उन्हें ठग मिल गये। आपने उनसे पूछा कि तुमलोग कहाँ जाओगे? ठगोंने उत्तर दिया—जहाँ तुम जा रहे हो, वहीं हम भी जायँगे। श्रीजयदेवजी समझ गये कि ये ठग हैं। आपने गाँठ खोलकर सब मुहरें उन्हें दे दीं और कहा कि इनमेंसे जितनी मोहर आप लेना चाहें ले लें। उन दुष्टोंने अपने मनमें सोच-समझकर कहा कि इन्होंने मेरे साथ चालाकी की है। अभी तो भयवश सब धन बिना माँगे ही हमें सौंप दिया है। परंतु इनके मनमें यही है कि यहाँसे तो चलने दो, आगे जब नगर आयेगा तो शीघ्र ही इन सबोंको पकड़वा दूँगा।

यह सोचकर उन ठगोंने श्रीजयदेवजीके हाथ-पैर काटकर बड़े गड्ढेमें डाल दिये और अपने-अपने घरोंको चले गये। थोड़े समय बाद ही वहाँ एक राजा (लक्ष्मणसेन) आया। उसने देखा कि श्रीजयदेवजी संकीर्तन कर रहे हैं और गड्ढेमें दिव्य प्रकाश छाया है तथा हाथ-पैर कटे होनेपर भी वे परम प्रसन्न हैं। तब उन्हें गड्ढेसे बाहर निकालकर राजाने हाथ-पैर कटनेका प्रसंग पूछा। जयदेवजीने उत्तर दिया कि मुझे इस प्रकारका ही शरीर प्राप्त हुआ है।

श्रीजयदेवजीके दिव्य दर्शन एवं मधुर वचनामृतको सुनकर राजाने मनमें विचारा कि मेरा बड़ा भारी सौभाग्य है कि ऐसे सन्तके दर्शन प्राप्त हुए। राजा उन्हें पालकीमें बिठाकर घर ले आया। चिकित्साके द्वारा कटे हुए हाथ-पैरोंके घाव ठीक करवाये, फिर श्रीजयदेवजीसे प्रार्थना की कि अब आप मुझे आज्ञा दीजिये कि कौन-सी सेवा करूँ? श्रीजयदेवजीने कहा कि राजन्! भगवान् और भक्तोंकी सेवा कीजिये। ऐसी आज्ञा पाकर राजा साधु-सेवा करने लगा। इसकी ख्याति चारों ओर फैल गयी। एक दिन वे ही चारों ठग सुन्दर कण्ठी-माला धारणकर राजाके यहाँ आये। उन्हें देखते ही श्रीजयदेवजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—देखो, आज तो मेरे बड़े गुरु भाई लोग आये हैं। ऐसा कहकर उन्होंने सबका बड़ा ही स्वागत किया।

श्रीजयदेवजीने शीघ्र राजाको बुलवाकर कहा कि इनकी प्रेमसे यथोचित सेवा करके संत-सेवाका फल प्राप्त कर लो। आज्ञा पाकर राजा उन्हें भीतर महलमें ले गया और अनेक सेवकोंको उनकी सेवामें लगा दिया, परंतु उन चारोंके मन अपने पापसे व्याकुल थे, उन्हें भय था कि यह हमें पहचान गया है, राजासे कहकर मरवा देगा। वे राजासे बार-बार विदा माँगते थे, पर राजा उन्हें जाने नहीं देता था। तब श्रीजयदेवजीके कहनेपर राजाने अनेक प्रकारके वस्त्र-रत्न-आभूषण आदि देकर उन्हें विदा किया। सामानको ढोनेके लिये साथमें कई मनुष्योंको भी भेजा।

राजाके सिपाही गठरियोंको लेकर उन ठग-सन्तोंको पहुँचानेके लिये उनके साथ-साथ चले, कुछ दूर जानेपर राजपुरुषोंने उन सन्तोंसे पूछा कि भगवन्! राजाके यहाँ नित्य संत-महात्मा आते-जाते रहते हैं, परंतु स्वामीजीने जितना सत्कार आपका किया और राजासे करवाया है, ऐसा किसी दूसरे साधु-सन्तका सेवा-सत्कार आजतक नहीं हुआ। इसलिये हम प्रार्थना करते हैं कि आप बताइये कि स्वामीजीसे आपका क्या सम्बन्ध है? उन्होंने कहा—यह बात अत्यन्त गोपनीय है, मैं तुम्हें बताता हूँ, पर तुम किसीसे मत कहना।

पहले तुम्हारे स्वामीजी और हम सब एक राजाके यहाँ नौकरी करते थे। वहाँ इन्होंने बड़ा भारी अपराध किया। राजाने इन्हें मार डालनेकी आज्ञा दी। परंतु हमने अपना प्रेमी जानकर इनको मारा नहीं। केवल हाथ-पैर काटकर राजाको दिखा दिया और कह दिया कि हमने मार डाला। उसी उपकारके बदलेमें हमारा सत्कार विशेषरूपसे कराया गया है।

उन कृतघ्नी साधु-वेषधारियोंके इस प्रकार झूठ बोलते ही पृथ्वी फट गयी और वे सब उसमें समा गये। इस दुर्घटनासे राजपुरुष लोग आश्चर्यचकित हो गये। वे सब-के-सब दौड़कर स्वामीजीके पास आये और जैसा हाल था, कह सुनाया। उसके सुनते ही श्रीजयदेवजी दुखी होकर हाथ-पैर मलने लगे। उसी क्षण उनके हाथ-पैर बड़े सुन्दर जैसे थे, वैसे ही फिर हो गये। राजपुरुषोंने दोनों आश्चर्यजनक घटनाओंको राजासे कह सुनाया। हाथ-पैर पूरे हो जानेकी घटना सुनकर राजा अति प्रसन्न हुआ। उसी समय वह दौड़कर स्वामीजीके समीप आया और चरणोंमें सिर रखकर पूछने लगा—प्रभो! कृपा करके इन दोनों चरित्रोंका रहस्य खोलकर कहिये कि क्यों धरती फटी और उसमें सब साधु कैसे समाये? आपके ये हाथ-पैर कैसे निकल आये?

राजाने स्वामीजीसे जब अत्यन्त हठ किया। तब उन्होंने सब बात खोलकर कह दी, फिर बोले कि देखो राजन्! यह सन्तोंकी बड़ी भारी महिमा है। सन्तोंके साथ कोई चाहे जैसी और चाहे जितनी बुराई करे तो भी वे उस बुराई करनेवालेका बुरा न सोचकर बदलेमें उसके साथ भलाई ही करते हैं। साधुताका त्याग न करनेपर सन्त, महापुरुष एवं भगवान् श्रीश्यामसुन्दर मिल जाते हैं। राजाने श्रीजयदेवजीका नाम तो सुना था, पर उसने कभी दर्शन नहीं किया था। आज जब उसने श्रीजयदेवजीके नाम-गाँवको जाना तो प्रसन्न होकर कहने लगा कि आप कृपाकर यहाँ विराजिये। आपके यहाँ विराजनेसे मेरे पूरे देशमें प्रेमभक्ति फैल गयी है।

***श्रीप्रियादासजीने इन घटनाओंका वर्णन इन कवित्तोंमें किया है—***

**पोथी की तो बात सब कही मैं सुहात हिये सुनो और बात जामें अति अधिकाइये।**
**गाँठि में मुहर मग चलत में ठग मिले कहो कहाँ जात जहाँ तुम चलि जाइये॥**
**जानि लई बात खोलि द्रव्य पकराय दियो, लियो चाहो जोई-जोई सोइ मोकों ल्याइये।**
**दुष्टनि समुझि कही कीनी इन विद्या अहो आवै जो नगर इन्हें बेगि पकराइये॥ १५२॥**
**एक कहै डारो मार भलो है विचार यही एक कहै मारौ मत धन हाथ आयो है।**
**जो पै ले पिछान कहूँ, कीजिये निदान कहा? हाथ पाँव काटि बड़े गाढ़ पधरायो है॥**
**आयो तहाँ राजा एक देखिकै विवेक भयो छायो उजियारो औ प्रसन्न दरसायो है।**
**बाहर निकासि मानो चन्द्रमा प्रकास राशि पूछ्यो इतिहास कह्यो ऐसो तनु पायो है॥ १५३॥**
**बड़ेई प्रभाववान सकै को बखान अहो मेरे कोऊ भूरि भाग दरशन कीजियै।**
**पालकी बिठाय लिये किये सब ठूठ नीके जीके भाये भये कछु आज्ञा मोहिं दीजियै॥**
**करौ हरि साधु सेवा नाना पकवान मेवा आवैं जोई सन्त तिन्हैं देखि देखि भीजियै।**
**आये वेई ठग माला तिलक चिलक किये किलकि के कही बड़े बन्धु लखि लीजियै॥ १५४॥**
**नृपति बुलाय कही हिये हरि भाय भरि ढरे तेरे भाग अब सेवा फल लीजियै।**
**गयो लै महल माँझ टहल लगाये लोग लागे होन भोग जिय शंका तन छीजियै॥**
**माँगैं बार बार विदा राजा नहीं जान देत अति अकुलाये कही स्वामी धन दीजियै।**
**दैकै बहु भाँति सो पठाये संग मानुष हूँ आवौ पहुँचाय तब तुम पर रीझियै॥ १५५॥**

**पूछैं नृप नर कोऊ तुम्हरी न सरवर जिते आये साधु ऐसी सेवा नहीं भई है।**
**स्वामीजू सौं नातौ कहा? कहौ हम खांइ हा हा राखियो दुराइ यह बात अति नई है॥**
**हूते एक ठौर नृप चाकरीमें तहाँ इन कियोई बिगार 'मारि डारो' आज्ञा दई है।**
**राखे हम हितू जानि लै निदान हाथ-पाँव वाही के इसान अब हम भरि लई है॥ १५६॥**
**फाटि गई भूमि सब ठग वे समाइ गये भये ये चकित दौरि स्वामी जू पै आये हैं।**
**कही जिती बात सुनि गात गात कांपि उठे हाथ-पांव मीड़ैं भये ज्योंके त्यों सुहाये हैं॥**
**अचरज दोऊ नृप पास जा प्रकाश किये जिये एक सुनि आये वाही ठौर धाये हैं।**
**पूछैं बार-बार सीस पांयनि पै धारि रहे कहिये उघारि कैसे मेरे मन भाये हैं॥ १५७॥**
**राजा अति आरि गही कही सब बात खोलि निपट अमोल यह सन्तन को वेस है।**
**कैसो अपकार करै तऊ उपकार करै ढरैं रीति आपनी ही सरस सुदेस है॥**
**साधुता न तजैं कभूं, जैसे दुष्ट दुष्टता न यही जानि लीजै मिले रसिक नरेस है।**
**जान्यो जब नांव ठांव रहो इहा बलि जांव भयो मैं सनाथ प्रेम भक्ति भई देस है॥ १५८॥**

### (घ) जयदेवजीकी पत्नी पद्मावतीजीका पतिप्रेम

श्रीजयदेवजीकी आज्ञासे राजा किन्दुबिल्व आश्रमसे उनकी पत्नी श्रीपद्मावतीजीको लिवा लाये। श्रीपद्मावतीजी रानीके निकट रनिवासमें रहने लगीं। एक दिन जब रानी पद्मावतीके निकट बैठी थीं। उसी समय किसीने आकर रानीको सूचित किया कि तुम्हारा भाई शरीर छोड़कर देवलोकवासी हुआ और तुम्हारी भावजोंमेंसे एक सती हो गयी। यह सुनकर रानीको अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि हमारी भाभी कितनी बड़ी सती साध्वी थीं। श्रीपद्मावतीजीको इससे कुछ भी आश्चर्य न हुआ। उन्होंने रानीको समझाया कि पतिके स्वर्गवासी होनेपर उनके मृत शरीरके साथ जल जाना उत्तम पातिव्रत-सूचक है, परंतु अनन्य प्रीतिकी यह रीति है कि प्रियतमके प्राण छूट जायँ तो अपने प्राण भी उसी समय शरीरको छोड़कर साथ चले जायँ।

पद्मावतीजीने रानीकी भाभीकी प्रशंसा नहीं की, इससे रानीने व्यंग्य करते हुए कहा कि आपने जैसी पतिव्रता बतायी—ऐसी तो केवल आप ही हो। समय पाकर सब बात रानीने राजासे कहकर फिर यों कहा—आप स्वामीजी (श्रीजयदेवजी)-को थोड़ी देरके लिये बागमें ले जाओ, तब मैं यह देखूँगी कि इनकी पतिमें कैसी प्रीति है। राजाने रानीका विचार सुनकर कहा कि यह उचित नहीं है। जब रानीने बड़ा हठ किया, तब राजाने उसकी बात मानकर वैसा ही किया, राजाके साथ जयदेवजीके बागमें चले जानेपर रानीकी सिखायी हुई एक दासीने आकर पद्मावतीजीको सुनाया कि आपके स्वामीजी भगवान्‌के धामको चले गये। यह सुनते ही रानी और समीप बैठी हुई स्त्रियाँ दुःख प्रकट करनेके ढोंगको रचकर धरतीपर लोटने और रोने लगीं। ध्यानद्वारा जानकर थोड़ी देर बाद भक्तवधू श्रीपद्मावतीजी बोलीं—अजी रानीजी! मेरे स्वामीजी तो बहुत अच्छी तरहसे हैं, तुम अचानक ही इस प्रकार क्यों धोखेमें आकर डर रही हो?

रानीकी मायाका श्रीपद्मावतीजीपर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ, भेद खुल गया, इससे रानीको बड़ी लज्जा हुई। जब कुछ दिन बीत गये तो फिर दूसरी रानीने उसी प्रकारकी तैयारी करके माया-जाल रचा। श्रीपद्मावतीजी अपने मनमें समझ गयीं कि रानी परीक्षा लेना चाहती है तो परीक्षा दे ही देना चाहिये। इस बार जैसे ही किसी दासीने आकर कहा—अजी! स्वामीजी तो प्रभुको प्राप्त हो गये। वैसे ही झट पतिप्रेमसे परिपूर्ण होकर श्रीपद्मावतीजीने अपना शरीर छोड़ दिया। इनके मृतक शरीरको देखकर रानीका मुख कान्तिहीन सफेद हो गया। राजा आये और उन्होंने जब यह सब जाना तो कहने लगे कि इस स्त्रीके चक्करमें आकर

मेरी बुद्धि भी भ्रष्ट हो गयी, अब इस पापका यही प्रायश्चित्त है कि मैं भी जल मरूँ। श्रीजयदेवजीको जब यह समाचार मिला तो वे दौड़कर वहाँपर आये और मरी हुई पद्मावतीको तथा मरनेके लिये तैयार राजाको देखा। राजाने कहा कि इनको मृत्यु मैंने दी है। जयदेवजीने कहा—तो अब तुम्हारे जलनेसे ये जीवित नहीं हो सकती हैं। अतः तुम मत जलो।

राजाने कहा—महाराज! अब तो मुझे जल ही जाना चाहिये; क्योंकि मैंने आपके सभी उपदेशोंको धूलमें मिला दिया। श्रीजयदेवजीने राजाको अनेक प्रकारसे समझाया, परंतु उसके मनको कुछ भी शान्ति नहीं मिली, तब आपने गीतगोविन्दकी एक अष्टपदीका गान आरम्भ किया। संगीत-विधिसे अलाप करते ही पद्मावतीजी जीवित हो गयीं। इतनेपर भी राजा लज्जाके मारे मरा जा रहा था और आत्महत्या कर लेना चाहता था। वह बार-बार मनमें सोचता था कि ऐसे महापुरुषका संग पाकर भी मेरे मनमें भक्तिका लेशमात्र भी नहीं आया। श्रीजयदेवजीने समझा-बुझाकर राजाको शान्त किया और किन्दुबिल्व ग्रामको चले आये।

*श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—*

**गये जा लिवाय ल्याय कविराज राजतिया किया लै मिलाप आप रानी ढिग आई हैं।**
**मर्‌यो एकभाई वाकी भई यों भौजाई सती कोऊ अंग काटि कोऊ कूदि परी धाई हैं॥**
**सुनत ही नृप बधू निपट अचम्भो भयो इनकैं न भयो फिरि कही समुझाई हैं।**
**प्रीति की न रीति यह बड़ी विपरीत अहो छुटै तन जबै प्रिया प्रान छूटि जाई हैं॥ १५९॥**
**'ऐसी एक आप' कहि राजा सूं यूं बात कही लैके जाओ बाग स्वामी नेकु देखौं प्रीतिकों।**
**निपट बिचारी बुरी देत मेरे गरे छुरी तिया हठ मानि करी वैसे ही प्रतीति कों॥**
**आनि कहैं आपु पाये कही यही भांति आय बैठी ढिग तिया देखि लोटि गई रीति कों।**
**बोलीं भक्तबधू अजू वे तो हैं बहुत नीके तुम कहा औचक ही पावति हो भीति कों॥ १६०॥**
**भई लाज भारी पुनि फेरि कै सँवारी दिन बीति गये कोऊ जब तब वही कीनी है।**
**जानि गई भक्त बधू चाहति परीछा लियो कही अजू पाये सुनि तजी देह भीनी है॥**
**भयो मुख स्वेत रानी राजा आये जानी यह रची चिता जरौं मति भई मेरी हीनी है।**
**भई सुधि आपकौं सु आये बेगि दौरि इहाँ देखि मृत्युप्राय नृप कह्यो मेरी दीनी है॥ १६१॥**
**बोल्यो नृप अजू मोहिं जरेई बनत अब सब उपदेश लैकै धूरिमें मिलायौ है।**
**कह्यौ बहु भांति ऐपै आवति न शांति किहूँ गाई अष्टपदी सुर दियौ तन ज्यायौ है॥**
**लाजनिको मार्‌यो राजा चहै अपघात कियौ जियो नहिं जाति भक्ति लेसहूं न आयौ है।**
**करि समाधान निज ग्राम आये किंदुबिल्लु जैसो कछु सुन्यौ यह परचै लै गायौ है॥ १६२॥**

### (ङ) श्रीजयदेवजीकी गंगाजीके प्रति निष्ठा

श्रीजयदेवजीका जहाँ आश्रम था, वहाँसे गंगाजीकी धारा अठारह कोस दूर थी। परंतु आप योगबलसे नित्य गंगा-स्नान करते थे। जब आपका शरीर अत्यन्त वृद्ध हो गया, तब भी आप अपने गंगा-स्नानके नित्य-नियमको कभी नहीं छोड़ते थे। इनके बड़े भारी प्रेमको देखकर इन्हें सुख देनेके लिये रातको स्वप्नमें श्रीगंगाजीने कहा—अब तुम स्नानार्थ इतनी दूर मत आया करो, केवल ध्यानमें ही स्नान कर लिया करो। धारामें जाकर स्नान करनेका हठ मत करो। श्रीजयदेवजीने इस आज्ञाको स्वीकार नहीं किया। तब फिर गंगाजीने स्वप्नमें कहा—तुम नहीं मानते हो तो मैं ही तुम्हारे आश्रमके निकट सरोवरमें आ जाऊँगी। तब आपने कहा—मैं कैसे विश्वास करूँगा कि आप आ गयी हैं? गंगाजीने कहा—जब आश्रमके समीप

जलाशयमें कमल खिले देखना, तब विश्वास करना कि गंगाजी आ गयीं। ऐसा ही हुआ, खिले हुए कमलोंको देखकर श्रीजयदेवजीने वहीं स्नान करना आरम्भ कर दिया।

***श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—***

**देवधुनी सोत हो अठारै कोस आश्रम तैं सदाई स्नान करैं धरैं जोगताई कौं।**
**भयो तन वृद्ध तऊँ छोड़ें नहीं नित्य नेम प्रेम देखि भारी निशि कही सुखदाई कौं॥**
**आवौ जिनि ध्यान करौ, करौ मत हठ ऐसो मानी नहीं आऊँ मैं ही जानौं कैसे आई कौं।**
**फूले देखौ कंज तब कीजियो प्रतीति मेरी भई वही भांति सेवैं अबलौं सुहाई कौं॥ १६३॥**

## ( च ) जयदेव-दम्पतीपर कृष्णकृपा

एक दिन श्रीजयदेवजी 'गीत-गोविन्द' का एक गीत लिख रहे थे, परंतु वह पूरी ही नहीं हो पाती थी। पद्मावतीने कहा—'देव! स्नानका समय हो गया है, अब लिखना बन्द करके आप स्नान कर आयें तो ठीक हो।' जयदेवजीने कहा—'पद्मा! जाता हूँ। क्या करूँ, मैंने एक गीत लिखा है; परंतु उसका शेष चरण ठीक नहीं बैठता। तुम भी सुनो—

**स्थलकमलगञ्जनं मम हृदयरञ्जनं जनितरतिरङ्गपरभागम्।**
**भण मसृणवाणि करवाणि चरणद्वयं सरसलसदलक्तकरागम्॥**
**स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनम्....................**

इसके बाद क्या लिखूँ, कुछ निश्चय नहीं कर पाता!' पद्मावतीने कहा—'इसमें घबरानेकी कौन-सी बात है! गंगास्नानसे लौटकर शेष चरण लिख लीजियेगा।'

'अच्छा, यही सही। ग्रन्थको और कलम-दावातको उठाकर रख दो, मैं स्नान करके आता हूँ।'

जयदेवजी इतना कहकर स्नान करने चले गये। कुछ ही मिनटों बाद जयदेवका वेष धारणकर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण पधारे और बोले—'पद्मा! जरा 'गीत-गोविन्द' देना।'

पद्मावतीने विस्मित होकर पूछा, 'आप स्नान करने गये थे न? बीचसे ही कैसे लौट आये?'

महामायावी श्रीकृष्णने कहा—'रास्तेमें ही अन्तिम चरण याद आ गया, इसीसे लौट आया।' पद्मावतीने ग्रन्थ और कलम-दावात ला दिये। जयदेव-वेषधारी भगवान्ने—

**'देहि पदपल्लवमुदारम्'**

—लिखकर पादपूर्ति कर दी। तदनन्तर पद्मावतीसे जल मँगाकर स्नान किया और पूजादिसे निवृत्त होकर भगवान्‌के निवेदन किया हुआ पद्मावतीके हाथसे बना भोजन पाकर पलँगपर लेट गये।

पद्मावती पत्तलमें बचा हुआ प्रसाद पाने लगीं। इतनेमें ही स्नान करके जयदेवजी लौट आये। पतिको इस प्रकार आते देखकर पद्मावती सहम गयी और जयदेव भी पत्नीको भोजन करते देखकर विस्मित हो गये। जयदेवजीने कहा—'यह क्या? पद्मा, आज तुम श्रीमाधवको भोग लगाकर मुझको भोजन कराये बिना ही कैसे जीम रही हो? तुम्हारा ऐसा आचरण तो मैंने कभी नहीं देखा।'

पद्मावतीने कहा—'आप यह क्या कह रहे हैं? आप गीतका शेष चरण लिखनेके लिये रास्तेसे ही लौट आये थे, पादकी पूर्ति करनेके बाद आप अभी-अभी तो स्नान-पूजन-भोजन करके लेटे थे। इतनी देरमें मैं आपको नहाये हुए-से आते कैसे देख रही हूँ!' जयदेवजीने जाकर देखा, पलँगपर कोई नहीं लेट रहा है। वे समझ गये कि आज अवश्य ही यह भक्तवत्सलकी कृपा हुई है। फिर कहा—'अच्छा, पद्मा! लाओ तो देखें, गीतकी पूर्ति कैसे हुई है?'

पद्मावती ग्रन्थ ले आयी। जयदेवजीने देखकर मन-ही-मन कहा—'यही तो मेरे मनमें था, पर मैं संकोचवश लिख नहीं रहा था।' फिर वे दोनों हाथ उठाकर रोते-रोते पुकारकर कहने लगे—'हे कृष्ण! हे नन्दनन्दन! हे राधावल्लभ! हे व्रजांगनाधव! हे गोकुलरत्न! हे करुणासिन्धु! हे गोपाल! हे प्राणप्रिय! आज किस अपराधसे इस किंकरको त्यागकर आपने केवल पद्माका मनोरथ पूर्ण किया!' इतना कहकर जयदेवजी पद्मावतीकी पत्तलसे श्रीहरिका प्रसाद उठाकर खाने लगे। पद्मावतीने कितनी ही बार रोककर कहा—'नाथ! आप मेरा उच्छिष्ट क्यों खा रहे हैं?' परंतु प्रभु-प्रसादके लोभी भक्त जयदेवने उसकी एक भी नहीं सुनी।

इस घटनाके बाद उन्होंने 'गीत-गोविन्द' को शीघ्र ही समाप्त कर दिया। तदनन्तर वे उसीको गाते मस्त हुए घूमा करते। वे गाते-गाते जहाँ कहीं जाते, वहीं भक्तका कोमलकान्त गीत सुननेके लिये श्रीनन्दनन्दन छिपे हुए उनके पीछे-पीछे रहते। धन्य प्रभु!

अन्तकालमें श्रीजयदेवजी अपनी पतिपरायणा पत्नी पद्मावती और भक्त पराशर, निरंजन आदिको साथ लेकर वृन्दावन चले गये और वहाँ भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीला देख-देखकर आनन्द लूटते रहे। कहते हैं कि वृन्दावनमें ही दम्पती देह त्यागकर नित्यनिकेतन गोलोक पधार गये।

किसी-किसीका कहना है कि जयदेवजीने अपने ग्राममें शरीर छोड़ा था और उनके घरके पास ही उनका समाधिमन्दिर बनाया गया।

उनके स्मरणार्थ प्रतिवर्ष माघकी संक्रान्तिपर केन्दुबिल्व गाँवमें अब भी मेला लगता है, जिसमें प्रायः लाखसे अधिक नर-नारी एकत्र होते हैं।

## श्रीश्रीधरस्वामीजी

**तीनि कांड एकत्व सानि कोउ अग्य बखानत।**
**कर्मठ ग्यानी ऐंचि अर्थ कौ अनरथ बानत॥**
**परमहंस संहिता बिदित टीका बिसतार्‍यो।**
**षट सास्त्रनि अबिरुद्ध बेद संमतहि बिचार्‍यो॥**
**परमानंद प्रसाद तें माधौ सुकर सुधार दियो।**
**श्रीधर श्रीभागवत में परम धरम निरनय कियो॥ ४५॥**

श्रीश्रीधरस्वामीने श्रीमद्भागवतमें परमधर्मका निर्णय किया। श्रीभागवतधर्मके रहस्योंको ठीक प्रकारसे न जाननेके कारण कुछ विद्वानोंने तीनों (कर्म, ज्ञान, उपासना) काण्डोंको एकमें मिश्रित करके श्रीमद्भागवतकी व्याख्या की। कर्मकाण्डी और शुष्क ज्ञानी लोग खींचातानी एवं कठिन कल्पनाएँ करके अर्थका विपरीत अर्थ (अनर्थ) करते थे। जिज्ञासु भक्तगण शंकित हो जाते थे, वास्तविक तात्पर्य ओझल हो जाता था। ऐसी स्थितिमें विश्वविख्यात 'परमहंससंहिता' की विद्वानोंमें प्रसिद्ध टीका 'भावार्थ-दीपिका' की रचना स्वामी श्रीधराचार्यजीने की। उसमें षट्शास्त्र एवं षड्-दर्शनोंके सर्वथा अनुकूल तथा वेदोपनिषद्-सम्मत सिद्धान्तका समर्थन किया। श्रीधरस्वामीके गुरुदेव श्रीपरमानन्द-सरस्वतीपादजीकी कृपासे भगवान् विन्दुमाधवने श्रीधरकृत टीकाको अपने हस्तकमलसे सुधार दिया, हस्ताक्षरित करके सर्वोत्तम सिद्ध किया॥ ४५॥

***यहाँ श्रीश्रीधरस्वामीजीके विषयमें संक्षेपमें कुछ विवरण प्रस्तुत है—***

**वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि।**
**यस्यास्ते हृदये संवित् तं नृसिंहमहं भजे॥**

—श्रीधरस्वामी

प्रामाणिक सामग्री तो कोई है नहीं; जो किंवदन्तियाँ हैं। उन्हींके आधारपर कुछ कहना है। महापुरुषोंके जीवनके सत्यको ऐसी किंवदन्तियाँ ही कुछ प्रकट कर पाती हैं। ईसाकी दसवीं या ग्यारहवीं सदीकी बात होगी। दक्षिण भारतके किसी नगरमें वहाँके राजा और मन्त्रीमें मार्ग चलते समय भगवान्‌की कृपा तथा प्रभावके सम्बन्धमें बात हो रही थी। मन्त्री कह रहे थे—'भगवान्‌की उपासनासे उनकी कृपा प्राप्त करके अयोग्य भी योग्य हो जाता है, कुपात्र भी सत्पात्र हो जाता है, मूर्ख भी विद्वान् हो जाता है।' संयोगकी बात या दयामय भगवान्‌की इच्छा—राजाने देखा कि एक बालक फूटे पात्रमें तेल लिये जा रहा है। राजाने मन्त्रीसे पूछा—'क्या यह बालक भी बुद्धिमान् हो सकता है?' मन्त्रीने बड़े विश्वासके साथ कहा—'भगवान्‌की कृपासे अवश्य हो सकता है।' बालक बुलाया गया। पता लगा कि वह ब्राह्मणका बालक है। उसके माता-पिता उसे बचपनमें ही छोड़कर परलोक चले गये थे। परीक्षाके लिये नृसिंहमन्त्रकी दीक्षा दिलाकर उसे आराधनामें लगा दिया गया। बालक भी सब प्रकारसे भगवान्‌के भजनमें लग गया। उस अनाथ बालककी भक्ति देखकर अनाथोंके वे एकमात्र नाथ प्रकट हो गये। नृसिंहरूपमें दर्शन देकर भगवान्‌ने बालकको वरदान दिया—'तुम्हें वेद, वेदांग, दर्शनशास्त्र आदिका सम्पूर्ण ज्ञान होगा और मेरी भक्ति तुम्हारे हृदयमें निवास करेगी।' बालक और कोई नहीं वे हमारे चरित्रनायक श्रीधर स्वामी ही थे।

अब इस बालककी विद्वत्ताका क्या पूछना! भगवान्‌की दी हुई विद्याकी लोकमें भला, कौन बराबरी कर सकता था! बड़े-बड़े विद्वान् इनका सम्मान करने लगे। राजा इन्हें आदर देने लगे। धनका अभाव नहीं रहा। विवाह हुआ और पत्नी आयी। परंतु भगवान्‌के भक्त विषयोंमें उलझा नहीं करते और न दयामय भगवान् ही भक्तोंको संसारके विषयोंमें आसक्त रहने देते हैं। गृहस्थ होकर भी इनका चित्त घरमें लगता नहीं था। सब कुछ छोड़कर केवल प्रभुका भजन किया जाय, इसके लिये इनके प्राण तड़पते रहते थे। इनकी स्त्री गर्भवती हुई, प्रथम सन्तानको जन्म देकर वह परलोक चली गयी। स्त्रीकी मृत्युसे इन्हें दुःख नहीं हुआ। इन्होंने इसे प्रभुकी कृपा ही माना। परंतु अब नवजात बालकके पालन-पोषणमें ही व्यस्त रहना इन्हें अखरने लगा। ये विचार करने लगे—'मैं मोहवश ही अपनेको इस बच्चेका पालन-पोषण करनेवाला मानता हूँ। जीव अपने कर्मोंसे ही जन्म लेता है और अपने कर्मोंका ही फल भोगता है। विश्वम्भर भगवान् ही सबका पालन तथा रक्षण करते हैं।' ये शिशुको भगवान्‌की दयापर छोड़कर भजनका निश्चय करके घर छोड़नेको उद्यत हुए, पर बच्चेके मोहने एक बार रोका। लीलामय प्रभुकी लीलासे इनके सामने घरकी छतसे एक पक्षीका अण्डा भूमिपर गिर पड़ा और फूट गया। अण्डा पक चुका था। उससे लाल-लाल बच्चा निकलकर अपना मुख हिलाने लगा। इनको ऐसा लगा कि इस बच्चेको भूख लगी है; यदि अभी कुछ न मिला तो यह मर जायगा। उसी समय एक छोटा कीड़ा उड़कर फूटे अण्डेके रसपर आ बैठा और उसमें चिपक गया। पक्षीके बच्चेने उसे खा लिया। भगवान्‌की यह लीला देखकर श्रीधर स्वामीके हृदयमें बल आ गया। ये वहाँसे काशी चले आये। विश्वनाथपुरीमें आकर ये भगवान्‌के भजनमें तल्लीन हो गये।

श्रीश्रीधर स्वामीजी श्रीबिन्दुमाधवजीके बड़े ही भक्त थे। काशीवास करते समय एक विद्यार्थी आपकी सेवामें रहा करता था, संयोगसे उसका भी नाम माधव ही था। एक बारकी बात है, आप बीमार पड़ गये, उस समय माधव आपकी सेवामें था। उसी बीच माधवके पिताजी भी बीमार पड़ गये

और उसके घरसे बुलानेके लिये आदमी आ गया। परदुःखकातर श्रीस्वामीजीने स्वयं अस्वस्थ रहते हुए भी माधवको उसके पिताकी सेवामें आग्रहपूर्वक भेज दिया। माधव गुरुकी आज्ञा मानकर चला गया, इधर स्वामीजी ज्वरकी अधिकतासे अचेतावस्थामें हो गये और माधव! माधव! कहकर उसे बुलाने लगे। भक्तवत्सल भगवान् अपने भक्तकी पुकार सुनकर इस स्थितिमें भला कैसे अनसुनी कर सकते थे! भगवान् श्रीबिन्दुमाधवने विद्यार्थी माधवका रूप बनाया और आ गये सेवा करने। अब विद्यार्थी बने भगवान् बिन्दुमाधव श्रीधर स्वामीकी परिचर्या करते, उनके लिये भोजन बनाते तथा गुरुकी समस्त आज्ञाओंका पालन करते। इस प्रकार कई दिन बीत गये। श्रीस्वामीजी स्वस्थ हो गये थे, उधर विद्यार्थी माधवके पिता भी स्वस्थ हो गये थे, अतः वह गुरुजीके पास लौट आया। उसे आया देख भगवान् अन्तर्धान हो गये। आनेपर माधवने देखा कि चूल्हा जल रहा है और उसपर खिचड़ी बन रही है, पर कोई बनानेवाला न दिखायी दिया। श्रीस्वामीजी विश्राम कर रहे थे। बालक माधवने गुरुजीको अपने पिताके स्वस्थ हो जानेकी सूचना दी और पूछा—गुरुदेव! मेरी अनुपस्थितिमें आश्रमकी व्यवस्था कौन कर रहा था? आपकी सेवामें कौन था? और यह खिचड़ी कौन पका रहा है? श्रीस्वामीजी उसके प्रश्नोंको सुनकर आश्चर्यचकित हो गये और बोले—बेटा माधव! तू ही तो मेरे पास था, तू ही तो आश्रमकी व्यवस्था भी कर रहा था और तूने ही मेरी सेवा भी की और अभी-अभी तूने ही तो चूल्हा जलाकर खिचड़ी चढ़ायी है, फिर मुझसे ऐसे प्रश्न क्यों कर रहा है?

माधवने कहा—गुरुजी! मैं तो आपकी आज्ञासे ही अपने अस्वस्थ पिताकी सेवामें गाँव गया था, फिर मैंने कैसे आपकी सेवा की? अब श्रीश्रीधर स्वामीजीके समक्ष सारी बात स्पष्ट हो गयी कि मेरे 'माधव-माधव' पुकारनेपर आकर मेरी सेवा करनेवाले स्वयं भक्तवत्सल भगवान् बिन्दुमाधवजी ही थे।

कुछ कालतक काशीवास करनेके बाद आप श्रीधाम श्रीवृन्दावन चले आये। इधर संन्यासकी बात सुनकर आपके संगके बहुत-से पण्डित-विद्वान्, विद्यार्थी तथा आपके गाँवके लोग आपसे मिलने आये। बातचीत करते-करते दोपहरका समय हो गया। श्रीस्वामीजी इतने सारे लोगोंके भोजनकी चिन्ता करते हुए मध्याह्नकालिक स्नानके लिये श्रीयमुनाजीकी ओर चले। इधर श्रीभगवान् श्यामसुन्दर अपने धाममें अपने भक्तको चिन्तित देख ग्वाल बालकका रूप धारणकर तथा बहुतसे ग्वाल-बालोंको संग लेकर श्रीस्वामीजीकी कुटियापर पधारे। प्रत्येकके सिरपर एक-एक गठरी थी और सबमें विभिन्न प्रकारकी खाद्य सामग्री थी। आते ही उन्होंने लोगोंसे पूछा—श्रीस्वामीजी कहा हैं? लोगोंके यह बतानेपर कि श्रीयमुनाजी स्नान करने गये हैं, उन्होंने कहा कि आयें तो हमारा दण्डवत् कह देना और कहियेगा कि सारा सामान साधु-ब्राह्मणोंकी सेवाके लिये आया है, खूब सेवा करें। चिन्ता ही करना था तो घर क्यों छोड़ा?

श्रीस्वामीजीके आनेपर लोगोंने सारी बात बतायी और सीधा-सामग्री दिखायी। श्रीस्वामीजी समझ गये कि ग्वालके रूपमें आनेवाले और कोई नहीं, बल्कि भक्तोंका योग-क्षेम वहन करनेवाले उनके श्यामसुन्दर ही थे।

गीता, भागवत, विष्णुपुराणपर श्रीधर स्वामीकी टीकाएँ मिलती हैं। इनकी टीकाओंमें भक्ति तथा प्रेमका अखण्ड प्रवाह है। एकमात्र श्रीधर स्वामी ही ऐसे हैं कि जिनकी टीकाका सभी सम्प्रदायके लोग आदर करते हैं। कुछ लोगोंने इनकी भागवतकी टीकापर आपत्ति की, उस समय इन्होंने वेणीमाधवजीके मन्दिरमें भगवान्के पास ग्रन्थ रख दिया। कहते हैं कि स्वयं भगवान्ने अनेक साधु-महात्माओंके सम्मुख वह ग्रन्थ उठाकर हृदयसे लगा लिया। भगवान्के ऐसे लाड़ले भक्त ही पृथ्वीको पवित्र करते हैं।

*इस घटनाका वर्णन भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार किया है—*

**पंडित समाज बड़े बड़े भक्तराज जिते भागवत टीका करि आपसमें रीझिये।**
**भयो जू विचार काशीपुरी अविनाशी मांझ सभा अनुसार जोई सोई लिखि दीजिये॥**
**ताको तो प्रमान भगवान बिन्दुमाधौजी हैं साधौ यही बात धरि मन्दिर में लीजिये।**
**धरे सब जाय प्रभु सुकर बनाय दियो कियो सर्व ऊपर लै चल्यो मति धीजिये॥ १६४॥**

## श्रीबिल्वमंगलजी

**करुनामृत सुकबित्त जुक्ति अनुछिष्ट उचारी।**
**रसिक जनन जीवन जु हृदय हारावलि धारी॥**
**हरि पकरायो हाथ बहुरि तहँ लियो छुटाई।**
**कहा भयो कर छुटैं बदौं जौ हिय तें जाई॥**
**चिंतामनि सँग पाय कें ब्रजबधू केलि बरनी अनूप।**
**कृष्न कृपा कोपर प्रगट बिल्वमँगल मंगलस्वरूप॥ ४६॥**

भगवान् श्रीकृष्णके परम कृपापात्र श्रीबिल्वमंगलजी इस संसारमें प्रत्यक्ष मंगल-कल्याणके स्वरूप थे। विश्वका मंगल ही बिल्वमंगलके रूपमें प्रकट हुआ। आपने 'श्रीकृष्णकर्णामृत' नामक सुन्दर काव्यका निर्माण किया, जिसकी उक्तियाँ सर्वथा नयी हैं, दूसरे कवियोंकी जूठी नहीं हैं। प्रेमाभक्तिसे प्रकट सहज एवं दिव्य उद्गार हैं। श्रीकृष्णकर्णामृत रसिकभक्तोंका जीवन-प्राण है, उन्होंने इसे कई लड़ियोंके हारके समान अपने हृदयमें धारण किया है। एक बार भगवान् श्यामसुन्दरने (श्रीबिल्वमंगलजीके अन्धा होनेपर वृन्दावनका) मार्ग दिखाते हुए अपना हाथ पकड़ाया और फिर उसे छुड़ा लिया। उस समय आपने उनसे कहा—हाथ छुड़ाकर चले जानेसे क्या हुआ, मैं तुम्हें वीर पुरुष तब समझूँ, जब मेरे हृदयके बन्धनसे छूटकर चले जाओ। आपने चिन्तामणिका संग पाकर व्रजगोपियोंके साथ हुई श्रीकृष्णकी लीलाओंका अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। उसके द्वारा सभी भक्तोंका मंगल हुआ, अतः आप मंगलकी मूर्ति ही थे॥ ४६॥

***भक्त बिल्वमंगलजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—***

### (क) भक्त बिल्वमंगलका प्रारम्भिक जीवन

दक्षिण प्रदेशमें कृष्णवीणा-नदीके तटपर एक ग्राममें रामदास नामक एक भगवद्भक्त ब्राह्मण निवास करते थे। उन्हींके पुत्रका नाम था बिल्वमंगल। पिताने यथासाध्य पुत्रको धर्मशास्त्रोंकी शिक्षा दी थी। बिल्वमंगल पिताकी शिक्षा तथा उनके भक्तिभावके प्रभावसे बाल्यकालमें ही अति शान्त, शिष्ट और श्रद्धावान् हो गया था। परंतु दैवयोगसे पिता-माताके देहावसान होनेपर जबसे घरकी सम्पत्तिपर उसका अधिकार हुआ, तभीसे उसके कुसंगी मित्र जुटने लगे।

संगदोषसे बिल्वमंगलके अन्तःकरणमें अनेक दोषोंने अपना घर कर लिया। एक दिन गाँवमें कहीं चिन्तामणि नामकी वेश्याका नाच था, शौकीनोंके दल-के-दल नाचमें जा रहे थे। बिल्वमंगल भी अपने मित्रोंके साथ वहाँ जा पहुँचा। वेश्याको देखते ही बिल्वमंगलका मन चंचल हो उठा, विवेकशून्य बुद्धिने

सहारा दिया, बिल्वमंगल डूबा और उसने हाड़-मांसभरे चामके कल्पित रूपपर अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया—तन, मन, धन, कुल, मान, मर्यादा और धर्म सबको उत्सर्ग कर दिया! ब्राह्मणकुमारका पूरा पतन हुआ। सोते-जागते, उठते-बैठते और खाते-पीते सब समय बिल्वमंगलके चिन्तनकी वस्तु केवल एक 'चिन्तामणि' ही रह गयी।

बिल्वमंगलके पिताका श्राद्ध है, इसलिये आज वह नदीके उस पार चिन्तामणिके घर नहीं जा सकता। श्राद्धकी तैयारी हो रही है। विद्वान् कुलपुरोहित बिल्वमंगलसे श्राद्धके मन्त्रोंकी आवृत्ति करवा रहे हैं, परंतु उसका मन 'चिन्तामणि' की चिन्तामें निमग्न है। उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। किसी प्रकार श्राद्ध समाप्तकर जैसे-तैसे ब्राह्मणोंको झटपट भोजन करवाकर बिल्वमंगल चिन्तामणिके घर जानेको तैयार हुआ। सन्ध्या हो चुकी थी, लोगोंने समझाया कि 'भाई! आज तुम्हारे पिताका श्राद्ध है, वेश्याके घर नहीं जाना चाहिये।' परंतु कौन सुनता था। उसका हृदय तो कभीका धर्म-कर्मसे शून्य हो चुका था। बिल्वमंगल दौड़कर नदीके किनारे पहुँचा। भगवान्‌की माया अपार है, अकस्मात् प्रबल वेगसे तूफान आया और उसीके साथ मूसलधार वर्षा होने लगी। आकाशमें अन्धकार छा गया, बादलोंकी भयानक गर्जना और बिजलीकी कड़कड़ाहटसे जीवमात्र भयभीत हो गये। रात-दिन नदीमें रहनेवाले केवटोंने भी नावोंको किनारे बाँधकर वृक्षोंका आश्रय लिया, परंतु बिल्वमंगलपर इन सबका कोई असर नहीं पड़ा। उसने केवटोंसे उस पार ले चलनेको कहा, बारम्बार विनती की, उतराईका भी गहरा लालच दिया; परंतु मृत्युका सामना करनेको कौन तैयार होता। सबने इनकार कर दिया। ज्यों-ज्यों बिलम्ब होता था, त्यों-ही-त्यों बिल्वमंगलकी व्याकुलता बढ़ती जाती थी। अन्तमें वह अधीर हो उठा और कुछ भी आगा-पीछा न सोचकर तैरकर पार जानेके लिये सहसा नदीमें कूद पड़ा। भयानक दु:साहस का कर्म था, परंतु **'कामातुराणां न भयं न लज्जा।'** संयोगवश नदीमें एक मुर्दा बहा जा रहा था। बिल्मवमंगल तो बेहोश था, उसने उसे काठ समझा और उसीके सहारे नदीके उस पार चला गया। उसे कपड़ोंकी सुध नहीं थी, बिल्कुल दिगम्बर हो गया था, चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था, बनैले पशु भयानक शब्द कर रहे थे, कहीं मनुष्यकी गन्ध भी नहीं आती, परंतु बिल्वमंगल उन्मत्तकी भाँति अपनी धुनमें चला जा रहा था। कुछ ही दूरपर चिन्तामणिका घर था। श्राद्धके कारण आज बिल्वमंगलके आनेकी बात नहीं थी, अतएव चिन्ता घरके सब दरवाजोंको बन्द करके निश्चिन्त होकर सो चुकी थी। बिल्वमंगलने बाहरसे बहुत पुकारा; परंतु तूफानके कारण अन्दर कुछ भी नहीं सुनायी पड़ा। बिल्वमंगलने इधर-उधर ताकते हुए बिजलीके प्रकाशमें दीवालपर एक रस्सा-सा लटकता देखा, तुरंत उसने उसे पकड़ा और उसीके सहारे दीवाल फाँदकर अन्दर चला गया। चिन्ताको जगाया। वह तो इसे देखते ही स्तम्भित-सी रह गयी! सारा शरीर पानीसे भीगा हुआ, भयानक दुर्गन्ध आ रही है। उसने कहा—'तुम इस भयावनी रातमें नदी पार करके बन्द घरमें कैसे आये?' बिल्वमंगलने काठपर चढ़कर नदी पार होने और रस्सेकी सहायतासे दीवालपर चढ़नेकी कथा सुनायी! वृष्टि थम चुकी थी। चिन्ता दीपक हाथमें लेकर बाहर आयी, देखती है तो दीवालपर भयानक काला नाग लटक रहा है और नदीके तीर सड़ा मुर्दा पड़ा है। बिल्वमंगलने भी देखा और देखते ही काँप उठा। चिन्ताने भर्त्सना करके कहा—'तू ब्राह्मण है? अरे, आज तेरे पिताका श्राद्ध था, परंतु एक हाड़-मांसकी पुतलीपर तू इतना आसक्त हो गया कि अपने सारे धर्म-कर्मको तिलांजलि देकर इस डरावनी रातमें मुर्दे और साँपकी सहायतासे यहाँ दौड़ा आया! तू आज जिसे

परम सुन्दर समझकर इस तरह पागल हो रहा है, उसका भी एक दिन तो वही परिणाम होनेवाला है, जो तेरी आँखोंके सामने इस सड़े मुर्देका है! धिक्कार है तेरी इस नीच वृत्तिको! अरे! यदि तू इसी प्रकार उस मनमोहन श्यामसुन्दरपर आसक्त होता—यदि उससे मिलनेके लिये यों छटपटाकर दौड़ता, तो अबतक उसको पाकर तू अवश्य ही कृतार्थ हो चुका होता!'

वेश्याकी वाणीने बड़ा काम किया! बिल्वमंगल चुप होकर सोचने लगा। बाल्यकालकी स्मृति उसके मनमें जाग उठी। पिताजीकी भक्ति और उनकी धर्मप्राणताके दृश्य उसकी आँखोंके सामने मूर्तिमान् होकर नाचने लगे। बिल्वमंगलकी हृदयतन्त्री नवीन सुरोंसे बज उठी, विवेककी अग्निका प्रादुर्भाव हुआ, भगवत्-प्रेमका समुद्र उमड़ा और उसकी आँखोंसे अश्रुओंकी अजस्र धारा बहने लगी। बिल्वमंगलने चिन्तामणिके चरण पकड़ लिये और कहा—'माता! तूने आज मुझको दिव्यदृष्टि देकर कृतार्थ कर दिया।' मन-ही-मन चिन्तामणिको गुरु मानकर प्रणाम किया और उसी क्षण जगच्चिन्तामणिकी चारु चिन्तामें निमग्न होकर उन्मत्तकी भाँति चिन्तामणिके घरसे निकल पड़ा। बिल्वमंगलके जीवन-नाटककी यवनिकाका परिवर्तन हो गया।

*इस घटनाका वर्णन श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार किया है—*

**कृष्ण वेना तीर एक द्विज मतिधीर रहै ह्वै गयो अधीर संग चिन्तामनि पाइकै।**
**तजी लोकलाज हिये वाहीको जु राज भयौ निशि दिन काज वहै रहै घर जाइकै॥**
**पिताको सराध नेकु रह्यौ मन साधि दिन शेषमें आवेश चल्यौ अति अकुलाइकै।**
**नदी चढ़ी रही भारी पैये न अवारी नाव भाव भर्‍यो हियौ जियौ जात न धिजाइकै॥ १६५॥**
**करत विचार वारिधार में न रहै प्राण ताते भली धार मित्र सनमुख जाइयै।**
**परे कूदि नीर कछु सुधि न शरीर की है वही एक पीर कब दरसन पाइयै॥**
**पैयत न पार तन हारि भयो बूड़िबे कों मृतक निहारि मानी नाव मन भाइयै।**
**लगेई किनारे जाय चले पग धाय चाय आये पट लागे निशि आधी सो विहाइयै॥ १६६॥**
**अजगर घूमि झूमि भूमिको परस कियो लियोई सहारो चढ्यो छात पर जायकै।**
**ऊपर किवार लगे पर्‍यो कूदि आंगन में गिर्‍यो यों गरत रागी जागी सोर पायकै॥**
**दीपक बराइ जो पै देखै विल्वमंगल है बड़ोई अमंगल तूं कियो कहा आय कै।**
**जल अन्हवाय सूखे पट पहिराय हाय! कैसें करि आयो जल पार द्वार धाय कै॥ १६७॥**
**नौका पठवाई द्वार लाव लटकाई देखि मेरे मन भाई मैं तो तबैं लई जानि कै।**
**चलो देखौं अहो, यह कहा धौं प्रलाप करै देख्यो विषधर महा खीजी अपमानि कै॥**
**जैसो मन मेरे हाड़ चाम सौं लगायो तैसो स्याम सों लगावो तौ पै जानिये सयानिकै।**
**मैं तो भये भोर भजौं युगल किशोर अब तेरी तुही जानै चाहौ करौ मन मानिकै॥ १६८॥**

## (ख) सात्त्विक परिवर्तन

दोनोंने उस पूरी रात भगवान्‌का भजन किया और प्रातः होते ही चिन्तामणिने हरिद्वारकी और बिल्वमंगलने सन्त श्रीसोमगिरिजी महाराजके आश्रमकी राह ली। वहाँ गुरुदेवसे दीक्षा लेकर एक वर्षतक आश्रममें ही रहकर भजन-पूजन किया, फिर वृन्दावन धामके लिये चल पड़ा।

श्यामसुन्दरकी प्रेममयी मनोहर मूर्तिका दर्शन करनेके लिये बिल्वमंगल पागलकी तरह जगह-जगह भटकने लगा। कई दिनोंके बाद एक दिन अकस्मात् उसे रास्तेमें एक परम रूपवती युवती दीख पड़ी, पूर्व-संस्कार अभी

सर्वथा नहीं मिटे थे। युवतीका सुन्दर रूप देखते ही नेत्र चंचल हो उठे और नेत्रोंके साथ ही मन भी खिंचा।

बिल्वमंगलको फिर मोह हुआ। भगवान्‌को भूलकर वह पुनः पतंग बनकर विषयाग्निको ओर दौड़ा। बिल्वमंगल युवतीके पीछे-पीछे उसके मकानतक गया। युवती अपने घरके अन्दर चली गयी, बिल्वमंगल उदास होकर घरके दरवाजेपर बैठ गया। घरके मालिकने बाहर आकर देखा कि एक मलिनमुख अतिथि ब्राह्मण बाहर बैठा है। उसने कारण पूछा। बिल्वमंगलने कपट छोड़कर सारी घटना सुना दी और कहा कि 'मैं एक बार फिर उस युवतीको प्राण भरकर देख लेना चाहता हूँ, तुम उसे यहाँ बुलवा दो।' युवती उसी गृहस्थकी धर्मपत्नी थी, गृहस्थने सोचा कि इसमें हानि ही क्या है; यदि उसके देखनेसे ही इसकी तृप्ति होती हो तो अच्छी बात है। अतिथिवत्सल गृहस्थ अपनी पत्नीको बुलानेके लिये अन्दर गया। इधर बिल्वमंगलके मन-समुद्रमें तरह-तरहकी तरंगोंका तूफान उठने लगा।

जो एक बार अनन्यचित्तसे उन अशरण-शरणकी शरणमें चला जाता है, उसके योगक्षेम* का सारा भार वे अपने ऊपर उठा लेते हैं। आज बिल्वमंगलको सम्हालनेकी भी चिन्ता उन्हींको पड़ी। दीनवत्सल भगवान्‌ने अज्ञानान्ध बिल्वमंगलको दिव्यचक्षु प्रदान किये; उसको अपनी अवस्थाका यथार्थ ज्ञान हुआ, हृदय शोकसे भर गया और न मालूम क्या सोचकर उसने पासके बेलके पेड़से दो काँटे तोड़ लिये। इतनेमें ही गृहस्थकी धर्मपत्नी वहाँ आ पहुँची, बिल्वमंगलने उसे फिर देखा और मन-ही-मन अपनेको धिक्कार देकर कहने लगा कि 'अभागी आँखें! यदि तुम न होतीं तो आज मेरा इतना पतन क्यों होता?' इतना कहकर बिल्वमंगलने उन दोनों काँटोंको दोनों आँखोंमें भोंक लिया! आँखोंसे रुधिरकी अजस्र धारा बहने लगी! बिल्वमंगल हँसता और नाचता हुआ तुमुल हरिध्वनिसे आकाशको गुँजाने लगा। गृहस्थको और उसकी पत्नीको बड़ा दुःख हुआ, परंतु वे बेचारे निरुपाय थे। बिल्वमंगलका बचा-खुचा चित्त-मल भी आज सारा नष्ट हो गया और अब तो वह उस अनाथके नाथको अतिशीघ्र पानेके लिये बड़ा ही व्याकुल हो उठा। उसके जीवन-नाटकका यह तीसरा पट-परिवर्तन हुआ!

***इस घटनाका वर्णन प्रियादासजीने निम्न कवित्तोंमें किया है—***

**खुलि गईं आँखैं अभिलाषैं रूप माधुरी कौं चाखैं रसरंग औ उमंग अंग न्यारियै।**
**बीन लै बजाई गाई विपिन निकुंज क्रीड़ा भयो सुख पुंज जापै कोटि विषै वारियै॥**
**बीति गई राति प्रात चले आप आप कों जू हिये वही जाप दृग नीरि भरि डारियै।**
**सोमगिरि नाम अभिराम गुरु कियो आनि सकै को बखानि लाल भुवन निहारियै॥ १६९॥**
**रहे सो बरस रस सागर मगन भये नये नये चोजके श्लोक पढ़ि जीजिये।**
**चले वृन्दावन मन कहै कब देखौं जाय आय मग मांझ एक ठौर मति भीजिये॥**
**पर्‍यो बड़ो सोर दृगकोर कै न चाहैं काहू तहां सर तिया न्हाति देखि आंखैं रीझिये।**
**लगे वाके पाछे कांछे कांछकी न सुधि कछू गई घर आछे रहे द्वार तन छीजिये॥ १७०॥**
**आयो वाको पति द्वार देखै भागवत ठाढ़े बड़े भागवत पूछी वधू सों जनाइयें।**
**कही जू पधारौ पाँव धारो गृह पावनकों पांवन पखारौं जल ढारौं सीस भाइयें॥**
**चले भौन मांझ मन आरति मिटायबेकौं गायवेकौं जोई रीति सोई कें बताइयें।**
**नारिसे कह्यौ है तू सिंगार करि सेवा कीजै लीजै यौं सुहाग जामें बेगि प्रभु पाइयें॥ १७१॥**
**चली ये सिंगार करि थार मैं प्रसाद लैके ऊँची चित्रसारी जहाँ बैठै अनुरागी हैं।**
**झनक मनक जाइ जोरि कर ठाढ़ी रही गही मति देखि-देखि नून वृत्ति भागी हैं॥**

* भगवत्प्राप्तिका नाम 'योग' और उसके निमित्त किये हुए साधनोंकी रक्षाका नाम 'क्षेम' है।

**कही युग सूई ल्यावो, ल्याई, दई, लई, हाथ, फोरि डारी आंखैं अहो बड़ी ये अभागी हैं।**
**गई पति पास स्वास भरत न बोलि आवै बोली दुख पाय आय पांय परे रागी हैं॥ १७२॥**
**कियो अपराध हम साधु कौं दुखायौं अहो बड़े तुम साधु हम नाम साधु धर्‍यो है।**
**रहौ अजू सेवा करौं करी तुम सेवा ऐसी जैसी नहीं काहू मांझ मेरौ मन भर्‍यो है॥**
**चले सुख पाय दृगभूतसे छुटाइ दिये हिये ही की आंखिन सों अबै काम पर्‍यो है।**
**बैठे बन मध्य जाइ भूखे जानि आप आइ भोजन कराइ चलौ छाया दिन ढर्‍यो है॥ १७३॥**

### (ग) बिल्वमंगलपर भगवान्‌की कृपा

परम प्रियतम श्रीकृष्णके वियोगकी दारुण व्यथासे उसकी फूटी आँखोंने चौबीसों घण्टे आँसुओंकी झड़ी लगा दी। न भूखका पता है न प्यासका, न सोनेका ज्ञान है और न जगनेका। 'कृष्ण-कृष्ण' की पुकारसे दिशाओंको गुँजारता हुआ बिल्वमंगल जंगल-जंगल और गाँव-गाँवमें घूम रहा है! जिस दीनबन्धुके लिये जान-बूझकर आँखें फोड़ीं, जिस प्रियतमको पानेके लिये ऐश-आरामपर लात मारी, वह मिलनेमें इतना विलम्ब करे—यह भला, किसीसे कैसे सहन हो? पर 'जो सच्चे प्रेमी होते हैं, वे प्रेमास्पदके विरहमें जीवनभर रोया करते हैं, सहस्रों आपत्तियोंको सहन करते हैं, परंतु उसपर दोषारोपण कदापि नहीं करते; उनको अपने प्रेमास्पदमें कभी कोई दोष दीखता ही नहीं!' ऐसे प्रेमीके लिये प्रेमास्पदको भी कभी चैन नहीं पड़ता। उसे दौड़कर आना ही पड़ता है। आज अन्ध बिल्वमंगल श्रीकृष्ण-प्रेममें मतवाला होकर जहाँ-तहाँ भटक रहा है। कहीं गिर पड़ता है, कहीं टकरा जाता है, अन्न-जलका तो कोई ठिकाना ही नहीं। ऐसी दशामें प्रेममय श्रीकृष्ण कैसे निश्चिन्त रह सकते हैं। एक छोटे-से गोप-बालकके वेषमें भगवान् बिल्वमंगलके पास आकर अपनी मुनि-मनमोहिनी मधुर वाणीसे बोले,—'सूरदासजी! आपको बड़ी भूख लगी होगी, मैं कुछ मिठाई लाया हूँ, जल भी लाया हूँ; आप इसे ग्रहण कीजिये।' बिल्वमंगलके प्राण तो बालकके उस मधुर स्वरसे ही मोहे जा चुके थे, उसके हाथका दुर्लभ प्रसाद पाकर तो उसका हृदय हर्षके हिलोरोंसे उछल उठा! बिल्वमंगलने बालकसे पूछा, 'भैया! तुम्हारा घर कहाँ है, तुम्हारा नाम क्या है? तुम क्या किया करते हो?'

बालकने कहा, 'मेरा घर पास ही है, मेरा कोई खास नाम नहीं; जो मुझे जिस नामसे पुकारता है, मैं उसीसे बोलता हूँ, गौएँ चराया करता हूँ। मुझसे जो प्रेम करते हैं, मैं भी उनसे प्रेम करता हूँ।' बिल्वमंगल बालककी वीणा-विनिन्दित वाणी सुनकर विमुग्ध हो गया! बालक जाते-जाते कह गया कि 'मैं रोज आकर आपको भोजन करवा जाया करूँगा।' बिल्वमंगलने कहा, 'बड़ी अच्छी बात है; तुम रोज आया करो।' बालक चला गया और बिल्वमंगलका मन भी साथ लेता गया। 'मनचोर' तो उसका नाम ही ठहरा! अनेक प्रकारकी सामग्रियोंसे भोग लगाकर भी लोग जिनकी कृपाके लिये तरसा करते हैं, वही कृपासिन्धु रोज बिल्वमंगलको अपने करकमलोंसे भोजन करवाने आते हैं? धन्य है! भक्तके लिये भगवान् क्या-क्या नहीं करते।

बिल्वमंगल अबतक यह तो नहीं समझा कि मैंने जिसके लिये फकीरीका बाना लिया और आँखोंमें काँटे चुभाये, वह बालक यही है; परंतु उस गोप-बालकने उसके हृदयपर इतना अधिकार अवश्य जमा लिया कि उसको दूसरी बातका सुनना भी असह्य हो उठा। एक दिन बिल्वमंगल मन-ही-मन विचार करने लगा कि 'सारी आफतें छोड़कर यहाँतक आया, यहाँ यह नयी आफत आ गयी। स्त्रीके मोहसे छूटा तो इस बालकने मोहमें घेर लिया।' यों सोच ही रहा था कि वह रसिक बालक उसके पास आ बैठा और अपनी दीवाना बना देनेवाली वाणीसे बोला, 'बाबाजी! चुपचाप क्या सोचते हो? वृन्दावन चलोगे?' वृन्दावनका

नाम सुनते ही बिल्वमंगलका हृदय हरा हो गया, परंतु अपनी असमर्थता प्रकट करता हुआ बोला—'भैया! मैं अन्धा वृन्दावन कैसे जाऊँ?' बालकने कहा—'यह लो मेरी लाठी, मैं इसे पकड़े-पकड़े तुम्हारे साथ चलता हूँ!' बिल्वमंगलका मुख खिल उठा, लाठी पकड़कर भगवान् भक्तके आगे-आगे चलने लगे। धन्य दयालुता! भक्तकी लाठी पकड़कर मार्ग दिखाते हैं। थोड़ी-सी दूर जाकर बालकने कहा, 'लो! वृन्दावन आ गया, अब मैं जाता हूँ।' बिल्वमंगलने बालकका हाथ पकड़ लिया, हाथका स्पर्श होते ही सारे शरीरमें बिजली-सी दौड़ गयी, सात्त्विक प्रकाशसे सारे द्वार प्रकाशित हो उठे, बिल्वमंगलने दिव्य दृष्टि पायी और उसने देखा कि बालकके रूपमें साक्षात् मेरे श्यामसुन्दर ही हैं। बिल्वमंगलका शरीर रोमांचित हो गया, आँखोंसे प्रेमाश्रुओंकी अनवरत धारा बहने लगी, भगवान्का हाथ उसने और भी जोरसे पकड़ लिया और कहा—'अब पहचान लिया है, बहुत दिनोंके बाद पकड़ सका हूँ। प्रभु! अब नहीं छोड़नेका!' भगवान्ने कहा, 'छोड़ते हो कि नहीं?' बिल्वमंगलने कहा, 'नहीं, कभी नहीं, त्रिकालमें भी नहीं।'

भगवान्ने जोरसे झटका देकर हाथ छुड़ा लिया। भला, जिनके बलसे बलान्वित होकर मायाने सारे जगत्को पददलित कर रखा है, उसके बलके सामने बेचारा अन्धा क्या कर सकता था! परंतु उसने एक ऐसी रज्जुसे उनको बाँध लिया था कि जिससे छूटकर जाना उनके लिये बड़ी टेढ़ी खीर थी! हाथ छुड़ाते ही बिल्वमंगलने कहा—जाते हो? पर स्मरण रखो।

**हस्तमुत्क्षिप्य यातोऽसि बलात्कृष्ण किमद्भुतम्।**
**हृदयाद् यदि निर्यासि पौरुषं गणयामि ते॥**

***हाथ छुड़ाये जात हौ, निबल जानि कै मोहि।***
***हिरदै तें जब जाहुगे, सबल बदौंगो तोहि॥***

भगवान् नहीं जा सके! जाते भी कैसे। प्रतिज्ञा कर चुके हैं—

**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।**

(गीता ४।११)

'जो मुझको जैसे भजते हैं, मैं भी उनको वैसे ही भजता हूँ।'

भगवान्ने बिल्वमंगलकी आँखोंपर अपना कोमल करकमल फिराया, उसकी आँखे खुल गयीं। नेत्रोंसे प्रत्यक्ष भगवान्को देखकर—उनकी भुवनमोहिनी अनूप रूपराशिके दर्शन पाकर बिल्वमंगल अपने आपको सँभाल नहीं सका। वह चरणोंमें गिर पड़ा और प्रेमाश्रुओंसे प्रभुके पावन चरणकमलोंको धोने लगा!

***इस भावको श्रीप्रियादासजी इस प्रकार कहते हैं—***

**चले लै गहाइ कर छाया घन तरुतर चाहत छुड़ायो हाथ छोड़ैं कैसे? नीको है।**
**ज्यों ज्यों बल करैं त्यों त्यों तजत न एऊ अरे लियोई छुटाइ गह्यो गाढ़ो रूप ही को है॥**
**ऐसे ही करत वृन्दावन घन आइ लियो पियो चाहैं रस सब जग लाग्यो फीको है।**
**भई उतकण्ठा भारी आये श्रीबिहारीलाल मुरली बजाइकै सु कियो भायो जीको है॥ १७४॥**

### (घ) बिल्वमंगल और चिन्तामणिका सौभाग्य

भगवान्ने उठाकर उसे अपनी छातीसे लगा लिया। भक्त और भगवान्के मधुर मिलनसे समस्त जगत्में मधुरता छा गयी। देवता पुष्पवृष्टि करने लगे। सन्त—भक्तोंके दल नाचने लगे। हरिनामकी पवित्र ध्वनिसे आकाश परिपूर्ण हो गया। भक्त और भगवान् दोनों धन्य हुए। वेश्या चिन्तामणि, गृहस्थ और उसकी पत्नी भी वहाँ आ गयीं, भक्तके प्रभावसे भगवान्ने उन सबको अपना दिव्य दर्शन देकर कृतार्थ किया।

*इस वृत्तान्तका प्रियादासजीने अपने दो कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—*

**खुलि गये नैंन ज्यौं कमल रवि उदै भये देखि रूपराशि बाढ़ी कोटि गुनी प्यास है।**
**मुरली मधुर सुर राख्यो मद भरि मनो ढरि आयो कानन मैं आनन मैं भास है॥**
**मानिकै प्रताप चिन्तामनि मन मांझ भई 'चिन्तामनि जैति' आदि बोले रसरास है।**
**'करनामृत' ग्रन्थ हृदय ग्रन्थिको विदारि डारै बांधे रस ग्रन्थ पन्थ युगल प्रकास है॥ १७५॥**

**चिन्तामनि सुनी वनमांझ रूप देख्यौ लाल ह्वै गई निहाल आई नेह नातो जानिकै।**
**उठि बहु मान कियौ दियौ दूध भात दोना दै पठावैं नित हरि हितू जन मानिकै॥**
**लियौ कैसे जाय तुम्हें भायसों दियो जो प्रभु लैहौं नाथ हाथसौं जो देहैं सनमानिकै।**
**बैठे दोऊ जन कोऊ पावैं नहीं एक कन रीझे श्याम घन दीनो दूसरो हू आनिकै॥ १७६॥**

बिल्वमंगल जीवनभर भक्तिका प्रचार करके भगवान्‌की महिमा बढ़ाते रहे और अन्तमें गोलोकधाम पधारे।

## श्रीविष्णुपुरीजी

**भगवत धर्म उतंग आन धर्म आन न देखा।**
**पीतर पटतर बिगत निकष ज्यों कुंदन रेखा॥**
**कृष्न कृपा कहि बेलि फलित सतसंग दिखायो।**
**कोटि ग्रंथ को अर्थ तेरह बिरचन में गायो॥**
**महा समुद्र भागवत तें भक्ति रतन राजी रची।**
**कलि जीव जँजाली कारने बिष्णुपुरी बड़ि निधि सँची॥ ४७॥**

श्रीविष्णुपुरीजीने कलियुगके प्रपंची जीवोंके कल्याणके लिये बड़े भारी खजानेको (भक्तिको) इकट्ठा किया। उन्होंने वैष्णवधर्मको ही सर्वश्रेष्ठ माना। अन्य अवैदिक धर्मोंकी ओर देखा भी नहीं। जिस प्रकार कसौटीपर सोनेकी रेखाके सामने पीतलकी रेखा चमकती ही नहीं है, उसी प्रकार उन्होंने अपनी बुद्धिकी कसौटीपर वैष्णवधर्मको कसकर सच्चा-खरा पाया और अन्य धर्मोंको तुच्छ देखा। आपने संतसंगको श्रीकृष्णकी कृपारूपी लताका फल बताया। करोड़ों ग्रन्थोंका तात्पर्य (भक्ति) केवल तेरह विरचनों (अध्यायों)-में गाया। श्रीमद्भागवतरूपी महासमुद्रसे रत्नरूपी श्लोकोंको निकालकर 'भक्तिरत्नावली' की रचना की॥ ४७॥

***श्रीविष्णुपुरीजीका चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—***

श्रीविष्णुपुरीजी परमहंसकोटिके संन्यासी थे और तिरहुतके रहनेवाले थे। ये बड़े ही प्रेमी भक्त तथा विद्वान् थे। इनकी भक्तिरत्नावलीका पन्द्रहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें कृष्णदास लौरीयके द्वारा बँगलामें अनुवाद हुआ था, जिससे यह अनुमान होता है कि विष्णुपुरी चौदहवीं शताब्दीके अन्तमें विद्यमान रहे होंगे। हिन्दी विश्वकोषमें लिखा है कि विष्णुपुरीका दूसरा नाम वैकुण्ठपुरी था और ये मदनगोपालके शिष्य थे। इन्होंने भगवद्भक्तिरत्नावली, भागवतामृत, हरिभक्तिकल्पलता और वाक्यविवरण—ये चार ग्रन्थ लिखे थे।

कहा जाता है कि नवद्वीपके महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव और विष्णुपुरी एक बार काशीमें मिले थे। जब चैतन्य महाप्रभु वृन्दावनसे पुरीको जा रहे थे, उस समय दोनों ही एक-दूसरेके प्रति बड़े आकर्षित हुए। एक बार विष्णुपुरीके एक शिष्य काशीसे जगन्नाथपुरी गये और वहाँ श्रीचैतन्य महाप्रभुसे मिलकर पूछा कि 'आपको

विष्णुपुरीके लिये कोई सन्देशा भेजना हो अथवा उनसे कोई प्रार्थना करनी हो तो कृपाकर बताइये।' तब श्रीचैतन्यदेवने सभी वैष्णवोंके सामने उस शिष्यके द्वारा विष्णुपुरीको यह कहला भेजा कि 'आप हमारे लिये एक सुन्दर रत्नावली भेजिये।'

श्रीचैतन्य महाप्रभु-जैसे महान् त्यागीके मुँहसे इस प्रकारके शब्द सुनकर उनके साथियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ परंतु उन्हें डरके मारे कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ। कुछ दिन बीत जानेपर विष्णुपुरीका वही शिष्य फिर जगन्नाथपुरी आया और महाप्रभुके हाथमें एक पुस्तक देकर बोला कि 'गुरुदेवने आपके आदेशानुसार यह रत्नावली आपकी सेवामें भेजी है।' यह सुनकर महाप्रभुके साथियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने महाप्रभुके आशयको न समझ सकनेपर बड़ा पश्चात्ताप किया। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने उस रत्नावलीको भगवान् श्रीनीलाचलनाथके चरणोंमें रख दिया।

***भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—***

**जगन्नाथ क्षेत्र मांझ बैठे महा प्रभूजू वै चहूँ ओर भक्त भूप भीर अति छाई है।**<br>
**बोले विष्णुपुरी पुरीकाशी मध्य रहैं जाते जानियत मोक्ष चाह नीकी मन आई है॥**<br>
**लिखी प्रभु चीठी 'आपु मणिगण माला' एक दीजिये पठाइ मोहिं लागती सुहाई है।**<br>
**जानि लई बात निधि भागवत रत्नदाम दई पठै आदि मुक्ति खोदिकै बहाई है॥ १७७॥**

इसी पुस्तकके सम्बन्धमें एक कथा यह है कि सन्त विष्णुपुरीके एक मित्र थे माधवदास। उन्होंने एक बार विष्णुपुरीसे एक अनोखे ढंगकी रत्नावली माँगी, जिसको धारण करनेसे सुख मिले। अपने उन्हीं मित्रके अनुरोधसे विष्णुपुरीने कुछ चुने हुए रत्नोंको संगृहीतकर उन्हें पुरुषोत्तमक्षेत्र भेज दिया, जहाँ उनके मित्र रहते थे।

भक्तिरत्नावलीमें भागवतमें नवधा भक्तिविषयक कई सुन्दर वाक्य संगृहीत किये गये हैं और उन्हें विषयके अनुसार तेरह भागोंमें विभक्त किया गया है। प्रत्येक भागका नाम 'विरचन' रखा गया है। जो लोग पूरी भागवत नहीं पढ़ सकते, उनके लिये यह ग्रन्थ बड़े कामका है। अपने ग्रन्थके सम्बन्धमें वे स्वयं लिखते हैं कि 'मैं चाहे कितना भी अज्ञ एवं अल्पबुद्धि होऊँ, मेरे इस प्रयासका भक्तलोग अवश्य आदर करेंगे। मधुमक्खीमें कितनी बुद्धि है और क्या-क्या गुण हैं—इस बातको कोई नहीं पूछता; किंतु उसके द्वारा संचित मधुका सभी बड़े चावसे आस्वादन करते हैं।'

भक्तिरत्नावलीपर कई टीकाएँ मिलती हैं। इनमेंसे पहली टीका श्रीधरद्वारा संस्कृतमें लिखी गयी है, इसका नाम है कान्तिमाला। दूसरी टीका हिन्दी गद्यमें लिखी गयी है। तीसरी टीका हिन्दीके दोहे-चौपाइयोंमें लिखी गयी है। उसका नाम है—भक्तिप्रकाशिका। इसके अतिरिक्त भक्तिरत्नावलीपर दो टीकाएँ गुजरातीमें भी मिलती हैं। भक्तिप्रकाशिकाके अनुसार भक्तिरत्नावलीके विरचनोंमें निम्नलिखित विषयोंका वर्णन हुआ है। पहले विरचनमें भक्तिकी महिमाका वर्णन हुआ है, दूसरेमें महापुरुषोंके तथा उनके संगके प्रभावका वर्णन है। तीसरे विरचनमें भक्तिके कई भेद बताये गये हैं। चौथेसे लेकर बारहवें विरचनतक नवधा भक्तिका अलग-अलग वर्णन है और तेरहवें विरचनमें शरणागतिका वर्णन है।

## श्रीविष्णुस्वामी-सम्प्रदायके अनुयायी सन्तगण

**नाम तिलोचन सिष्य सूर ससि सदृस उजागर।**<br>
**गिरा गंग उनहारि काब्य रचना प्रेमाकर॥**

**आचारज हरिदास अतुल बल आनँद दायन।**
**तेहिं मारग बल्लभ्भ बिदित पृथु पधति परायन॥**
**नवधा प्रधान सेवा सुदृढ़ मन बच क्रम हरि चरन रति।**
**बिष्णुस्वामि सँप्रदाइ दृढ़ ग्यानदेव गंभीर मति॥४८॥**

श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदायके अनुयायी सुदृढ़ विचार एवं गम्भीर मतिवाले श्रीज्ञानदेवजी हुए। श्रीनामदेवजी और श्रीत्रिलोचनजी उनके शिष्य थे, जो सूर्य और चन्द्रके समान भक्तजगत्‌को प्रकाशित करनेवाले थे। श्रीज्ञानदेवजीकी वाणी गंगाजीके समान पवित्र थी। उनकी काव्यरचना (गीताकी टीका ज्ञानेश्वरी एवं अभंगादि) तो मानो भगवत्प्रेमकी खानि थी। आचार्यों तथा हरिभक्तोंका आपमें अपार बल था। आप सभीको आनन्दित करनेवाले थे। श्रीपृथुजीकी अर्चन-पद्धतिके अनुसार उपासना करनेवाले परम प्रसिद्ध श्रीवल्लभाचार्यजी इसी सम्प्रदायमें हुए। वे नवधाभक्तिको प्रधान मानकर सुदृढ़ भावसे भगवत्सेवा करते थे। उन्हें मन, वाणी और कर्मसे भगवान्‌के चरणोंमें प्रीति थी॥ ४८॥

***श्रीविष्णुस्वामी-सम्प्रदायके इन सन्तोंका पावन चरित इस प्रकार है—***

### श्रीज्ञानदेवजी

श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदायके अनुयायी अति ही गम्भीर बुद्धिवाले श्रीज्ञानदेवजी नामक सन्त थे। इनके पिताजी श्रीविट्ठल पन्तने गृहस्थाश्रमको त्यागकर संन्यास ले लिया और श्रीगुरुदेवसे झूठ बोल दिया कि मेरे स्त्री नहीं है, मैं गुरु करना चाहता हूँ। बादमें स्त्रीने संन्यासी होनेकी बात सुनी, तब वह आयी और उसने उनके गुरुसे सब बात कही। तब गुरुजीने जाना कि इसने मिथ्या बोलकर मुझसे संन्यास लिया है। स्त्रीने कहा कि प्रभो! आप इनका हाथ पकड़कर मेरे साथ कर दीजिये। इस प्रकार वह उन्हें घर ले आयी। इससे कुटुम्बी लोग अत्यन्त रुष्ट हुए और इन्हें उन लोगोंने जाति-पाँतिसे बाहर निकाल दिया। अब ये समाजसे अलग रहने लगे, परंतु इनके मनमें किसी प्रकारका दुःख नहीं था; क्योंकि इन्होंने गुरुकी आज्ञासे पुनः गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया था।

***श्रीप्रियादासजी महाराज श्रीज्ञानदेवजीके माता-पिताका परिचय देते हुए एक कवित्तमें कहते हैं—***

**विष्णु स्वामि सम्प्रदाई बड़ोई गम्भीर मति ज्ञानदेव नाम ताकी बात सुनि लीजियै।**
**पिता गृह त्यागि आइ ग्रहण संन्यास कियो दियो बोलि झूठ तिया नहीं गुरु कीजियै॥**
**आई सुनि बधू पांछें कह्यो जान्यो मिथ्यावाद भुजनि पकरि मेरे संग करि दीजियै।**
**ल्याई सो लिवाइ जाति अति ही रिसाइ दियो पंक्ति मैं ते डारि रहैं दूरि नहीं छीजियै॥१७८॥**

श्रीविट्ठलपन्तके द्वितीय पुत्र, श्रीनिवृत्तिनाथके छोटे भाई श्रीज्ञानेश्वरका जन्म सं० १३३२ वि० भाद्रकृष्णाष्टमीकी मध्यरात्रिमें हुआ था। जब ये पाँच वर्षके थे, तभी इनके माता-पिता धर्म-मर्यादाकी रक्षाके लिये त्रिवेणीसंगममें अपने शरीरोंको छोड़कर इहलोकसे चले गये थे। श्रीज्ञानेश्वरसे छोटे सोपान उस समय चार वर्षके और सबसे छोटी बहन मुक्ताबाई तीन वर्षकी थी। इस तरह ये चारों बालक बचपनमें ही माता-पिताके बिना अनाथ हो गये थे। परंतु इनका चरित्र देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि ये चारों भाई-बहन इस प्रकार बाह्यतः अनाथोंकी-सी अवस्थामें ही नाथोंके नाथ सकललोकनाथका कार्य करनेके लिये आये हुए महान् आत्मा थे। ये मातृ-पितृविहीन बालक कच्चा अन्न भिक्षामें माँगकर लाते और उससे जीवननिर्वाह करते हुए सदा भगवद्भजन, भगवत्कथा-कीर्तन और भगवच्चर्चामें ही अपना समय व्यतीत करते थे। इनके

सामने सबसे बड़ी कठिनाई इनके उपनयन-संस्कार न होनेकी थी। उसके लिये आलन्दीके ब्राह्मण इन्हें संन्यासीके लड़के जानकर अनुकूल नहीं थे। परंतु इनके साधुजीवनका प्रभाव उनपर दिन-दिन अधिक पड़ रहा था और जब विट्ठलपन्त तथा रुक्मिणीबाईने अलौकिकरूपसे अपना देहविसर्जन कर दिया, तब तो उन ब्राह्मणोंपर इनका और भी गहरा प्रभाव पड़ा। उनके हृदयमें इन बालकोंके प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो गयी और उन्होंने इन्हें सलाह दी कि 'तुमलोग पैठण जाओ। वहाँके विद्वान् शास्त्रज्ञ यदि तुम्हारे उपनयनकी व्यवस्था दे देंगे तो हमलोग भी उसे मान लेंगे।' अतः ये लोग पैदल यात्रा करके भगवन्नाम-संकीर्तन करते हुए पैठण पहुँचे। वहाँ इनके लिये ब्राह्मणोंकी सभा हुई। परंतु सभामें यही निश्चय हुआ कि 'इन बालकोंकी शुद्धि और किसी तरह भी नहीं हो सकती। केवल एक उपाय है और वह यही कि—

**विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च लौकिकीम्।**
**प्रणमेद्दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम्॥**

—श्रीमद्भागवत

अर्थात् 'अपने ऊपर हँसनेवाले लोगोंको और देह-दृष्टि तथा लोक-लाजको त्यागकर ये लोग कुत्ते, चाण्डाल और गौसमेत सबको भूमिपर लेटकर प्रणाम करें और इस प्रकारकी भगवान्‌की अनन्य भक्ति करें।' इस निर्णयको सुनकर चारों भाई-बहन सन्तुष्ट हो गये। निवृत्तिनाथने कहा—'ठीक है।' सोपान और मुक्ताने कहा—'यह बड़े आनन्दकी बात है।' और ज्ञानेश्वर गम्भीरतापूर्वक बोले—'आपलोग जो कहें, स्वीकार है।' वहाँसे चारों भाई-बहन लौटनेको ही थे कि कुछ दुष्टोंने उनसे छेड़-छाड़ आरम्भ कर दी। ज्ञानदेवसे किसीने पूछा—'तुम्हारा क्या नाम है?' उत्तर मिला 'ज्ञानदेव।' पास ही एक भैंसा था, उसकी ओर संकेत करके एक भले आदमीने इनको ताना मारा कि 'यहाँ तो यही ज्ञानदेव है, दिनभर बेचारा ज्ञानका ही तो बोझा ढोया करता है। कहिये, देवता! क्या आप भी ऐसे ही ज्ञानदेव हैं?' ज्ञानदेवने कहा—'हाँ, हाँ, इसमें सन्देह ही क्या है? यह तो मेरा ही आत्मा है, इसमें-मुझमें कोई भेद नहीं।' यह सुनकर किसीने और भी छेड़ करनेके लिये भैंसेकी पीठपर सटासट दो साँटे लगा दिये और ज्ञानदेवसे पूछा कि 'ये साँटे तो तुम्हें जरूर लगे होंगे।' ज्ञानदेवने कहा—'हाँ, और अपना बदन खोलकर दिखला दिया, उसपर साँटोंके चिह्न थे!' परंतु इसपर भी उन लोगोंकी आँखें नहीं खुलीं। एक सज्जन बोले—'यह भैंसा यदि तुम्हारे-जैसा ही है तो तुम जैसी ज्ञानकी बातें कहते हो, वैसी इससे भी कहलाओ।' ज्ञानदेवने भैंसेकी पीठपर हाथ रखा। हाथ रखते ही वह भैंसा 'ॐ'का उच्चारण करके वेदमन्त्र बोलने लगा। यह चमत्कार देखकर पैठणके विद्वान् ब्राह्मण चकित—स्तम्भित हो गये। उन्होंने अब जाना कि ये साधारण मनुष्य नहीं, कोई महात्मा हैं, इससे उन पण्डितोंमें भी भक्ति प्राप्त करनेकी रुचि जाग गयी। उनका अहंकार दूर हो गया। उन्होंने आकर श्रीज्ञानदेवजीके चरण पकड़ लिये। भक्तोंका-सा सरल-स्वभाव अपनाकर उन्होंने दीनता ग्रहण की।

***श्रीप्रियादासजी इस घटनाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—***

**भये पुत्र तीन तामें मुख्य बड़ो ज्ञानदेव जाकी कृष्णदेवजू सों हिये की सचाई है।**
**वेद न पढ़ावे कोऊ कहैं सब जाति गई लई करि सभा अहो कहा मन आई है॥**
**बिनस्यो ब्रह्मत्व कही श्रुति अधिकार नाहिं बोल्यों यों निहारि पढ़ै भैंसा लै दिखाई है।**
**देखि भक्ति भाव चाव भयो आनि गहैं पांव कियोई सुभाव वही गही दीनताई है॥ १७९॥**

एक दिन एक ब्राह्मणके घर श्राद्धके अवसरपर ज्ञानेश्वरने ध्यान करके '**आगन्तव्यम्**' कहकर उसके पितरोंको सशरीर बुला लिया और उन्हें भोजन कराया। इस प्रकार इनकी अद्भुत सामर्थ्य देखकर पैठणके

लोग इनपर मुग्ध हो गये और इनके पास आ-आकर इनसे भगवन्नामकीर्तन और भगवत्कथा-श्रवण करने लगे। धर्मज्ञ ब्राह्मणोंने बड़ी नम्रताके साथ इन्हें शुद्धिपत्र लिखकर दे दिया। इसके पश्चात् कुछ कालतक चारों भाई-बहन पैठणमें ही रहे। वहाँ ये लोग गोदावरीमें स्नान करते, वेदान्तकी चर्चा करते, भगवन्नामसंकीर्तन करते, पुराणोंका पठन करते और पैठणवासियोंको भगवद्भक्तिका मार्ग दिखाते थे। वहाँ रहते हुए ही ज्ञानेश्वरने श्रीमच्छंकराचार्यका भाष्य, श्रीमद्भागवत, योगवासिष्ठ आदि ग्रन्थ देख डाले और आगे जो ग्रन्थ लिखे, उनकी भूमिका भी वहीं तैयार कर ली। इस प्रकार कुछ कालतक पैठणवासियोंको अपना अपूर्व सत्संग-लाभ कराकर श्रीज्ञानेश्वरादि ब्राह्मणोंका दिया हुआ वह शुद्धिपत्र लेकर आलें नामक स्थानसे होते हुए नेवासें पहुँचे।

इसी नेवासेंमें ज्ञानेश्वर महाराजने गीताका ज्ञानेश्वरी-भाष्य कहा, जिसे सच्चिदानन्दजीने लिखा। नेवासेंसे कुछ कालके लिये श्रीज्ञानेश्वर आदि चारों भाई-बहन आलन्दी चले गये, वहाँके लोगोंने इस बार उनका बड़े आदर और प्रेमके साथ स्वागत किया। फिर जब ज्ञानेश्वर महाराज अपने भाई-बहिनोंके सहित नेवासें लौट आये, तब उन्होंने सद्गुरु श्रीनिवृत्तिनाथके सामने गीताका स्वानुभूत भाष्य कहना आरम्भ किया। उस समयतक श्रीनिवृत्तिनाथ सत्रह वर्षके, श्रीज्ञानेश्वर पन्द्रह वर्षके, सोपानदेव तेरह वर्षके और मुक्ताबाई ग्यारह वर्षकी हो चुकी थीं। ज्ञानेश्वर महाराजने अपने इस बालजीवनमें जो-जो चमत्कार दिखलाये, उनमें सबसे बढ़कर चमत्कार तो यह 'ज्ञानेश्वरी' ग्रन्थ ही है, जिसे उन्होंने केवल पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें लिखाया था। संवत् १३४७ वि० में यह 'ज्ञानेश्वरी' ग्रन्थ पूर्ण हुआ था।

इसके बाद श्रीज्ञानेश्वरने तीर्थयात्रा आरम्भ की। यात्रामें गुरु निवृत्तिनाथ, सोपानदेव, मुक्ताबाई भी साथ थे। कहते हैं कि इस यात्रामें विसोबा खेचर, गोरा कुम्हार, चोखा मेला, नरहरि सुनार आदि अन्य अनेक सन्त भी साथ हो लिये थे। सबसे पहले श्रीज्ञानेश्वर महाराज पण्ढरपुर गये, जहाँ उन्हें श्रीविट्ठलभगवान्के दर्शन हुए तथा परम विट्ठलभक्त श्रीनामदेवसे भेंट हुई। तत्पश्चात् श्रीनामदेवजीको भी साथ लेकर श्रीज्ञानेश्वर महाराजने अनेक स्थानोंमें अपने ज्ञानोपदेशद्वारा असंख्य मनुष्योंका उद्धार करते हुए उज्जैन, प्रयाग, काशी, गया, अयोध्या, गोकुल, वृन्दावन, द्वारका, गिरनार आदि तीर्थस्थानोंका परिभ्रमण किया और तदनन्तर वे सब सन्तोंके साथ पण्ढरपुर लौट आये। पैठण आदि स्थानोंमें श्रीज्ञानेश्वर महाराजने जो अद्भुत-अद्भुत चमत्कार दिखलाये, उनके कारण इन चारों भाई-बहनका यश सर्वत्र फैल गया और सब दिशाओंसे आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी—सब प्रकारके भगवद्भक्त एवं योगी, यति, साधक आदि इनके दर्शनोंके लिये आने लगे।

बात उन दिनोंकी है, जब ज्ञानदेव अलन्दी ग्राममें निवास कर रहे थे। उन्हीं दिनों श्रीचाँगदेव नामके एक सिद्ध योगिराज ताप्ती नदीके किनारे आश्रम बनाकर रहा करते थे। उनकी आयु और प्रतिष्ठा बहुत अधिक थी, साथ ही उनके शिष्योंकी संख्या भी हजारोंमें थी। इस बातका उन्हें अभिमान भी बहुत था। उन्होंने जब ज्ञानदेवकी महिमा सुनी तो अपने हजारों शिष्योंको लेकर वे उनसे मिलने चल दिये। उस समय वे एक सिंहपर सवार थे, उनके एक हाथमें त्रिशूल और एक हाथमें सर्पका कोड़ा था। आलन्दी गाँवके समीप पहुँचनेपर चाँगदेवके शिष्योंने श्रीज्ञानदेवके पास जाकर उनसे अपने गुरुके आगमनकी बात बतायी। यह सुनकर श्रीज्ञानदेवके बड़े भाई श्रीनिवृत्तिनाथजीने ज्ञानदेवसे कहा—चाँगदेव हमारे अतिथि हैं, अतः उनके स्वागतके लिये तुम्हें जाना चाहिये। उस समय शीत ऋतु थी, ज्ञानदेव एक मिट्टीकी दीवालपर बैठे धूप-सेवन कर रहे थे। चाँगदेवके शिष्यों और अपने बड़े भाईकी बात सुनकर उन्होंने दीवालसे कहा—'चल'। वह मिट्टीकी दीवाल चल पड़ी। जब यह आश्चर्य चाँगदेवने देखा, तो वे सिंहसे कूदकर ज्ञानदेवजीके चरणोंमें

गिर पड़े। उनका सिद्धिका अभिमान विगलित हो गया। उन्हें लगा कि सिंह तो चेतन प्राणी है, उसे वशमें करना बहुत बड़ी बात नहीं है, परंतु ज्ञानदेवकी महिमा तो अपार है, उन्होंने तो जड़ दीवारको ही चेतन बना दिया है। श्रीज्ञानदेवजीने उन्हें उठाया, उनकी कृपादृष्टि पड़ते ही चाँगदेवमें भक्तिका संचार हो गया, उनकी आँखोंमें प्रेमाश्रु भर आये और शरीरमें रोमांच हो आया। इसी प्रकार श्रीज्ञानदेवजीने बहुत-से लोगोंको भगवद्भक्तिका उपदेश देकर भगवत्सम्मुख किया।

कुल इक्कीस वर्ष, तीन मास, पाँच दिनकी अल्पावस्थामें अर्थात् संवत् १३५३ वि० मार्गशीर्ष कृष्णा १३ को श्रीज्ञानेश्वर महाराजने जीवित-समाधि ले ली। और उनके समाधि लेनेके बाद एक वर्षके भीतर ही सोपानेदव, चांगदेव, मुक्ताबाई और निवृत्तिनाथ भी एक-एक करके इस लोकसे परमधामको पधार गये। श्रीज्ञानेश्वर महाराजके ये चार ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं—भावार्थदीपिका अर्थात् ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव, हरिपाठके अभंग तथा चांगदेव-पासठी (पैंसठी)। इनके अतिरिक्त उन्होंने योगवासिष्ठपर एक अभंगवृत्तकी टीका भी लिखी थी, पर अभीतक वह उपलब्ध नहीं हुई।

## श्रीत्रिलोचनजी

भक्तवर श्रीत्रिलोचनजी वैश्यकुलमें उत्पन्न हुए। ये बड़े ही वैष्णव भक्त थे, परंतु वे जैसी सेवा करना चाहते थे, वैसी बन नहीं पाती थी; क्योंकि उनकी पत्नीके अतिरिक्त घरमें और कोई सेवामें सहयोग देनेवाला न था। उनके मनमें एक यह बड़ी अभिलाषा थी कि कोई एक ऐसा नौकर मिल जाय जो साधुओंके मनकी बात जानकर अच्छी प्रकारसे उनकी सेवा किया करे।

अपने भक्तका मनोरथ पूरा करनेके लिये एक दिन स्वयं भगवान्ने ही नौकरका रूप धारण किया और श्रीत्रिलोचनजीके द्वारपर आये। श्रीत्रिलोचनजीने घरसे निकलते ही उन्हें देखा और इनसे पूछा—अजी! आप कहाँसे पधारे हैं, मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि आपके घरमें माता-पिता आदि कोई भी नहीं हैं। नौकररूपधारी भगवान्ने कहा—आप सच कहते हैं मेरे पिता-माता आदि कोई भी नहीं है। त्रिलोचनजीने कहा—क्या नौकरी करोगे, मुझे सन्तोंकी सेवाके लिये एक नौकर चाहिये। तब आपने कहा कि यदि मेरे स्वभावसे स्वामीका स्वभाव मिल जाय तो मैं सेवा-टहल कर सकता हूँ। श्रीत्रिलोचनजीने पूछा—आपके स्वभावसे औरोंका मेल क्यों नहीं हो पाता है? तब आपने कहा कि मैं पाँच-सात सेर अन्न नित्य खाता हूँ, इसीसे लोग नाराज हो जाते हैं और मुझे रख नहीं पाते हैं।

उस नौकरने फिर कहा—चार वर्णोंकी रीतियोंका मुझे ज्ञान है। सभी कार्योंको मैं अच्छी तरहसे मन लगाकर करता हूँ। उनमें किसीसे सहायता भी नहीं लेना चाहता हूँ। रही भक्तोंकी सेवा-टहल—उसे तो करते-करते मेरा सब जीवन ही बीता है। 'अन्तर्यामी' मेरा नाम है। मैं तो अब आपका दास हो गया। भक्त त्रिलोचनने कहा—इच्छानुसार खूब भर-पेट खाओ, किसी प्रकारका संकोच मत करो।

इसके बाद भक्त त्रिलोचनजीने अपनी स्त्रीसे कहा—तुम इस अन्तर्यामीको भोजन देते समय थोड़ी-सी भी खिन्नता मनमें मत लाना। नहीं तो यह कहीं भाग जायगा। फिर ऐसा नौकर कभी न मिलेगा। जो कुछ यह खाये, वही इसे खिलाओ। यह नित्यप्रति सन्तसेवा करेगा। श्रीत्रिलोचनजीके यहाँ अनेक साधु-सन्त नित्यप्रति आते ही रहते थे। सन्तसेवा अन्तर्यामीको हृदयसे प्रिय थी। सन्तोंकी इच्छाके अनुसार रुचिपूर्वक अन्तर्यामी उनके पैर दबाते और सब प्रकारकी सेवा करते। इस प्रकार सेवा करते-करते तेरह महीने बीत गये।

***भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज श्रीत्रिलोचनजीकी सन्त-सेवाके प्रति इस अनन्य निष्ठाका वर्णन अपने कवित्तमें इस प्रकार करते हैं—***

**भये उभै शिष्य नामदेव श्रीतिलोचन जू सूर शशि नाईं कियो जग में प्रकाश है।**
**नामा की तो बात कहि आये सुनो दूसरे की सुनेई बनत भक्त कथा रसरास है॥**
**उपजे बनिक कुल सेवैं कुल अच्युत कों ऐपैं नहिं बनै एक तिया रहै पास है।**
**टहलू न कोई साधु मनही की जानि लेत ये ही अभिलाष सदा दासनिको दास है॥ १८०॥**
**आये प्रभु टहलुवा रूपधरि द्वारपर फटी एक कामरी पन्हैंया टूटी पांय है।**
**निकसत पूछे अहो! कहां ते पधारे आप, बाप महतारी और देखिये न गाय है॥**
**बाप महतारी मेरे कोऊ नाहिं सांची कहौं, गहौं मैं टहल जो पै मिलत सुभाय हैं।**
**अनमिल बात कौन? दीजियै जनाय बहू, पाऊँ पांच सात सेर उठत रिसाय हैं॥ १८१॥**
**चारि हू बरन की जु रीति सब मेरे हाथ साथ हू न चाहौं करौं नीके मन लाइ कै।**
**भक्तनकी सेवा सो तो करत जनम गयो नयौ कछु नाहिं डारे बरस बिताइ कै॥**
**अंत्रजामी नाम मेरो चेरो भयो तेरो हौं तो बोल्यो भक्त भावै खावो निशंक अघाइ कै।**
**कामरी पन्हैयां सब नई करि दई और मीड़ि कै न्हवायो तन मैल कौं छुटाइ कै॥ १८२॥**
**बोल्यो घर दासी सों तू रहै याकी दासी होइ देखियो उदासी देत ऐसो नहीं पावनौ।**
**खाय सो खवावो सुखपावो नित नित कियै जियै जग माहिं जौलौं मिलि गुन गावनौ॥**
**आवत अनेक साधु भावत टहल हिये लिये चाव दाबैं पांव सबनि लड़ावनौ।**
**ऐसे ही करत मास तेरह बितीत भये गये उठि आपु नेकु बात कौ चलावनौ॥ १८३॥**

श्रीत्रिलोचनजीकी स्त्री एक दिन पड़ोसिनके घर गयी, तब उसने पूछा कि तुम इतनी कमजोर एवं उदास क्यों हो गयी हो? भक्तजीकी स्त्रीने उत्तर दिया कि क्या कहूँ? मेरे पतिदेव कहींसे एक नौकर लिवाकर लाये हैं, वह ऐसा खोटा है कि बहुत-सा भोजन करनेपर भी उसका पेट नहीं भरता है। इसलिये मुझे अधिक आटा पीसना पड़ता है, उसीसे मेरा शरीर अति दुर्बल हो गया है। देखो, बहन! मैंने जो यह बात तुमसे कही है, उसे तुम किसी दूसरेसे मत कहना। इसे अपने मनमें ही रखना। यदि कहीं उसने सुन लिया तो सबेरे ही चला जायगा। वे तो अन्तर्यामी थे, उन्होंने सुन लिया और तुरंत उठकर चले गये।

अन्तर्यामीके चले जानेके बाद तीन दिन बीत जानेपर भी श्रीत्रिलोचनजीने अन्न-जल नहीं लिया। वे दुखी होकर स्त्रीसे कहने लगे—हाय! अब ऐसा चतुर सेवक मुझे कहाँ मिलेगा? तू तो बड़ी अभागिनी है, ऐसी बात क्यों कही? वह सन्त-सेवाका बड़ा प्रेमी था। किस उपायसे अब उसे लाऊँ? जब श्रीत्रिलोचनजी इस प्रकार अपने मनमें पछताने लगे। तब आकाशवाणी हुई कि तुम अन्न-प्रसाद पाओ और जल पियो। सन्तोंके प्रति जो तुम्हारी प्रीतिकी रीति है, वह मुझे अति प्रिय लगी; इसीसे तुम्हारा सेवक बनकर सन्तसेवा की। मैं तुम्हारे अधीन तुम्हारा दास हूँ और सदा तुम्हारे घरमें ही लीन रहता हूँ। यदि तुम कहो तो पहलेकी तरह मैं तुम्हारे यहाँ आकर रहूँ और सदा सेवा करूँ।

आकाशवाणी सुनकर श्रीत्रिलोचनजीने जब रहस्य जाना तो उन्हें और अधिक कष्ट हुआ, मैंने भगवान्‌को अपना दास करके माना। प्रभु मेरे घरमें आये, इतने दिन रहे, पर मैं ऐसा मूढ़ था कि उनको नहीं जान सका। अब वे किसी प्रकार आ जायँ तो मैं दौड़कर उनके पैरोंमें लिपट जाऊँ। इस प्रकार त्रिलोचनजी अन्तर्यामीके ध्यानमें सदा मग्न रहने लगे।

***श्रीप्रियादासजीने इस वृत्तान्तका वर्णन निम्न कवित्तोंमें किया है—***

**एक दिन गई ही परोसिनके भक्तबधू पूछि लई बात अहो काहेको मलीन है।**
**बोली मुसकाय वे टहलुवा लिवाय ल्याये क्योंहू न अघाय खोट पीसि तन छीन है॥**

**काहू सौं न कहो यह गहौ मन मांझ एरी तेरी सौं सुनैगो जोपै जात रहे भीन है।**
**सुनि लई यही नेकु गये उठि हुती टेक दुखहूं अनेक जैसे जल बिन मीन है॥ १८४॥**
**बीते दिन तीन अन्नजल करि हीन भये ऐसो सो प्रवीन अहो फेरि कहाँ पाइये।**
**बड़ी तू अभागी बात काहे को कहन लागी रागी साधु सेवा मैं जु कैसे करि ल्याइये॥**
**भई नभबानी तुम खावो पीवो पानी यह मैं ही मति ठानी मोकौं प्रीति रीति भाइये।**
**मैं तौ हौं अधीन तेरे घर ही में रहौं लीन जो पै कहौ सदा सेवा करिबे को आइये॥ १८५॥**
**कीने हरिदास मैं तो दास हू न भयौं नेकु बड़ो उपहास मुख जग में दिखाइये।**
**कहैं जन भक्त कहा भक्ति हम करी कहौ, अहो अज्ञताई रीति मन में न आइयै॥**
**उनकी तो बात बनि आवै सब उनही सों गुन ही कौं लेत मेरे औगुन छिपाइयै।**
**आये घर मांझ तऊ मूढ़ मैं न जानि सक्यों आवैं अब क्यों हूं धाय पांय लपटाइयै॥ १८६॥**

## श्रीमद्वल्लभाचार्यजी

लगभग पाँच सौ साल पहलेकी बात है, संवत् १५३५ वि० में दक्षिण भारतसे एक तैलंग ब्राह्मण लक्ष्मणभट्ट तीर्थयात्राके लिये उत्तर भारतका भ्रमण कर रहे थे। वैशाख मास था, वे उस समय अपनी पत्नी इल्लम्मागारुके सहित काशीमें थे। अचानक सुना गया कि काशीपर यवनोंका आक्रमण होनेवाला है; अतः वे दक्षिणकी ओर चल पड़े। रास्तेमें चम्पारण्य नामक वनमें इल्लम्माने पुत्र-रत्नको जन्म दिया। वैशाख कृष्ण एकादशी थी, माताने महानदीके निर्जन तटपर नवजात बालकको छोड़ दिया। पर माताकी ममताने करवट ली। लक्ष्मण और इल्लम्मा बालकको लेकर काशी लौट आये, हनुमानघाटपर रहने लगे। बालक अद्भुत प्रतिभा और सौन्दर्यसे सम्पन्न होनेके कारण सबका प्रियपात्र था। बाल्यावस्थामें लोगोंने उसे 'बालसरस्वती वाक्पति' कहना आरम्भ किया। विष्णुचित्, तिरुम्मल और माधव यतीन्द्रकी शिक्षासे बाल्यावस्थामें ही वल्लभ समस्त वैष्णव-शास्त्रोंमें पारंगत हो गये, उनमें भगवद्भक्तिका उदय होने लगा; तुलसीमाला, एकादशी, विष्णुव्रत और भगवदाराधनमें उनका समय बीतने लगा; तेरह सालकी ही अवस्थामें वे वेद, वेदांग, पुराण, धर्मशास्त्र आदिमें पूर्ण निष्णात हो गये।

धीरे-धीरे उनकी कीर्ति फैलने लगी, लोग उनकी भगवद्भक्तिकी सराहना करने लगे। श्रीवल्लभाचार्यके चरित्र-विकासपर विष्णुस्वामी-सम्प्रदायके भक्ति-सिद्धान्तोंका अधिक मात्रामें प्रभाव पड़ा था। उन्होंने विजयनगरकी राजसभामें शंकरके दार्शनिक सिद्धान्तों, वेदान्त और मायावादका खण्डन करके भगवान्‌की शुद्ध भक्तिकी मर्यादा स्थापित की। राजाने उनका कनकाभिषेक किया, वे जगद्‌गुरु महाप्रभु श्रीमदाचार्यकी उपाधिसे सम्मानित किये गये। कनकाभिषेकके बाद उन्होंने उत्तर भारतमें भागवतधर्मके प्रचारके लिये यात्रा की। अट्ठाईस सालकी अवस्थामें उन्होंने विधिपूर्वक विवाह कर लिया। उनकी पत्नी साध्वी महालक्ष्मीने उनके जीवनको सुखमय और भगवदीय बनानेकी प्रत्येक चेष्टा की। उनका गृहस्थ-जीवन बहुत आनन्दप्रद रहा। उस समय वे प्रयागके सन्निकट यमुनाके दूसरे तटपर अड़ैलमें रहा करते थे। वे आचार्यत्व पद ग्रहण कर चुके थे। दक्षिणापथ और उत्तरापथ दोनों एक स्वरसे उनके पाण्डित्य, भक्ति-सिद्धान्त और आचार्यत्वके सामने नत हो चुके थे। अड़ैल-निवासकालमें ही महाप्रभु वल्लभने परमानन्ददासको ब्रह्मसम्बन्ध दिया था।

आचार्यने पुष्टिमार्गकी संस्थापना की। उन्होंने श्रीमद्भागवतमें वर्णित भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंमें पूर्ण और अखण्ड आस्था प्रकट की। उनकी प्रेरणासे स्थान-स्थानपर श्रीमद्‌भागवतका पारायण होने लगा। वे स्वयं भागवतसप्ताह-श्रवणमें बड़ी अभिरुचि रखते थे। उन्होंने अपने महाभागवत होनेकी सार्थकता चरितार्थ कर दी।

सारे भागवत-धर्मावलम्बियोंके वे आश्रय हो गये। अपने समकालीन श्रीचैतन्य महाप्रभुसे भी उनकी जगदीश्वर-यात्राके समय भेंट हुई थी। दोनोंने एक-दूसरेके साक्षात्कारसे अपनी ऐतिहासिक महत्ताकी एक-दूसरेपर छाप लगा दी। उन्होंने ब्रह्मसूत्र, श्रीमद्भागवत और श्रीगीताको अपने पुष्टिमार्गका प्रधान साहित्य घोषित किया। प्रेमलक्षणा भक्तिपर विशेष जोर दिया। पुष्टि भगवदनुग्रह या कृपाका प्रतीक है। उन्होंने वात्सल्यरससे ओतप्रोत भक्ति-पद्धतिकी सीख दी। भगवान्‌के यश-लीला-गानको वे अपने पुष्टिमार्गका श्रेय मानते थे।

***श्रीप्रियादासजी महाराज इस पुष्टिमार्गका वर्णन अपने एक कवित्तमें इस प्रकार करते हैं—***

**हिये में स्वरूप सेवा करि अनुराग भरे ढरे और जीवनि की जीवनि को दीजिये।**
**सोई लै प्रकास घर-घर में विलास कियो अति ही हुलास फल नैननि को लीजिये॥**
**चातुरी अवधि नेकु आतुरी न होत किहूँ चहूँ दिसि नाना राग भोग सुख कीजिये।**
**बल्लभजू नाम लियो पृथु अभिराम रीति गोकुल में धाम जानि सुन मन रीझिये॥ १८७॥**

यद्यपि श्रीमद्वल्लभाचार्यजी महाराज भगवान् श्रीकृष्णके बालरूपके आराधक थे, पर उनके लिये भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीराममें कोई भेद नहीं था। कहते हैं कि एक बार आप श्रीगिरिश्रेष्ठ चित्रकूटपर गये और वहाँ आपने श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणका पारायण किया। भगवान् श्रीरामने साक्षात् प्रकट होकर आपके द्वारा अर्पित केलेका भोग आरोगा। आप अपनी बैठकोंमें भी भागवत और गीताके साथ-साथ वाल्मीकीय रामायणका सदुपदेश दिया करते थे।

श्रीवल्लभके जीवनका अधिकांश व्रजमें बीता, वे अड़ैलसे व्रज आये। अड़ैलसे व्रज आते समय उन्होंने गऊघाटपर महाकवि सूरदासको दीक्षित किया, दो या तीन दिनों बाद उसी यात्रामें विश्रामघाटपर कृष्णदास अधिकारीको पुष्टिमार्गमें सम्मिलितकर ब्रह्म-सम्बन्ध दिया। कुम्भनदास भी उनके शिष्य हुए। गोवर्धनमें एक मन्दिर बनवाकर उसमें श्रीनाथजीकी मूर्ति प्रतिष्ठित की। उनके चौरासी शिष्योंमें प्रमुख सूर, कुम्भन, कृष्णदास और परमानन्द श्रीनाथजीकी विधिवत् सेवा और कीर्तन आदि करने लगे। उन्होंने वैष्णवोंको गुरुतत्त्व सुनाया, लीला-भेद बताया। सूरने उनकी चरण-भक्तिसे साहित्यमें भगवान्‌की लीलाका सागर उँड़ेल दिया, कुम्भनदासने श्रीवल्लभके प्रतापसे प्रमत्त होकर सीकरीमें लोकपति अकबरका मद-मर्दन कर दिया, परमानन्ददासने परमानन्दसागरकी सृष्टि की, श्रीकृष्णदासने कहा—***'कृष्णदास गिरिधरके द्वारे श्रीवल्लभ-पद-रज-बल गरजत।'*** चारों महाकवि उनकी भक्ति-कल्पलताके अमर फल थे।

एक बार एक सीधे-साधे सन्त दर्शन करनेके लिये गोकुलको गये। वहाँ जाकर गोष्ठमें गायोंके झुण्डका, गोपालका तथा मन्दिरोंमें बालकृष्णकी सेवा-पूजा और उत्सवोंका दर्शन करके प्रेममें मगन हो गये। फिर उन सन्तने एक छोंकरके पेड़पर अपना ठाकुर-बटुवा लटका दिया और जाकर श्रीवल्लभाचार्यजीके दर्शन किये, जिससे उन्हें बड़ा भारी सुख हुआ। फिर आकर देखा तो ठाकुर-बटुवा नहीं था। तब वे सन्त फिर श्रीवल्लभाचार्यजीके निकट गये और बटुवा न मिलनेकी बात सुनायी। सन्तको चिन्तित एवं उदास देखकर आचार्यने कहा कि वहीं जाकर देखिये। सन्तने आकर देखा तो छोंकरके पेड़पर अनेकों बटुवे लटके हैं। उनका होश-हवास उड़ गया, फिर आचार्यके पास आकर बोले—प्रभो! वहाँ तो अनेक बटुवे हैं। इन्होंने कहा—आप अपना बटुवा पहचान लीजिये, आप तो नित्य सेवा-पूजा करते हैं, फिर भी अपने ठाकुरजीको नहीं पहचान सकते हैं।

इस घटनासे वे सन्त समझ गये कि यह सब श्रीवल्लभाचार्यजीका ही प्रभाव है, उनकी आँखें खुल

गयीं। अपने ठाकुरको पहचाननेकी अभिलाषा करने लगे। उन्होंने आचार्यसे प्रार्थना की कि मुझे वह उपाय बता दीजिये, जिससे मैं अपने सेव्य प्रभुके रूपको प्राप्त कर सकूँ। आचार्यने कहा कि हृदयसे प्रेम करो, भाव-भक्तिपूर्वक सेवा किया करो; क्योंकि यह प्रेममार्ग अतिविचित्र और सुन्दर है। आप वहीं छोंकरके वृक्षपर जाकर देखो। इस बार आकर उन्होंने देखा तो केवल अपने ही ठाकुरजी दिखायी पड़े, तब तो ये अति आनन्दित हुए। उन्होंने ठाकुरजीको हृदयसे लगा लिया। उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। आचार्यकी कृपासे उन्होंने भक्तिके स्वरूपको जान लिया।

*श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका वर्णन अपने कवित्तोंमें करते हुए कहते हैं—*

**गोकुलके देखिबे कौं गयौ एक साधु सूधो गोकुल मगन भयो रीति कछु न्यारिये।**
**छोंकरके वृक्षपर बटुवा झुलाय दियो कियो जाय दरशन सुख भयो भारिये॥**
**देखै आइ नाहीं प्रभु फेरि आप पास आयो चिंता सो मलीन देखि कही जा निहारिये।**
**वैसेई सरूप कई गई सुधि बोल्यो आनि लीजिये पिछानि कह्यो सेवा नित धारिये॥ १८८॥**
**खुलि गईं आंखैं अभिलाखैं पहिचानि कीजै दीजै जू बताइ मोहिं पाऊँ निजरूप है।**
**कही जावो वाही ठौर देखो प्रेम लेखौ हिये लिये भाव सेवा करौ मारग अनूप है॥**
**देखिकै मगन भयो लयो उर धारि हरि नैन भरि आये जान्यो भक्तिको स्वरूप है।**
**निसि दिन लग्यौ पग्यौ जग्यौ भाग पूरन हो पूरन चमत्कार कृपा अनुरूप है॥ १८९॥**

एक बार आप श्रीराधाजीके धाम बरसानाके एक गह्वर वनमें अपने परिकरोंके साथ गये थे। वहाँ आपने देखा कि एक अजगरको सहस्रों चींटे-चींटियाँ खा रहे हैं। आपने कृपाकर उस जीवका उद्धार किया। परिकरोंके पूछनेपर आपने बताया कि पूर्वजन्ममें ये एक धनी-मानी सन्त थे और ये चींटे-चींटियाँ इनके शिष्य थे, इन्होंने अपने शिष्योंका धन तो खूब लूटा, परंतु उनका क्या अपना भी उद्धार न कर सके। इसलिये इन्हें इस घृणित योनिमें आना पड़ा।

व्रजमें श्रीनाथजीकी कीर्ति-पताका फहराकर वे अपने पूर्व निवासस्थान 'अड़ैल' में चले आये। श्रीआचार्यके दो पुत्र हुए। पहलेका नाम गोपीनाथ था और दूसरेका नाम श्रीविट्ठलनाथ था। उनका पारिवारिक जीवन अत्यन्त सुखमय और शान्त था।

भक्ति-प्रचारार्थ आपने सम्पूर्ण भारतवर्षकी तीन बार यात्रा की थी। इन यात्राओंके दौरान आप जहाँ-जहाँ ठहरे थे, उन्हें बैठक कहा जाता है, आपकी चौरासी बैठकें प्रसिद्ध हैं। एक बैठक आपकी ताम्रपर्णी नदीके तटपर भी है, कहते हैं कि वहाँके राजा अकाल मृत्यु-निवारणार्थ विद्वान् ब्राह्मणोंकी सलाहसे स्वर्णपुरुषका तुलादान कर रहे थे, परंतु डरके मारे कोई भी ब्राह्मण उस दानको लेनेको प्रस्तुत नहीं हो रहा था। राजाका ब्राह्मणोंके प्रति इस कारण भाव शिथिल हो रहा था। उसी समय श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज वहाँ आये और राजाकी प्रार्थनापर एवं ब्राह्मणत्वकी मर्यादा रखनेके लिये उन्होंने दान लेना स्वीकार कर लिया। जब आप उस स्वर्णपुरुषको ग्रहण करनेके लिये आगे बढ़े तो उसने एक अँगुली उठायी। यह देखकर आचार्य चरणने अपनी तीन उँगलियाँ उठायीं। इसपर उस स्वर्णपुरुषने सिर नीचा कर लिया। आचार्य चरणने उसे ग्रहणकर टुकड़े-टुकड़े कराकर सब ब्राह्मणोंमें बँटवा दिया। ब्राह्मणोंके पूछनेपर आपने बताया कि स्वर्णपुरुष एक अँगुली दिखाकर पूछता था कि क्या तुम एक बार भी दिनमें सन्ध्या करते हो, इसपर मैंने तीन उँगलियाँ दिखाकर उसे बताया कि मैं एक नहीं, तीनों सन्ध्या नियमित करता हूँ। इस प्रकार आपने सन्ध्याके महत्त्वका भी प्रतिपादन किया।

एक बारकी बात है—एक सज्जन शालग्रामशिला एवं प्रतिमा दोनोंकी एक साथ ही पूजा कर रहे थे; परंतु उनके मनमें भेदभाव था। वे शिलाको अच्छी एवं प्रतिमाको निम्नश्रेणीकी समझते थे। आचार्यने उन्हें समझाया कि 'भगवद्-विग्रहमें इस तरहकी भेदभावना नहीं रखनी चाहिये।' इसपर वे सज्जन बिगड़ खड़े हुए एवं अकड़कर प्रतिमाकी छातीपर शालग्रामको रखकर रातमें पधरा दिया। प्रातःकाल देखनेपर मालूम हुआ कि शालग्रामकी शिला चूर-चूर हो गयी है। तब तो उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ और जाकर उन्होंने आचार्यचरणोंसे क्षमा माँगी। फिर आचार्यने भगवान्के चरणामृतसे उस चूर्णको भिगोकर गोली बनानेको कहा। ऐसा करनेपर मूर्ति फिर ज्यों-की-त्यों हो गयी।

उनका समग्र जीवन ऐसी चमत्कारपूर्ण घटनाओंसे ओतप्रोत था; परंतु एक महान् भगवद्भक्तके जीवनमें इन चमत्कारोंका कोई ऊँचा स्थान है ही नहीं। गोकुलमें भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिये थे। सबसे ऊँची वस्तु तो उनके जीवनमें थी—भगवान्की विशुद्ध और अनन्यभक्ति।

उन्होंने तन-मन-धन सब कुछ भगवान्को समर्पित कर दिया था। एक बार भोगोंके लिये द्रव्यका अभाव देखकर उन्होंने सोनेकी कटोरी गिरवी रखवाकर भगवान्के सामने भोग उपस्थित किया। उन्होंने स्वयं प्रसाद नहीं लिया। दो दिनके बाद द्रव्य आनेपर प्रसाद लिया। वैष्णवोंके पूछनेपर उन्होंने कहा—'कटोरी ठाकुरजीको पूर्वसमर्पित थी, उनके भागका प्रसाद लेना महापातक है।' इस घटनासे उनकी कथनी-करनीके साम्यका पता चलता है। आचार्यने घोषणा कर दी थी कि 'मेरे वंशमें, या मेरा कहलाकर, जो कोई भगवद्-द्रव्यका उपयोग करेगा, उसका नाश हो जायगा।'

श्रीवल्लभाचार्य महान् भक्त होनेके साथ ही दर्शनशास्त्रके प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने ब्रह्मसूत्रपर बड़ा सुन्दर 'अणुभाष्य' लिखा है और श्रीभागवतके दशम स्कन्ध तथा कुछ अन्य स्कन्धोंपर सुबोधिनी टीका लिखी है। श्रीमद्भागवतको वे प्रस्थानचतुष्टयके अन्तर्गत मानते थे।

श्रीवल्लभके परमधाम पधारनेके विषयमें एक घटना प्रसिद्ध है। ये अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें अड़ैलसे लौटकर प्रयाग होते हुए काशी आ गये थे। अपने जीवनके कार्य समाप्तकर वे एक दिन हनुमानघाटपर गंगास्नान करने गये। आप मौनव्रत ले चुके थे, अतः पुत्रों और शिष्योंद्वारा उपदेशकी प्रार्थना करने पर गंगाकी रेतीपर साढ़े तीन श्लोक लिखकर उन्हें आश्वस्त किया, फिर गंगाजीमें प्रवेशकर विलीन हो गये। कहते हैं, तभी गंगाजीके प्रवाहसे एक तेजपुंज निकला और अनन्त आकाशमें विलीन हो गया। हनुमानघाटपर उनकी एक बैठक बनी हुई है। इस प्रकार वि० सं० १५८७ आषाढ़ शुक्ला ३ को ५२ वर्षकी अवस्थामें आपने भगवान्के आज्ञानुसार अलौकिक रीतिसे इहलीला संवरण करके गोलोकको प्रयाण किया।

## कलियुगमें प्रेमकी प्रधानता प्रकट करनेवाले भक्त

**भक्तदास इक भूप श्रवन सीता हर कीनो।**
**मार मार करि खड़ग बाजि सागर मैं दीनो॥**
**नरसिंह को अनुकरन होइ हिरनाकुस मार्‌यो।**
**वहै भयो दसरत्थ राम बिछुरत तन छार्‌यो॥**
**कृष्न दाम बाँधे सुने तिहि छन दीयो प्रान।**
**संत साखि जानैं सबै प्रगट प्रेम कलिजुग प्रधान॥ ४९॥**

सभी लोग जानते हैं और सन्तजन इस बातके साक्षी हैं कि कलियुगमें केवल प्रेमसे ही भगवान् प्रकट होते हैं, अतः प्रेम ही प्रधान है। भक्तोंका दास कुलशेखर नामका एक राजा था। उसने रामायणकी कथामें रावणद्वारा श्रीसीताजीका हरण सुना। सुनते ही उसे आवेश आ गया और वह तुरन्त हाथमें तलवार लेकर घोड़ेपर चढ़कर 'मारो-मारो' चिल्लाता हुआ दौड़ा और घोड़ेको समुद्रमें कुदा दिया। दूसरे एक प्रेमी भक्तने नृसिंहलीलाके अनुकरणमें नृसिंह बनकर हिरण्यकशिपु बने हुए व्यक्तिको सचमुच मार डाला। पुनः रामलीलामें उसी भक्तने दशरथ बनकर श्रीरामजीके वियोगमें अपने शरीरका त्याग कर दिया। श्रीरतिवन्तीबाईने श्रीभागवतकी कथामें सुना कि माता यशोदाने रस्सीसे श्रीकृष्णको बाँध दिया। सुनते ही अपने प्राण त्याग दिये। इन भक्तिचरित्रोंसे कलियुगमें प्रेमकी प्रधानता प्रकट एवं सिद्ध हुई॥ ४९॥

***इन भगवत्प्रेमी भक्तोंका पावन चरित्र संक्षेपमें इस प्रकार है—***

## श्रीकुलशेखरजी

कोल्लिनगर (केरल)-के राजा दृढ़व्रत बड़े धर्मात्मा थे, किंतु उनके कोई सन्तान न थी। उन्होंने पुत्रके लिये तप किया और भगवान् नारायणकी कृपासे द्वादशीके दिन पुनर्वसु नक्षत्रमें उनके घर एक तेजस्वी बालकने जन्म लिया। बालकका नाम कुलशेखर रखा गया। ये भगवान्की कौस्तुभमणिके अवतार माने जाते हैं। राजाने कुलशेखरको विद्या, ज्ञान और भक्तिके वातावरणमें संवर्धित किया। कुछ ही दिनोंमें कुलशेखर तमिल और संस्कृत भाषामें पारंगत हो गये और इन दोनों प्राचीन भाषाओंके सभी धार्मिक ग्रन्थोंका उन्होंने आलोडन कर डाला। उन्होंने वेद-वेदान्तका अध्ययन किया और चौंसठ कलाओंका ज्ञान प्राप्त किया। यही नहीं, वे राजनीति, युद्धविद्या, धनुर्वेद, आयुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा नृत्यकलामें भी प्रवीण हो गये। जब राजाने देखा कि कुलशेखर सब प्रकारसे राज्यका भार उठानेमें समर्थ हो गया है, तब कुलशेखरको राज्य देकर वे स्वयं मोक्षमार्गमें लग गये। कुलशेखरने अपने देशमें रामराज्यकी पुनः स्थापना की। प्रत्येक गृहस्थको अपने-अपने वर्ण और आश्रमके अनुसार शिक्षा देनेका समुचित प्रबन्ध किया। उन्होंने व्यवसायों तथा उद्योगधन्धोंको सुव्यवस्थित रूप देकर प्रजाके दारिद्र्यको दूर किया। अपने राज्यको धन, ज्ञान और सन्तोषकी दृष्टिसे एक प्रकारसे स्वर्ग ही बना दिया। यद्यपि वे हाथमें राजदण्ड धारण करते थे, पर उनके हृदयने भगवान् विष्णुके चरण-कमलोंको दृढ़तापूर्वक पकड़ रखा था। उनका शरीर यद्यपि सिंहासनपर बैठता था, पर हृदय भगवान् श्रीरामका सिंहासन बन गया था। राजा होनेपर भी उनकी विषयोंमें तनिक भी प्रीति नहीं थी। वे सदा यही सोचा करते 'वह दिन कब होगा, जब ये नेत्र भगवान्के त्रिभुवन-सुन्दर मंगलविग्रहका दर्शन पाकर कृतार्थ होंगे? मेरा मस्तक भगवान् श्रीरंगनाथके चरणोंके सामने कब झुकेगा? मेरा हृदय भगवान् पुण्डरीकाक्षके मुखारविन्दको देखकर कब द्रवित होगा, जिनकी इन्द्रादि देवता सदा स्तुति करते रहते हैं? ये नेत्र किस कामके हैं, यदि इन्हें भगवान् श्रीरंगनाथ और उनके भक्तोंके दर्शन नहीं प्राप्त होते?'

भक्तकी सच्ची पुकार भगवान् अवश्य सुनते हैं। एक दिन रात्रिके समय भगवान् नारायण अपने दिव्य विग्रहमें भक्त कुलशेखरके सामने प्रकट हुए। कुलशेखर उनका दर्शन प्राप्तकर शरीरकी सुध-बुध भूल गये, उसी समयसे उनका एक प्रकारसे कायापलट ही हो गया। वे सदा भगवद्भावमें लीन रहने लगे। उनका सारा समय सत्संग, कीर्तन, भजन, ध्यान और भगवान्के अलौकिक चरित्रोंके श्रवणमें ही व्यतीत होता। उनके इष्टदेव श्रीराम थे और वे दास्यभावसे उनकी उपासना करते थे।

एक दिन वे बड़े प्रेमके साथ श्रीरामायणकी कथा सुन रहे थे। प्रसंग यह था कि भगवान् श्रीराम सीताजीकी रक्षाके लिये लक्ष्मणको नियुक्तकर स्वयं अकेले खर-दूषणकी विपुल सेनासे युद्ध करनेके लिये उनके सामने जा रहे हैं। पण्डितजी कह रहे थे—

**चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।**
**एकश्च रामो धर्मात्मा कथं युद्धो भविष्यति॥**

अर्थात् धर्मात्मा श्रीराम अकेले चौदह हजार राक्षसोंसे युद्ध करने जा रहे हैं, इस युद्धका परिणाम क्या होगा?

कुलशेखर कथा सुननेमें इतने तन्मय हो रहे थे कि उन्हें यह बात भूल गयी कि यहाँ रामायणकी कथा हो रही है। उन्होंने समझा कि 'भगवान् वास्तवमें खर-दूषणकी सेनाके साथ अकेले युद्ध करने जा रहे हैं।' यह बात उन्हें कैसे सह्य होती, वे तुरंत कथामेंसे उठ खड़े हुए। उन्होंने उसी समय शंख बजाकर अपनी सारी सेना एकत्र कर ली और सेनानायकको आज्ञा दी कि 'चलो, हमलोग श्रीरामकी सहायताके लिये राक्षसोंसे युद्ध करने चलें।' ज्यों ही वे वहाँसे जानेके लिये तैयार हुए, उन्होंने पण्डितजीके मुँहसे सुना कि 'श्रीरामने अकेले ही खर-दूषणसहित सारी राक्षससेनाका संहार कर दिया।' तब कुलशेखरको शान्ति मिली और उन्होंने सेनाको लौट जानेका आदेश दिया।

***श्रीप्रियादासजी कुलशेखरके इस भक्तिभावका अपने दो कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—***

**सन्त साखि जानै कलिकाल में प्रगट प्रेम बड़ोई असन्त जाके भक्ति में अभाव है।**
**हुतो एक भूप राम रूप ततपर महा राम ही की लीला गुन सुनै करि भाव है॥**
**विप्र सों सुनावै सीता चोरी को न गावै हियो खरो भरि आवै वह जानत सुभाव है।**
**पर्‍यो द्विज दुखी निज सुवन पठाइ दियो जानै न सुनायौ भरमायौ कियो घाव है॥ १९०॥**
**मार-मार करि कर खड्ग निकासि लियौ दियौ घोरौ सागर मैं सो आवेस आयो है।**
**मारौं याहि काल दुष्ट रावन बिहाल करौं पांवन को देखौं सीता भाव दृग छायो है॥**
**जानकी रवन दोऊ दरशन दियो आनि बोले बिन प्रान कियौ नीच फल पायो है।**
**सुनि सुख भयौ गयौ शोक हृदै दारुन जो रूप को निहारि नयो फेरिकै जिवायो है॥ १९१॥**

भक्तिका मार्ग भी बाधाओंसे शून्य नहीं है। मन्त्रियों और दरबारियोंने जब यह देखा कि महाराज राजकाजको भुलाकर रात-दिन भक्तिरसमें डूबे रहते हैं और उनके महलोंमें चौबीसों घण्टे भक्तोंका जमाव रहता है, तब उन्हें यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने सोचा—'कोई ऐसा उपाय रचना चाहिये, जिससे राजाका इन भक्तोंकी ओरसे मन फिर जाय।' परंतु यह कब सम्भव था? एक दिनकी बात है, राज्यके रत्नभण्डारसे एक बहुमूल्य हीरा गुम हो गया। दरबारियोंने कहा—'हो-न-हो, यह काम उन भक्तनामधारी धूर्तोंका ही है।' राजाने कहा—'ऐसा कभी हो नहीं सकता।' मैं इस बातको प्रमाणित कर सकता हूँ कि 'वैष्णव भक्त इस प्रकारका आचरण कभी नहीं कर सकते।' उन्होंने उसी समय अपने नौकरोंसे कहकर एक बर्तनमें बन्द कराकर एक विषधर सर्प मँगवाया और कहा—'जिस किसीको हमारे वैष्णव भक्तोंके प्रति सन्देह हो, वह इस बर्तनमें हाथ डाले, यदि उसका अभियोग सत्य होगा तो साँप उसे काट नहीं सकेगा।' उन्होंने यह भी कहा—'मेरी दृष्टिमें वैष्णव भक्त बिल्कुल निरपराध हैं। किन्तु यदि वे अपराधी हैं तो सबसे पहले इस बर्तनमें मैं हाथ डालता हूँ। यदि ये लोग दोषी नहीं हैं तो साँप मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।' यों कहकर उन्होंने अपना हाथ झट उस बर्तनके अन्दर डाल दिया और लोगोंने आश्चर्यके साथ देखा कि साँप अपने स्थानसे हिला भी नहीं, वह मन्त्रमुग्धकी भाँति ज्यों-का-त्यों बैठा रहा। दरबारीलोग इस बातपर बड़े लज्जित हुए और अन्तमें वह हीरा भी मिल गया। इधर कुलशेखर तीर्थयात्राके लिये निकल पड़े और अपनी भक्तमण्डलीके साथ भजन-कीर्तन करते हुए भिन्न-भिन्न तीर्थोंमें घूमने लगे।

वे कई वर्षोंतक श्रीरंगक्षेत्रमें रहे। उन्होंने वहाँ रहकर 'मुकुन्दमाला' नामक संस्कृतका एक बहुत सुन्दर स्तोत्र-ग्रन्थ रचा, जिसका संस्कृत जाननेवाले अब भी बड़ा आदर करते हैं। इसके बाद ये तिरुपतिमें रहने

लगे और वहाँ रहकर इन्होंने बड़े सुन्दर भक्तिरससे भरे हुए पदोंकी रचना की।

इन्होंने मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या आदि कई उत्तरके तीर्थोंकी भी यात्रा की थी और श्रीकृष्ण तथा श्रीरामकी लीलाओंपर भी कई पद रचे थे।

### श्रीलीलानुकरणजी

एक बार जगन्नाथधाममें नृसिंहलीला हुई, उसमें एक प्रेमी भक्तने नृसिंहका वेश धारणकर लीलाका अनुकरण किया और आवेशमें आकर उसने हिरण्यकशिपुको सचमुच ही मार डाला। कुछ लोग कहने लगे कि इसने द्वेषवश मारकर बदला चुकाया है तो कुछ लोग कहते थे कि इसने आवेशमें आकर मारा है। अन्तमें परीक्षा करनेके लिये लोगोंने कहा कि इन्हें रामलीलामें दशरथ बनाओ, तब पता लग जायगा। रामलीलाकी तैयारी हुई। इन्हें दशरथ बनाया गया। श्रीरामजीके वन चले जानेपर उनके वियोगमें व्याकुल होकर विलाप करते-करते इन्होंने अपना शरीर त्यागकर भावको पूरा कर दिया।

### श्रीरतिवन्तीजी

श्रीरतिवन्तीजी परम भगवद्भक्त थीं। इन्हें भगवान् श्रीकृष्णका बालरूप अत्यन्त प्रिय था। ये प्रतिदिन बड़ी ही श्रद्धा और प्रेमसे यशोदानन्दनकी पूजा करतीं और हर समय उनके भोगकी सामग्री जुटानेमें ही लगी रहतीं। ये चाहे कोई भी काम करतीं, परंतु मन इनका हर समय नन्द-नन्दनके ध्यानमें ही निमग्न रहता था। श्रीकृष्ण-चरित्रकी कथा कहीं भी होती तो पूजाके अतिरिक्त सारा काम छोड़कर ये दौड़ती हुई चली जातीं। कथा अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसे ध्यानपूर्वक सुनतीं तथा अन्तमें सबके चले जानेपर ही वहाँसे उठती थीं।

एक दिनकी बात है, व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रके लिये वे भोग-सामग्री तैयार कर रही थीं। अतः कथा सुनने ये नहीं जा सकीं। इन्होंने उस समय अपने पुत्रको कथा सुननेके लिये भेज दिया।

उस दिन ऊखल-बन्धन-लीलाका प्रकरण था। बच्चेने लौटकर अपनी मातासे सारी कथा संक्षेपमें इस प्रकार सुना दी—'व्रजबालाओंने श्रीकृष्णकी माखनचोरीकी शिकायत नन्दरानीसे पहले ही कर दी थी। एक दिन यशोदाने स्वयं अपनी आँखोंसे कन्हैयाको माखन चुराते और उसे ग्वालबालों तथा बन्दरोंमें वितरण करते देख लिया। इसपर मैया क्रोधित हो गयी और उसने सुकुमार कन्हैयाको पकड़कर ऊखलसे बाँध दिया।'

श्रीकृष्णचन्द्रके ऊखलमें बाँधनेकी बात सुनते ही श्रीरतिवन्तीजी अधीर हो गयीं। वे दुःखसे घबरा उठीं और उन्होंने तुरंत अपने प्राण छोड़ दिये। नश्वर देह छोड़ते समय उनके मुँहसे इतना ही निकला था कि 'यशोदारानी-सरीखी निष्ठुर स्त्री जगत्में नहीं होगी। उसने कुसुम-सुकुमार कन्हैयाको ऊखलसे……।'

***श्रीप्रियादासजीने श्रीलीलानुकरणजी और श्रीरतिवन्तीजीके इस भगवत्प्रेमका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—***

**नीलाचल धाम तहाँ लीला अनुकर्न भयो नरसिंह रूप धरि साँचे मारि डार्‌यो है।**
**कोऊ कहैं द्वेष कोउ कहत आवेस तो पै करो दशरथ कियो भाव पूरो पार्‌यो है॥**
**हुती एक बाई कृष्णरूप सों लगाई मति कथा में न आई सुत सुनी कह्यो धार्‌यो है।**
**बाँधे जसुमति सुनि औरै भई गति करि दई साँची रति तन तज्यो मन वार्‌यो है॥ १९२॥**

## भक्तिसे भगवान्‌को वशमें करनेवाले भक्त

**हौं कहा कहौं बनाइ बात सबही जग जानै।**
**करतैं दौना भयो स्याम सौरभ मन मानै॥**

**छपन भोग तैं पहिल खीच करमा कौ भावै।**
**सिलपिल्ले के कहत कुँअरि पै हरि चलि आवै॥**
**भक्तन हित सुत बिष दियो भूपनारि प्रभु राखि पति।**
**परसाद अवग्या जानि के पानि तज्यो एकै नृपति॥ ५०॥**

श्रीनाभाजी कहते हैं कि जगन्नाथपुरीके एक राजाने अपने दाहिने हाथसे प्रसादका अपमान हुआ जानकर उसे त्याग दिया अर्थात् कटवा डाला। इस बातको मैं अपनी ओरसे बनाकर क्या कहूँ? इसे तो सारा संसार जानता है कि उस भक्त राजाके कटे हुए हाथसे दौनाका वृक्ष उत्पन्न हुआ, जिसके पुष्प एवं पत्रोंकी सुगन्ध श्यामसुन्दरको अत्यन्त प्रिय लगती है। श्रीजगन्नाथजीको छप्पन राजभोगसे पहले श्रीकर्माबाईकी खिचड़ी अति ही स्वादिष्ट लगती है, अत: अबतक नित्य उसका भोग लगता है। 'हे सिलपिल्ले प्रभो!'—ऐसा कहते ही दोनों कन्याओंके पास भगवान् चले आये। दो राजरानियोंने भक्तोंके लिये अपने-अपने पुत्रोंको विष दिया। प्रभुने उन रानियोंकी लज्जा रखी, उनके पुत्रोंको जीवित किया॥ ५०॥

*इन भगवन्निष्ठ भक्तोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—*

### भगवत्प्रसादनिष्ठ राजा

श्रीजगन्नाथपुरीके राजाकी भगवत्प्रसादमें बड़ी ही निष्ठा थी, परंतु एक दिन राजा चौपड़ खेल रहा था, इसी बीच श्रीजगन्नाथजीके पण्डाजी प्रसाद लेकर आये। राजाके दाहिने हाथमें पासा था। अत: उसने बायें हाथसे प्रसादको छूकर उसे स्वीकार किया। इस प्रकार प्रसादका अपमान जानकर पण्डाजी रुष्ट हो गये। प्रसादको राजमहलमें न पहुँचाकर उसे वापस ले गये। चौपड़ खेलकर राजा उठे और अपने महलमें गये। वहाँ उन्होंने नयी बात सुनी कि मेरे अपराधके कारण अब मेरे पास प्रसाद कभी नहीं आयेगा। राजाने अपना अपराध स्वीकारकर अन्न-जल त्याग दिया। उसने मनमें विचारा कि जिस दाहिने हाथने प्रसादका अपमान किया है, उसे मैं अभी काट डालूँगा, यह मेरी सच्ची प्रतिज्ञा है। ब्राह्मणोंकी सम्मति लेना उचित समझकर राजाने उन्हें बुलाकर पूछा कि यदि कोई भगवान्‌के प्रसादका अपमान करे तो चाहे वह कोई अपना प्रिय अंग ही क्यों न हो, उसका त्याग करना उचित है या नहीं। ब्राह्मणोंने उत्तर दिया कि राजन्! अपराधीका तो सर्वथा त्याग ही उचित है।

राजाने अपने मनमें हाथ कटाना निश्चित कर लिया, परंतु मेरे हाथको अब कौन काटे? यह सोचकर मौन और अत्यन्त खिन्न हो गया। राजाको उदास देखकर मन्त्रीने उदासीका कारण पूछा। राजाने कहा—नित्य रातके समय एक प्रेत आता है और वह मुझे दिखायी भी देता है। कमरेकी खिड़कीमें हाथ डालकर वह बड़ा शोर करता है। उसीके भयसे मैं दुखी हूँ। मन्त्रीने कहा—आज मैं आपके पलँगके पास सोऊँगा और आप अपनेको दूसरी जगह छिपाकर रखिये, जब वह प्रेत झरोखेमें हाथ डालकर शोर मचायेगा, तभी मैं उसका हाथ काट दूँगा। सुनकर राजाने कहा—बहुत अच्छा! ऐसा ही करो। रात होनेपर मन्त्रीजीके पहरा देते समय राजाने अपने पलँगसे उठकर झरोखेमें हाथ डालकर शोर मचाया। मन्त्रीने उसे प्रेतका हाथ जानकर तलवारसे काट डाला।

राजाका हाथ कटा देखकर मन्त्रीजी अति लज्जित हुए और पछताते हुए कहने लगे कि मैं बड़ा मूर्ख हूँ, मैंने यह क्या कर डाला? राजाने कहा—तुम निर्दोष हो, मैं ही प्रेत था; क्योंकि मैंने प्रभुसे बिगाड़ किया था। राजाकी ऐसी प्रसादनिष्ठा देखकर अपने पण्डोंसे श्रीजगन्नाथजीने कहा कि अभी-अभी मेरा प्रसाद ले जाकर राजाको दो और उसके कटे हुए हाथको मेरे बागमें लगा दो। भगवान्‌के आज्ञानुसार पण्डे लोग प्रसादको लेकर दौड़े, उन्हें आते देखकर राजा आगे आकर मिले। दोनों हाथोंको फैलाकर प्रसाद लेते समय राजाका कटा हुआ हाथ पूरा निकल आया। जैसा था, वैसा ही हो गया। राजाने प्रसादको मस्तक और हृदयसे लगाया। भगवत्कृपाका अनुभव

मूर्तिके लिये निवेदन किया कि मुझे भी सेवा करनेके लिये दे दीजिये।

पहले तो गुरुजीने मना किया, पर बालहठ देखकर एक पत्थरका टुकड़ा दे दिया। बालिकाने पूछा कि गुरुदेव! मैं अपने भगवान्‌को क्या कहकर पुकारूँगी तो उन्होंने हँसते हुए कहा—तुम इन्हें सिलपिल्ले भगवान् कहना। श्रीगुरुजी महाराजने सामान्य ढंगसे पूजाविधि भी बतला दी। अब वह जमींदार-कन्या नित्य बड़े ही प्रेम और भक्तिभावसे अपने सिलपिल्लेभगवान्‌की सेवा-पूजा करने लगी। धीरे-धीरे उसे इस कार्यमें इतनी रुचि हो गयी कि सिलपिल्लेभगवान्‌की पूजा करनेके अतिरिक्त उसका किसी अन्य कार्यमें मन ही न लगता। भगवान्‌को भी उसकी सेवा-पूजामें बहुत आनन्द आता; क्योंकि उन्हें तो केवल हृदयका शुद्ध भाव ही चाहिये। वे उस पत्थरके टुकड़ेकी की गयी पूजाको ही अपनी पूजा स्वीकार कर लेते थे।

कालान्तरमें जब जमींदारकी मृत्यु हो गयी तो उसके दोनों पुत्र अलग-अलग रहने लगे। जमींदारकी पुत्री भी अपने एक भाईके साथ रहने लगी। उन दोनों भाइयोंमें वैर-द्वेष इतना बढ़ा कि एक दिन छोटेवाले भाईने बड़े भाईके घरपर कुछ लोगोंको लेकर आक्रमण कर दिया और उसका सारा धन लूट लिया और तो और वे लोग अपनी बहनका ठाकुर बटुवा भी उठा ले गये, जिसमें वह सिलपिल्लेभगवान्‌को रखती थी। अब तो उसने सिलपिल्लेभगवान्‌के विरहमें अन्न-जलका त्याग कर दिया। यह बात जब गाँववालोंको पता चली तो उन लोगोंने जमींदारपुत्रीको समझाया कि झगड़ा भाइयोंका है, तुम्हारे लिये तो दोनों लोग एक-जैसे ही हैं। तुम जाकर अपने भाईसे अपना ठाकुर बटुवा माँग लो। बड़े-बुजुर्गोंके इस तरह समझानेपर वह उस गाँवमें गयी, जहाँ दूसरा भाई रहता था। उसने भाईसे अपने ठाकुर बटुवाकी माँग की और कहा कि मैं अपने सिलपिल्लेभगवान्‌की सेवा-पूजाके बिना अन्न-जल नहीं ग्रहण करूँगी और अपने प्राण त्याग दूँगी। यह सुनते ही भाईने कहा—तुम घरमें जाओ, वहाँ सभी ठाकुरजी एक ही स्थानपर विराजमान हैं, तुम अपने सिलपिल्लेभगवान्‌को पहचानकर ले जाओ। भाईके पास ही एक व्यक्ति और बैठा हुआ था, उसने व्यंग्य करते हुए कहा कि यदि तुम्हारा अपने सिलपिल्लेभगवान्‌से इतना ही प्रेम है तो अन्दर जानेकी क्या जरूरत है, उन्हें ही अपने पास बुला लो। अब तो उस जमींदारकन्याके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये; उसके प्रेम और भक्तिपर यह व्यंग्य था। उस समय उसके हृदयमें वे ही भाव उत्पन्न हुए, जो ग्राहग्रसित गजेन्द्र या दुःशासनद्वारा अपमानित हो रही द्रौपदीके हृदयमें उत्पन्न हुए थे। उसने प्रार्थना* की कि प्रभु मेरे प्रेमकी लाज जा रही है, उसकी रक्षा करो। घट-घटवासी भगवान् उस अनन्य भक्तासे भला कैसे दूर रह सकते थे, उसकी पुकार हुई नहीं कि वे आकर उसके हृदयसे लग गये।

यह अघटित घटना देखकर उस व्यक्तिके साथ-साथ भाई भी आश्चर्यचकित हो गया, उसने क्षमा माँगते हुए बहनके चरणोंमें प्रणिपात किया कि हमारे धन्य भाग्य हैं कि तुझ-जैसी भक्ता हमारी बहन है। मुझसे भूल हो गयी बहन, इतने दिन तू बड़े भाईके यहाँ रही, अब मेरे यहाँ रह। जमींदारकन्याने कहा—भाई! मैं दोनोंकी बहन हूँ, तो एकके यहाँ क्यों रहूँ? तू भी बड़े भाईके ही साथ रह। अब छोटे भाईमें साहस नहीं था कि वह बहनकी बातका प्रतिकार करता। उसने बड़े भाईसे भी क्षमा माँग ली और सब लोग साथ-साथ रहने लगे। इस प्रकार भगवान्‌ने अपनी भक्तिका अद्भुत प्रभाव दिखाया।

***श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाको अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—***

**पाछिले कवित्त मांझ दुहुँन की एक रीति अब सुनौ न्यारी न्यारी नीके मन दीजियै।**
**जिमींदार सुता ताके भए उभै भाई रहै आपुस में बैर गांव मार्‌यो सब छीजियै॥**

* सिलपिल्ले हमें तुम देत बड़ो सुख लाड़ लड़ाइ के पूजत प्यारे। कौन-सी चूक भई हमसौं प्रभु जो तुम ह्वै रहे आजु नियारे॥ दुष्टन को विश्वास बढ़े सोइ कीजिय नाथ जू मैं यों विचारे। 'कुँवरि हठीली' विनय सुनिकै करुना करिके प्रभु आनि पधारे॥

**तामैं गई सेवा इन बड़ोई कलेश कियौ जियौ नाहिं जात खान पान कैसैं कीजियै।**
**रहे समुझाय याहि कछु न सुहाय तब कही जाय ल्यावौ तेरे दोऊ सम धीजियै॥ १९९॥**
**गई वाही गाँव जहाँ दूसरो जू भाई रहै बैठ्यौ हो अथाई मांझ कही वही बात है।**
**लेवो जू पिछानि तहाँ बैठे एकठौर प्रभु बोलि उठ्यौ कोऊ बोलि लीजै प्रीति गात है॥**
**भई आँखि राती लागी फाटिबेकौं छाती सो पुकारी सुर आरत सौं मानो तन पात है।**
**हिये आई लागे सब दुख दूर भागे कोऊ बड़े भाग जागे घर आई न समात है॥ २००॥**

## राजाकी कन्याकी कथा

बहुत पहलेकी बात है, एक महात्मा एक दिन एक राजाके यहाँ पधारे। दैवयोगसे उन्हें वहाँ कई दिन रहना पड़ गया। महात्माजीके पास कुछ शालग्रामजीकी मूर्तियाँ थीं। राजाकी एक अबोध बालिका प्रतिदिन महात्माजीके समीप बैठकर उनकी पूजा देखा करती थी। एक दिन कन्याने महात्माजीसे पूछा—'बाबाजी! आप किसकी पूजा करते हैं?' महात्माजीने कन्याको अबोध समझकर हँसी-हँसीमें उससे कह दिया—'हम सिलपिल्लेभगवान्‌की पूजा करते हैं।' कन्याने पूछा कि 'बाबाजी! सिलपिल्लेभगवान्‌की पूजा करनेसे क्या लाभ है?' महात्माजीने कहा, 'सिलपिल्लेभगवान्‌की पूजा करनेसे मनचाहा फल प्राप्त हो सकता है।' कन्याने कहा—'तो बाबाजी! मुझे भी एक सिलपिल्लेभगवान् दे दीजियेगा, मैं भी आपकी भाँति उनकी पूजा किया करूँगी।' महात्माजीने उसका सच्चा अनुराग देखकर उसे एक शालग्रामजीकी मूर्ति दे दी और पूजनका विधान भी बतला दिया। महात्माजी तो विदा हो गये। कन्या परमविश्वास तथा सच्ची लगनके साथ अपने 'सिलपिल्लेभगवान्' की पूजा करने लगी। वह अबोध बालिका अपने उन इष्टदेवके अनुराग-रंगमें ऐसी रँग गयी कि उनका क्षणभरका भी वियोग उसे असह्य होने लगा। वह कुछ भी खाती-पीती, अपने उन इष्टदेवका भोग लगाये बिना नहीं खाती-पीती। वयस्क हो जानेपर जब कन्याका विवाह हुआ, तब दुर्भाग्यसे उस बेचारीको ऐसे पतिदेव मिले, जो प्रकृत्या हरिविमुख थे। कन्या अपने 'सिलपिल्लेभगवान्' को ससुराल जाते समय साथ ही ले गयी थी। एक दिन उसके पतिदेवने पूजा करते समय उससे पूछा कि 'तू किसकी पूजा करती है?' उसने कहा, 'मैं सारी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेवाले अपने 'सिलपिल्लेभगवान्' की पूजा करती हूँ।' पतिदेवने कहा—'ढकोसले कर रही है?' यह कहकर उस मूर्तिको उठा लिया और बोले कि 'इसे नदीमें डाल दूँगा।' कन्याने बहुत अनुनय-विनयके साथ कहा—'स्वामिन्! ऐसा न कीजियेगा।' किंतु स्वामी तो स्वभावत: दुष्ट ठहरे; भला, वे कब मानने लगे। वह बेचारी साथ-ही-साथ रोती चली गयी, किंतु उन प्रकृत्या हरिविमुख पतिदेवने सचमुच उस मूर्तिको नदीमें फेंक दिया। कन्या उसी समयसे अपने सिलपिल्लेभगवान्‌के विरहमें दीवानी हो गयी। उसे अपने इष्टदेवके बिना सारा संसार शून्य जँचने लगा। उसका खाना-पीना-सोना सब भूल गया। लज्जा छोड़कर वह निरन्तर रटने लगी—'मेरे सिलपिल्ले भगवन्! मुझ दासीको छोड़कर कहाँ चले गये, शीघ्र दर्शन दो; नहीं तो दासीके प्राण जा रहे हैं। आपका वियोग असह्य है।'

एक दिन वह अपने उक्त भगवान्‌के विरहमें उसी नदीमें डूबनेपर तुल गयी। लोगोंने उसे बहुत कुछ समझाया, किंतु उसने एक न सुनी। वह पागल-सी बनी नदीके किनारे पहुँच गयी। उसने बड़े ऊँचे स्वरसे पुकारा—'मेरे प्राणप्यारे सिलपिल्ले भगवन्! शीघ्र बाहर आकर दर्शन दो, नहीं तो दासीका प्राणान्त होने जा रहा है।' इस करुण पुकारके साथ ही एक अद्भुत शब्द हुआ कि 'मैं आ रहा हूँ।' फिर उस कन्याके समक्ष वही शालग्रामजीकी मूर्ति उपस्थित हो गयी। जब वह मूर्तिको उठाकर हृदयसे लगाने लगी, तब उसी मूर्तिके अन्दरसे चतुर्भुजरूपमें भगवान् प्रकट हो गये, जिनके दिव्य तेजसे अन्य दर्शकोंकी आँखें झप गयीं। इतनेमें एक प्रकाशमान गरुडध्वज विमान आया, भगवान् अपनी उस सच्ची भक्ताको उसीमें बिठलाकर वैकुण्ठ

धामको लिये चले गये। उसके वे हरिविमुख पतिदेव आँखें फाड़ते हुए रह गये। उस राजकन्याके सास और ससुर आदिने भी यह चमत्कार देखातो बड़े प्रभावित हुए। स राजकन्याने अपनी भक्तिसे सबको भक्त बना दिया। वे सभी भक्त भगवान्‌की सेवामें लग गये। वे सभी कहने लगे कि हम सबोंके भाग्य जग गये, जो ऐसी बहू घर आयी।

*श्रीप्रियादासजी महाराज राजकन्याकी इस प्रीतिका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—*

**सुनौ नृप सुता बात भक्ति गात गात पगी भगी सब बिषै वृत्ति सेवा अनुरागी है।**
**व्याही ही विमुख घर आयो लैंन वहै बर खरी अरबरी कोऊ चित चिन्ता लागी है॥**
**करि दई संग भरी अपने ही रंग चली अली हूँ न कोई एक वही जासौं रागी है।**
**आयो ढिग पति बोलि कियो चाहै रति वाकी औरै भई गति मति आवौ विथा पागी है॥ २०१॥**
**कौन वह विथा ताकौं कीजिये जतन वेगि बड़ो उदवेग नेकु बोलि सुख दीजिये।**
**बोलिबों जौ चाहौ तौपै चाहौ हरिभक्ति हिये बिन हरिभक्ति मेरो अंग नहीं छीजिये॥**
**आयो रोष भारी अब मन मैं विचारी वा पिटारीमें जु कछु सोई लैकै न्यारो कीजिये।**
**करी वही बात मूसि जल मांझ डारि दई नई भई ज्वाला जियो जात नहीं खीजिये॥ २०२॥**
**तज्यो जल अन्न अब चाहत प्रसन्न कियो होत क्यों प्रसन्न जाको सरबस लियौ है।**
**पहुँचे भवन आय दई सो जताइ बात गात अति छीन देखि कहा हठ कियौ है॥**
**सासु समुझावे कछु हाथ सों खवावै याकौं बोलि हू न भावै तब धरकत हियौ है।**
**कहैं सोई करैं अब पांय तेरे परैं हम बोली जब वेई आवैं तौ ही जात जियौ है॥ २०३॥**
**आये वाही ठौर भौंर आई तनु भूमि गिर्‍यो ढर्‍यो जल नैन सुर आरत पुकारी है।**
**भक्तिबस श्याम जैसे कामबस कामी नर धाइ लागे छातीसों जु संग सो पिटारी है॥**
**देखि पति सासु आदि जगत विवाद मिट्यो बाद ही जनम गयो नेकु न सँभारी है।**
**किये सब भक्त हरि साधु सेवा मांझ पगे जगे कोऊ भाग घर बधू यों पधारी है॥ २०४॥**

## अपने पुत्रको विष देनेवाली दो भक्तिमती नारियाँ

### (१)

एक राजा बड़ा भक्त था। उसके यहाँ बहुत-से साधु-सन्त आते रहते थे। राजा उनकी प्रेमसे सेवा करता था। एक बार एक महान् सन्त अपने साथियोंसमेत पधारे। राजाका सत्संगके कारण उनसे बड़ा प्रेम हो गया। वे सन्त राजाके यहाँसे नित्य ही चलनेके लिये तैयार होते, परंतु राजा एक-न-एक बात (उत्सव आदि) कहकर प्रार्थना करके उन्हें रोकता और कहता कि प्रभो! आज रुक जाइये, कल चले जाइयेगा। इस प्रकार उनको एक वर्ष और कुछ मास बीत गये। एक दिन उन सन्तोंने निश्चय कर लिया कि कल हम अवश्य ही चले जायँगे। राजाके रोकनेपर किसी भी प्रकारसे नहीं रुकेंगे। यह जानकर राजाकी आशा टूट गयी, वह इस प्रकार व्याकुल हुआ कि उसका शरीर छूटने लगा। रानीने राजासे पूछकर सब जान लिया कि राजा सन्तवियोगसे जीवित न रहेगा। तब उसने सन्तोंको रोकनेके लिये पुत्रको विष दे दिया; क्योंकि सन्त तो स्वतन्त्र हैं, इन्हें कैसे रोककर रखा जाय, इसका और कोई उपाय नहीं है। प्रातःकाल होनेसे पहले ही रानी रो उठी, अन्य दासियाँ भी रोने लगीं, राजपुत्रके मरनेकी बात फैल गयी। राजमहलमें कोलाहल मच गया। सन्तने सुना तो शीघ्र ही राजभवनमें प्रवेश किया और जाकर बालकको देखा। उसका शरीर विषके प्रभावसे नीला पड़ गया था, जो इस बातका साक्षी था कि बालकको विष दिया गया है। महात्माजीने रानीसे पूछा कि सत्य कहो, तुमने यह क्या किया? रानीने कहा—आप निश्चय ही चले जाना चाहते थे और हमारे नेत्रोंको आपके दर्शनोंकी

अभिलाषा है। आपको रोकनेके लिये ही यह उपाय किया गया है।

राजा और रानीकी ऐसी अद्भुत भक्तिको देखकर वे महात्मा जोरसे रोने लगे। उनका कण्ठ गद्‌गद हो गया, उन्हें भक्तिकी इस विलक्षण रीतिसे भारी सुख हुआ। इसके बाद महात्माजीने भगवान्‌के गुणोंका वर्णन किया और उस बालकको जीवित कर दिया। उन्हें वह स्थान अत्यन्त प्रिय लगा। अपने साथियोंको जो जाना चाहते थे, उन्हें विदा कर दिया और जो प्रेमरसमें मग्न सन्त थे, वे उनके साथ ही रह गये। इस घटनाके बाद महात्माजीने कहा कि अब यदि हमें आप मारकर भगायेंगे तो भी हम यहाँसे न जायँगे।

***श्रीप्रियादासजी भक्तिमयी रानीकी इस अलौकिक संत-निष्ठाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—***

**भक्तन के हित सुत विष दियौ उभै बाई कथा सरसाई बात खोलिकै बताइयै।**
**भयो एक भूप ताके भक्तहूँ अनेक आवैं आयो भक्त भूप तासौं लगन लगाइयै॥**
**नितहीं चलत ए पै चलन न देत राजा बितयो बरष मास कहैं भोर जाइयै।**
**गई आस टूटि तन छूटिबे की रीति भई लई बात पूछि रानी सबै लै जनाइयै॥ २०५॥**
**दियो सुत विष रानी जानी नृप जीवै नाहिं सन्त हैं स्वतन्त्र सो इन्हैंहि कैसे राखियै।**
**भये बिन भोर बधू शोर करि रोय उठी भोय गई रावले में सुनि साधु भाखियै॥**
**खोलि डारि कटिपट भवन प्रवेश कियो लियो देखि बालक कौं नील तनु साखियै।**
**पूछ्यो भूप तियासौं जू साँचे कहि कियो कहा ? कही तुम चल्यौ चाहौ नैन अभिलाखियै॥ २०६॥**
**छाती खोलि रोए किहूँ बोलिहूँ न आवै मुख सुख भयो भारी भक्ति रीति कछु न्यारियै।**
**जानीऊँ न जाति, जाति पाँति को विचारि कहा अहो रससागर सो सदा उर धारियै॥**
**हरि गुण गाय साखी सन्तनि बताय दियौ बालक जिवाय लागी ठौर वह प्यारियै।**
**संग के पठाय दिये रहे वे जे भींजे हिये बोले आप जाऊँ जौ न मारि कै विडारियै॥ २०७॥**

(२)

महाराष्ट्रके राजा महीपतिरावजी परम भक्त थे। उनकी कन्या कहाड़के राजा रामरायके साथ ब्याही थी, लेकिन घरके सभी लोग महा अभक्त थे। भक्तिमय वातावरणमें पलनेवाली उस राजपुत्रीका मन घबड़ाने लगा। अन्तमें जब उसे कोई उपाय नहीं सूझा तो उसने अपनी एक दासीसे कह दिया कि इस नगरमें जब कभी भगवान्‌के प्यारे भक्त आयें तो मुझे बताना।

एक दिन दैवयोगसे उस नगरमें साधुओंकी ( श्रीज्ञानदेवजीकी ) जमात आयी। उनके आनेका समाचार दासीने उस राजपुत्रीको दिया। अब उस भक्तासे सन्त-अदर्शन कैसे सहन होता। उसने अपने पुत्रको विष दे दिया। वह मर गया, अब वह राजकन्या तथा दूसरे घरके लोग रोने तथा विलाप करने लगे। तब उस भक्ताने व्याकुल होकर उन लोगोंसे कहा कि अब इसके जीवित होनेका एक उपाय है, यदि वह किया जाय तो पुत्र अवश्य जीवित हो सकता है। रोते-रोते सबोंने कहा—जो भी उपाय बताओगी, उसे हम करेंगे। तब उस बाईने कहा कि सन्तोंको बुला लाइये। उन लोगोंने पूछा कि सन्त कैसे होते हैं ? इसपर भक्ताने कहा कि यह दासी मेरे पिताके घरमें सन्तोंको देख चुकी है, कैसे होते हैं, कहाँ मिलेंगे आदि सब बातोंको यह बतायेगी। पूछनेपर दासीने कहा कि आज इस नगरमें कुछ सन्त पधारे हैं और अमुक स्थानपर ठहरे हैं।

वह दासी राजाको साथ लेकर चली और सन्तोंसे बोलना सिखा दिया और कहा कि उनको देखते ही पृथ्वीपर गिरकर साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम करते हुए उनके चरणोंको पकड़ लीजियेगा। राजाने दासीके कथनानुसार ही कार्य किया। शोकवश राजाकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी, परंतु उस समय ऐसा लगा कि मानो ये

सन्तप्रेमवश रो रहे हैं। सहज विश्वासी उन सन्तोंने भी विश्वास किया कि ये लोग प्रेमसे रुदन कर रहे हैं। राजाने प्रार्थना की कि प्रभो! मेरे घर पधारकर उसे पवित्र कीजिये। राजाकी विनती स्वीकारकर सन्तजन प्रसन्नतापूर्वक उसके साथ चले। दासीने आगे ही आकर भक्तारानीको साधुओंके शुभागमनकी सूचना दे दी। वह रानी पौरीमें आकर खड़ी हो गयी। सन्तोंको देखते ही वह उनके चरणोंमें गिर पड़ी और प्रेमवश गद्‌गद हो गयी। आँखोंमें आँसू भरकर धीरेसे बोली—आप लोग मेरे पिता-माताको जानते ही होंगे; क्योंकि वे बड़े सन्तसेवी हैं। आपलोगोंका दर्शन पाकर आज ऐसा मनमें आता है कि अपने प्राणोंको आपके श्रीचरणोंमें न्यौछावर कर दूँ।

उस भक्तारानीकी अति विशेष प्रीति देखकर सन्तजन अति प्रसन्न हो गये और बोले कि तुमने जो प्रतिज्ञा की है, वह पूरी होगी। राजमहलमें जाकर सन्तोंने मरे हुए बालकको देखकर जान लिया कि इसे निश्चय ही विष दिया गया है। उन्होंने भगवान्‌का चरणामृत उसके मुखमें डाला। वह तुरंत जीवित हो गया। इस विलक्षण चमत्कारको देखते ही राजा एवं उसके परिवारके सभी लोग जो भक्तिसे विमुख थे, सभीने सन्तोंके चरण पकड़ लिये और प्रार्थना की कि हमलोग आपकी शरणमें हैं। तब सन्तोंने उन सभीको दीक्षा देकर शिष्य बनाया। उन लोगोंने वैष्णव बनकर सन्तोंकी ऐसे प्रेमसे सेवा करना आरम्भ कर दिया, जिसे देखकर लोग प्रेमविभोर हो जाते थे।

*श्रीप्रियादासजी रानीकी संतनिष्ठाकी इस घटनाका अपने कवित्तोंमें वर्णन करते हुए कहते हैं—*

**सुनौ चित लाई बात दूसरी सुहाई हिये जिये जग माहिं जौ लौं सन्त संग कीजियै।**
**भक्त नृप एक सुता ब्याही सो अभक्त महा जाके घर माँझ जन नाम नहीं लीजियै॥**
**पल्यौ साधु सीथ सौं शरीर दृग रूप पले जीभ चरणामृतके स्वाद ही सों भीजियै।**
**रह्यों कैसे जाय अकुलाय न बसाय कछु आवैं पुर प्यारे तब विष सुत दीजियै॥ २०८॥**
**आये पुर सन्त आइ दासी ने जनाइ कही सही कैसे जाइ सुत विष लैकै दियो है।**
**गये वाके प्रान रोय उठी किलकानि सब भूमि गिरे आनि टूक भयो जात हियो है॥**
**बोली अकुलाय एक जीबे कौ उपाय जोपै कियो जाय पिता मेरे कैयो बार कियो है।**
**कहै सोई करैं दृग भरैं ल्यावो सन्तनिकौ, कैसे होत सन्त? पूछ्यो चेरी नाम लियो है॥ २०९॥**
**चली लै लिवाइ चेरी बोलिबौ सिखाय दियो देखिकै धरनि परि पाँय गहि लीजियै।**
**कीनी वही रीति दृगधारा मानौ प्रीति सन्त करी यौं प्रतीति गृह पावन कौ कीजियै॥**
**चले सुख पाय दासी आगे ही जनाई जाय आय ठाढ़ी पौरि पाँय गहे मति भीजियै।**
**कही हरे बात मेरे जानौ पिता मात मैं तो अंग में न माति आज प्राण वारि दीजियै॥ २१०॥**
**रीझि गये सन्त प्रीति देखिकैं अनन्त कह्यो होयगी जु वही सो प्रतिज्ञा तैं जो करी है।**
**बालक निहारि जानी विष निरधार दियो दियो चरनामृत कौं प्रान संज्ञा धरी है॥**
**देखत विमुख जाय पाँय ततकाल लिये किये तब शिष्य साधु सेवा मति हरी है।**
**ऐसे भूप नारि पति राखी सब साखी जन रहै अभिलाखी जोपै देखौ याही घरी है॥ २११॥**

## सन्तवेशका आदर करनेवाले भक्त

**रंगनाथ को सदन करन बहु बुद्धि बिचारी।**
**कपट धर्म रचि जैन द्रब्य हित देह बिसारी॥**
**हंस पकरने काज बधिक बानौं धरि आए।**
**तिलक दाम की सकुच जानि तिन आप बँधाए॥**

## सुत बध हरिजन देखि कै दै कन्या आदर दियो। आसय अगाध दुहुँ भक्त को हरितोषन अतिसय कियो॥ ५१॥

मामा और भानजे—इन दोनों भक्तोंके अभिप्राय अत्यन्त ही गम्भीर थे। इन्होंने अपनी लोक-वेदसे विलक्षण भक्तिके द्वारा भगवान्‌को अत्यन्त प्रसन्न किया। इन्होंने श्रीरंगनाथजीका मन्दिर बनवानेके लिये धन प्राप्त करनेके अनेक उपाय सोचे; परंतु धन प्राप्ति न हुई, तब छल करके जैनी बन गये। धनहेतु अपने शरीरका भी त्याग किया।

मानसरोवरनिवासी हंस भक्तोंको पकड़नेके लिये बहेलिये लोग वैष्णव सन्तोंका वेष बनाकर आये। वे हंस-भक्त तिलक और कण्ठीका आदर करके संकोचवश जानबूझकर स्वयं बँध गये।

वेषधारी भगवद्भक्तद्वारा अपने लड़केकी हत्या हुई जानकर भी सदाव्रती भक्तने उस वैष्णव भक्तको अपनी कन्या ब्याहकर उसका अधिक आदर किया॥ ५१॥

***श्रीप्रियादासजीने इन मामा-भानजेके इस दिव्य भावका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—***

**आशय अगाध दोऊ भक्त मामा भानजे कौं दियौ प्रभु तोष ताकी बात चित धारियै।**
**घर ते निकसि चले बन कौं विवेक रूप मूरति अनूप बिन मन्दिर निहारियै॥**
**दक्षिण में रंगनाथ नाम अभिराम जाकौ ताकौ लै बनावै धाम काम सब टारियै।**
**धन के जतन फिरे भूमि पै न पायौ कहूँ, चहुँ दिशि हेरि देख्यो भयौ सुख भारियै॥ २१२॥**
**मन्दिर सरावगी कौ प्रतिमा सो पारस की आरस न कियो वेद न्यूनहूँ बतायो है।**
**पावैं प्रभु सुख हम नर्क हूँ गये तौ कहा? धरक न आई तब कान लै फुकायो है॥**
**ऐसी करी सेवा जासौ हरी मति केवरा ज्यों सेवरा समाज सबै नीके कै रिझायो है।**
**दियो सौंपि भार तब लैबे को विचार करैं हरैं कौन राह? भेद राजनि पैं पायो है॥ २१३॥**
**मामा रह्यो भीतर औ ऊपर सो भानजो ही कलस भँवरकली हाथ सौं फिरायो है।**
**जेवरी लै फाँसि दियो मूरति सो खैंचि लई और बार वह आप नीकैं चढ़ि आयो है॥**
**कियो हो जो द्वार तामें फूलि तन फँसि बैठ्यो अति सुख पाय तब बोलिकै सुनायो है।**
**काटि लेवो सीस ईस भेष की न निन्दा करैं भरैं अँकवारि मन कीजियो सवायो है॥ २१४॥**
**काटि लियो सीस ईस इच्छाकौ विचार कियो जियौ नहीं जाय तऊ चाह मति पागी है।**
**जो पै तन त्याग करौं कैसे आस सिन्धु तरौं ढरौं वाही ओर आयो नींव खुदै लागी है॥**
**भयो शोक भारी हमैं ह्वै गई अबारी काहू और नैं विचारी देखैं वही बड़भागी है।**
**भरि अँकवार मिले मन्दिर सँवारि झिले खिले सुख पाइ नैन जानै जोई रागी है॥ २१५॥**

### सन्तवेशनिष्ठ हंसोंकी कथा

एक राजा था, उसे कुष्ठ हो गया था। वैद्योंने कहा कि हंसोंको मारकर बनायी हुई औषधिसे ही आपके देहका कुष्ठ अच्छा हो सकता है। राजाके आज्ञानुसार चार बधिक हंसोंको लाने मानसरोवरपर गये, परंतु हंस इन्हें देखकर ही उड़ जाते थे। बधिकोंने देखा कि कोई साधु-सन्त जब उनकी ओर जाते हैं, तब वे नहीं डरते हैं। इस रहस्यको जानकर चारों बधिक वैष्णववेश बनाकर फिर मानसरोवरपर गये। हंसोंने इन्हें वैष्णववेशमें देखकर भी यह जान लिया कि ये बधिक ही हैं। वेष बनावटी है, फिर भी वेशनिष्ठासे अपनेको बँधा लिया। बधिक हंसोंको लेकर राजाके पास आये। हंसोंकी सन्तवेशनिष्ठा देखकर भगवान्‌ने वैद्यका स्वरूप धारण किया और उसी राजाके नगरमें जाकर यह घोषणा की कि मैं कुष्ठ आदि सभी असाध्य रोगोंकी सफल चिकित्सा करता हूँ। लोग इन्हें राजाके समीप ले आये। भगवान्‌ने कहा—आप इन पक्षियोंको छोड़ दें, मैं आपके शरीरको अभी-अभी

बिलकुल नीरोग किये देता हूँ। राजाने कहा—ये तो बड़ी कठिनतासे हमें मिले हैं, कुष्ठरोग ठीक हुए बिना हम इन्हें कैसे छोड़ दें? यह सुनकर वैद्यजीने अपनी झोलीसे औषधि निकाली और पिसवाकर राजाके शरीरपर मलवायी। राजाका कुष्ठ दूर हो गया। राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने हंसोंको छोड़ दिया।

इस चरित्रको देखकर बधिकोंने अपने मनमें विचारा कि जिस वैष्णववेशका पक्षियोंने ऐसा विश्वास किया और उसीके फलस्वरूप उनके प्राण भी बच गये, ऐसे वेशको हम मनुष्य होकर अब कैसे छोड़ दें! इस प्रकार वे बधिक सच्चे सन्त बन गये, उन्होंने वेशका त्याग नहीं किया, उनकी मति भगवान्की भक्तिमें मग्न हो गयी।

*श्रीप्रियादासजी महाराज हंसोंकी इस संतवेशनिष्ठाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—*

**कोढ़ी भयो राजा कियो जतन अनेक ऐपै एकहूँ न लागै कह्यो हंसनि मँगाइयै।**
**बधिक बुलाय कही वेग ही उपाय करौ जहाँ तहाँ ढूँढ़ि अहो इहाँ लगि ल्याइयै॥**
**कैसे करि ल्यावैं वै तो रहैं मानसर माँझ ल्यावोगे छुटोगे तब जनै चारि जाइयै।**
**देखत ही उड़ि जात जातिको पिछानि लेत साधु सौं न डरैं जानि भेष लै बनाइयै॥ २१६॥**
**गये जहाँ हंस सन्त बानो सो प्रशंस देखि जानिकै बँधाये राजा पास लैकै आये हैं।**
**मानि मतिसार प्रभु वैद को स्वरूप धारि पूछिकैं बाजार लोग भूप ढिग ल्याये हैं॥**
**काहेको मँगाये पच्छी? अच्छी हम करैं देह छोड़ि दीजै इन्हें कही नीठि करि पाये हैं।**
**औषधी पिसाये अंग अंगनि मलाये किये नीके सुख पाये कहि उनको छुटाये हैं॥ २१७॥**
**लेवो भूमि गाउँ बलि जाउँ या दयालता की भाल भाग ताकै जाकौं दरसन दीजियै।**
**पायो हम सब अब करौ हरि साधु सेवा मानुष जनम ताकी सफलता कीजियै॥**
**करी लै निदेस देस भक्ति विसतार भयो हंस हित सार जानि हिये धारि लीजियै।**
**बधिकनि जानी जासों खगनि प्रतीति कीनी ऐसो भेष छोड़िये न राख्यौ मति भीजिये॥ २१८॥**

## सदाव्रती महाजनकी कथा

सदाव्रती महाजन अपने सर्वस्वके द्वारा सन्त-सेवा करते थे, इनकी सेवाके प्रभावसे अनेक साधु-सन्त इनके घरपर आते रहते थे। एक बार एक सन्त आये, इनके यहाँ अत्यन्त सुख पाकर सदा इनके घरपर ही रहने लगे। सदाव्रतीजीके पुत्रसे उनका प्रेम हो गया। नित्य उसीके साथ खेला करते। एक दिन उस सन्तकी मति भ्रष्ट हो गयी। खेलते-खेलते दोनों गाँवके बाहर गये, वहाँ सन्तने महाजन भक्तके पुत्रको आभूषणोंके लोभमें आकर मार डाला और उसके शवको गाड़कर घरको आ गया।

घरमें पिता-माता बाट देख रहे थे कि बालक कहाँ जाकर फँस गया! जब बाट देखते-देखते चार पहर बीत गये, फिर भी लड़का घर न आया, तब भक्त सदाव्रतीने गाँवमें ढिंढोरा पिटवाया कि मेरे लड़केको किसने रोक रखा है, इस बातको जो कोई शीघ्र बता देगा, उसे उस लड़केके सभी आभूषण दे दिये जायँगे। यह घोषणा सुनकर घटना देखनेवाले एक संन्यासीने आकर कहा कि तुम्हारे पुत्रको इसी सन्तने मारकर धरतीमें गाड़ दिया है। यह कहकर भक्त महाजनको वह स्थान दिखा दिया, जहाँ लड़का गड़ा था। भक्त सदाव्रतीने कहा—इस संन्यासीको पकड़ लो, इसीने हमारे लड़केको मारा है।

तब घबड़ाकर संन्यासीने कहा—मैंने देखा था, इसलिये बता दिया। मुझे छुड़ा दीजिये, मैं बिलकुल झूठ नहीं बोल रहा हूँ। तब महाजन भक्तने कहा—यदि तुम इस संकटसे बचना चाहते हो तो साधुका नाम कदापि मत लो और इस गाँवको छोड़कर कहीं दूसरी जगहपर चले जाओ। संन्यासीने यह बात मान ली। वह वहाँसे चला गया। लड़केका अन्तिम संस्कार करके सदाव्रतीजी घर आये। उन्होंने देखा कि सन्तजी

कुछ उदास हो रहे हैं। सन्त हर समय इसी सोचमें रहते कि मैंने कैसा घृणित पाप कर डाला। मैंने अपने आश्रय दाताके साथ ही विश्वासघात किया और उन्हें असीम दुःखमें निमग्न कर दिया। मेरे जीवनको धिक्कार है! मैं तो महापातकी हूँ, मेरा प्रायश्चित्त हो ही क्या सकता है? अतिशय आत्मग्लानि एवं पश्चात्तापके कारण सन्त अत्यन्त संकोच करने लगे। उनके इस परिवर्तन एवं संकोचसे महाजन अपने दुःखको भुलाकर सन्तके संकोचको दूर करनेका उपाय सोच ही रहे थे कि उनके मनका भाव जानकर उनकी स्त्री बोल उठी कि इन्हें अपनी कन्या देकर आदरसहित घरमें रखिये।

सदाव्रतीजीने अपनी स्त्रीके कथनानुसार सन्तजीको बुलाकर उनसे प्रार्थना की कि आप कृपया मेरे हृदयका दुःख मिट जाय, केवल इसलिये मेरी पुत्रीसे ब्याह कीजिये और जबतक मेरा जीवन है, आप मेरे साथ रहकर प्रेमका निर्वाह कीजिये। ऐसा कहकर सन्तके साथ बेटीका विवाह कर दिया।

भक्त सदाव्रतीजीके पुत्रकी मृत्युकी बात सुनकर अथवा भगवदादेशसे एक दिन उनके श्रीगुरुदेवजी घरपर पधारे। इन्होंने ही महाजन भक्तको सन्त-सेवाकी महिमा बतायी थी और सेवा करनेकी आज्ञा दी थी। श्रीगुरुदेवने सदाव्रतीसे कुशल पूछते हुए कहा कि बालक कहाँ है? इन्होंने उत्तर दिया—अजी! वह तो भगवान्को प्राप्त हो गया। यह सुनकर गुरुदेवने कहा—प्रभुने तुम्हारी परीक्षा ली है, तुम्हारा पुत्र मरा नहीं, इसीसे प्रभुने मुझे तुम्हारे पास आनेकी आज्ञा दी है। जहाँ उसके शरीरका दाह-संस्कार हुआ है, चलकर वह स्थान हमें दिखाओ। सन्तशिरोमणि गुरुदेव वहाँ गये और उन्होंने भगवान्का ध्यान किया। उसी क्षण बालक जीवित होकर आ गया। इस प्रकार भगवान्ने सन्तवेशनिष्ठाके माध्यमसे भक्तकी परीक्षा लेकर उसकी कीर्तिका विस्तार किया।

*श्रीप्रियादासजी सदाव्रतीजीकी इस सन्तनिष्ठाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—*

**महाजन सुनो सदाव्रती ताको भक्तिपन मन विचार सेवा कीजै चितलायकै।**
**आवत अनेक साधु निपट अगाध मति साधि लेत जैसी आवै सुबुधि मिलायकै॥**
**सन्त सुख मानि रहि गयो घर माँझ सदा सुत सों सनेह नित खेलै संग जायकै।**
**इच्छा भगवान मुख्य गौन लोभ जानि मारि डार्‍यौ धूरि गाड़ि गृह आयो पछितायकै॥ २१९॥**
**देखै महतारी मग बेटा कहाँ पगि रह्यौ बीते चारि जाम तऊ धाम में न आयो है।**
**फेरी पुर डौंड़ी ताके संग संत आप लौड़ी कह्यौ यों पुकारि सुत कौंने बिरमायो है॥**
**बेगि दै बताय दीजै आभरन दिये लीजै कही सो संन्यासी एही मार्‍यौ मन लायो है।**
**दई लै दिखाय देह बोल्यो याको गहि लेहु याही ने हमारौ पुत्र हत्यौ नीके पायौ है॥ २२०॥**
**बोल्यौ अकुलाय मैं तो दियौ है बताय मोंको देहु जु छुटाय नहीं झूठ कछु भाखियै।**
**लेवो मति नाम साधु जो उपाधि मेट्यो चाहौ जावौ उठि और कहूँ मानी छोरि नाखियै॥**
**आयकै विचार कियौ जानी सकुचायौ सन्त बोलि उठी तिया सुता दैकैं नीके राखियै।**
**पर्‍यो बधू पाँय तेरी लीजियै बलाय पुत्र शोक को मिटाय और खरी अभिलाखियै॥ २२१॥**
**बोलि लियो सन्त सुता कीजिये जू अंगीकार दुख सो अपार काहू विमुख कौं दीजियै।**
**बोल्यो मुरझाय मैं तो मार्‍यौ सुत हाय मोपै जियौ हू न जाय मेरो नाम नहीं लीजियै॥**
**देखौ साधुताई धरी सीस पै बुराई जहाँ राई हूँ न दोष कियो मेरु सम रीझियै।**
**दई बेटी ब्याहि कहि मेरो उर दाह मिटै कीजियै निवाह जग माँहिं जैलौं जीजियै॥ २२२॥**
**आये गुरु घर सुनि दीजै कौन सर बड़े सिद्ध सुखदाई साधु सेवा लै बताई है।**
**कह्यो सुत कहाँ? अजू पायो, कही कैसी भाँति? कैसे कै बखानैं जग मीच लपटाई है॥**

प्रभु ने परीक्षा लई सोई हमैं आज्ञा दई चलियै दिखावौ जहाँ देह कौं जराई है।
गए वाही ठौर सिरमौर हरिध्यान कियो जियो चल्यो आयो दास कीरति बढ़ाई है॥ २२३॥

## भगवान्‌द्वारा भक्तोंकी वाणीको सत्य करना

**दारुमई तरवार सारमय रची भुवन की।**
**देवा हित सित केस प्रतिग्या राखी जन की॥**
**कमधुज के कपि चारु चिता पर काष्ठ जु ल्याए।**
**जैमल के जुध माहिं अस्व चढ़ि आपुन धाए॥**
**भैंस चौगुनी घृत सहित श्रीधर सँग सायक धरन।**
**चारौ जुग चत्रभुज सदा भक्त गिरा साँची करन॥ ५२॥**

चतुर्भुज भगवान् चारों युगोंमें सदा ही अपने भक्तोंकी वाणीको सत्य करते हैं। १-श्रीभुवनसिंहजी चौहानकी लकड़ीकी तलवार भगवान्‌ने लोहेकी बना दी। २-श्रीदेवाजी पण्डाके लिये भगवान्‌ने अपने सिरके बाल सफेद करके अपने भक्तकी वाणीको सत्य किया। ३-मरनेपर तुम्हें कौन जलायेगा, भाईके ऐसा कहनेपर भक्त कामध्वजजीने कहा था कि मैं जिसका चाकर हूँ, वही जलायेगा। भक्तकी इस वाणीको सत्य करनेके लिये उसके मरनेपर श्रीहनुमान्‌जी आये और लकड़ी लाकर सुन्दर चिता बनायी, दाह-संस्कार किया। ४-भक्त जयमलजीकी ओरसे युद्धमें भगवान् स्वयं घोड़ेपर चढ़कर दौड़े और उन्होंने लड़कर शत्रुको हराया। ५-ग्वाल भक्तकी भैंसें खो गयीं, इन्होंने घर आकर मातासे कह दिया कि भैंसें मैंने एक ब्राह्मणको दे दी हैं, कुछ दिन बाद वह घीके समेत भैंसें लौटा जायगा। तब भगवान्‌ने चौगुनी भैंसें लाकर भक्तकी बातको सत्य कर दिया। ६-श्रीधर भक्तकी वाणीको सत्य करनेके लिये भगवान् श्रीराम उनकी रक्षा करते हुए उनके साथ घरतक गये। इस प्रकार प्रभु सदा भक्तोंके कथनको सत्य करते हैं॥ ५२॥

*इन भक्तोंके पावन चरितका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—*

### श्रीभुवनसिंहजीकी कथा

उदयपुरके महाराणाके एक दरबारी भुवनसिंह चौहान बड़े शूरवीर, साहसी और युद्ध-कलामें निष्णात थे। इसके साथ ही श्रीनाथजीके चरणोंमें भी उनका परम अनुराग था।

एक बार महाराणा शिकारके लिये गये। महाराणाके साथ सभी प्रमुख सामन्त थे। कई पशुओंका शिकार किया गया; पर भुवनसिंहद्वारा किसी जीवने प्राणोंसे हाथ नहीं धोया। अकस्मात् महाराणाको एक सुन्दर हिरणी दिखायी दी और उन्होंने उसके पीछे अपना घोड़ा लगा दिया; उस पर्वतीय प्रदेशमें हिरणी कहीं छिप गयी। महाराणा क्लान्त थे। उन्होंने अपने विश्वसनीय शूर भुवनसिंह चौहानको संकेत किया। अपने स्वामीका संकेत पाकर अपनी शूरवीरताका गर्व रखनेवाले खोजने लगे। वे उसे ढूँढ़नेमें सफल ही नहीं हुए, प्रत्युत उन्होंने अपनी बिजली-सी चमकती खड्‌गसे एक वृक्षके पीछे छिपी हुई उस निरीह हिरणीके पलक झपकते दो टुकड़े भी कर डाले। पर उसके नेत्रोंकी करुणासे भुवनसिंह चौहानका हृदय बिंध गया। उनके नेत्रोंके सामने वह मूक पशु अपने उदरस्थ शावकसहित तड़पकर शान्त हो गया।

भुवनसिंहका हृदय उन्हें धिक्कार उठा—'अरे अभिमानी योद्धा! तूने एक गर्भवती हिरणीका वधकर कौन-सी शूरवीरता दिखायी! क्या तेरी यही भगवद्भक्ति है? जीवघाती चौहान! तुझे धिक्कार है!!'

आत्मग्लानिसे दग्ध होते हुए भुवनसिंह चौहान घर लौट आये। उन्होंने आठ-आठ आँसू रोकर भगवान्से

अपने अपराधके लिये क्षमा माँगी। उसी समय उन्होंने तलवारका त्याग कर दिया और काष्ठ (दार)-की तलवार म्यानमें डाल ली।

महाराणाको भुवनसिंहके हृदयकी बातका क्या पता? वे तो उनका और भी अधिक सम्मान करने लगे। शूरवीरताके लिये उन्हें पुरस्कृत किया गया; पर भक्त तो शूरवीरताका अभिमान छोड़ चुका था। एक ईर्ष्यालु सामन्तने उनके काठकी तलवार ग्रहण करनेके भेदका पता लगाकर महाराणासे चुगली की। दरबारका एक मुकुटमणि सरदार दारकी तलवार रखे, यह असम्भव था। राजाको विश्वास नहीं हुआ; परंतु बार-बार राणाके कानोंमें जब यही बात दुहरायी गयी तो वे भ्रमित हो गये। अन्तमें उन्होंने एक युक्ति निकाली, जिससे भुवनसिंहजीकी तलवार भी देख ली जाय और वे अपमानित भी न हों।

राणाने एक दिन वन-भोजका आयोजन किया और उसमें सभी दरबारियोंको आमन्त्रित किया। नाना प्रकारके मनोरंजक कार्यक्रमोंके बीच महाराणा सहसा बोले—'अच्छा, सभी सामन्त अपनी-अपनी तलवार दिखायें। देखें, किसकी तलवारमें अधिक चमक है?' ऐसा कहकर सबसे पहले महाराणाने अपनी तलवार निकाली। उसके बाद तो बारी-बारीसे सभी अपनी-अपनी तलवारें म्यानोंसे निकालते और रख देते। भुवनसिंह चौहान बड़े धर्म-संकटमें पड़े। सभीके नेत्र उन्हींकी ओर लगे थे। उन्होंने कहना चाहा—'मेरी तलवार तो दार (काठ)-की है', पर भगवत्कृपासे उनसे कहते यह बन पड़ा कि 'मेरी तलवार तो सार (असली लौह धातु)-की है' और जैसे ही विकम्पित हाथसे उन्होंने तलवार म्यानसे निकाली तो उनके सहित सबके नेत्र आश्चर्यसे फटे-से रह गये। वह तलवार सचमुच सारकी थी और वही सबसे अधिक चमक रही थी। लगता था, जैसे बिजली कौंध गयी हो। भगवान्ने अपने भक्तकी लाज रखी, उसके वचनको सत्य किया। अब राणासे नहीं रहा गया। वे रोषसे आग-बबूला हो गये और भरी सभामें उन्होंने भुवनसिंहजीको सारी घटना सुनानेके बाद उस चुगलखोर सामन्तका सिर उड़ा देनेकी घोषणा की।

भुवनसिंहने इस सारे घटनाचक्रमें श्रीनाथजीकी अहैतुकी कृपाका दर्शन किया और अपराधी सामन्तके लिये प्राणदानकी याचना करते हुए आर्द्रवाणीसे कहा—'राणाजी! वास्तवमें गर्भवती हिरणीका प्राण लेनेके पश्चात् मैंने दारकी तलवार ही धारण कर ली थी। यह तो भगवत्कृपा है कि आपको यह सारकी दृष्टिगोचर हुई।' उन्होंने फिर म्यानसे तलवार निकाली तो वह इस बार दारकी ही थी। सब लोग और भी चकित हुए। राणा उनकी भगवद्भक्ति और अहिंसाभावनासे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'सरदार भुवनसिंह! अब आपको दरबारमें आनेकी आवश्यकता नहीं। मैं नहीं चाहता कि आपकी भगवदाराधनामें विघ्न पड़े। आवश्यकता होनेपर मैं ही आपके पास आऊँगा, जिससे मेरा भी इस संसार-सागरसे उद्धार हो जायगा। आप तो भगवान् त्रिलोकीनाथके ही दरबारी होनेयोग्य हैं। आजसे आपकी जागीर दो लाखके स्थानपर चार लाख रुपये वार्षिक की जाती है। आप धन्य हैं।'

विनयावनत भुवनसिंहजीने निवेदन किया—'राणाजी! मुझे जागीर नहीं चाहिये। आपसे यही प्रार्थना है कि आप भी शिकारका व्यसन छोड़कर सभी भूत-प्राणियोंके प्रति दयाका भाव अपनायें।' राणाने उनकी सम्मति स्वीकार कर ली। जिसे अनन्त ब्रह्माण्डोंके अधिपतिकी कृपा प्राप्त हो गयी हो, उसे सांसारिक सम्पत्ति—जागीरसे क्या काम! भुवनसिंहजीकी भक्ति-भावना दिनोंदिन पुष्ट होती गयी। वे शेष जीवनमें भगवदाराधन करते हुए अन्तमें दिव्य भगवद्धामको प्राप्त हुए।

***श्रीप्रियादासजी भगवान्‌की इस भक्तवत्सलताका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार करते हैं—***

**सुनौ कलिकाल बात और है पुराण ख्यात 'भुवन चौहान' जहाँ राना की दुहाई है।**
**पट्टा युग लाख खात सेवा अभिलाष साधु चल्यो सो सिकार नृप संग भीर धाई है॥**

**मृगी पाछे परे करे टूक हुती गाभिन यौं आइ गई दया कही काहे को लगाई है।**
**कहैं मोको भक्त क्रिया करौं मैं अभक्तन की दारु तरवार धरों यहै मन भाई है॥ २२४॥**
**और एक भाई तानै देखी तरवार दारु सक्यो न सँभार जाय राना कौं जनाई है।**
**नृप न प्रतीति करै करै यह सौंह नाना बाना प्रभु देखि तेज बात न चलाई है॥**
**ऐसे ही बरस एक कहत बितीत भयो कह्यो मोहिं मारि डारौ जो पै मैं बनाई है।**
**करी गोठ कुण्ड जाय पायकै प्रसाद बैठे प्रथम निकासि आप सबनि दिखाई है॥ २२५॥**
**क्रम सौं निहारि कही भुवन विचार कहा? कह्यौ चाहैं दार मुख निकसत सार है।**
**काढ़िकै दिखाई मानौ बिजुरी चमचमाई आई मन माँझ बोल्यौ याकौ मारो भार है॥**
**भक्त कर जोरि कै बचायौ अजू मारियै क्यौं? कही बात झूठ नहीं करी करतार है।**
**पट्टा दूना दून पावौ आवौ मत मुजरा कौं मैं ही घर आऊँ होय मेरो निस्तार है॥ २२६॥**

## श्रीदेवाजी पण्डाकी कथा

उदयपुरके समीप श्रीरूपचतुर्भुज स्वामीका मन्दिर है। देवाजी पण्डा उसमें पुजारी थे। वे बहुत पढ़े-लिखे नहीं थे, परंतु भगवान्‌की पूजा-अर्चना बड़ी श्रद्धाके साथ विधिपूर्वक करते थे।

एक दिनकी बात है—उदयपुर-नरेश एक पहर रात बीतनेके बाद मन्दिरमें आये। शयनकी आरती हो चुकी थी। भगवान्‌को शयन कराकर देवाजीने भगवान्‌के गलेका पुष्पहार उतारकर अपने सिरपर रख लिया था और अन्तर्गृहके पट बन्द करके वे मन्दिरसे बाहर आ रहे थे—इसी समय महाराणा वहाँ पहुँचे। दरवाजेपर अकस्मात् महाराणाको देखकर देवाजी घबराकर मन्दिरमें घुस गये और उन्हें पहनानेके लिये भगवान्‌की माला ढूँढ़ने लगे। उस दिन दूसरी माला थी नहीं, अतएव महाराणा नाराज न हों, इसलिये देवाजीने मस्तकपर धारण किया हुआ पुष्पहार उतार लिया और बाहर निकलकर महाराणाके गलेमें पहना दिया। सोचने-विचारनेके लिये तो समय ही कहाँ था। देवाजीके सिरके सारे बाल सफेद हो गये थे और बाल थे लम्बे-लम्बे। दो-एक सफेद केश मालामें लगे महाराणाके गलेमें आ गये। राणाने बालोंको देखकर व्यंग्यसे कहा—'पुजारीजी! मालूम होता है, भगवान्‌के सारे केश सफेद हो गये हैं।' देवाजीको इसका उत्तर देनेके लिये और कुछ भी नहीं सूझा, उन्होंने जल्दी-जल्दीमें डरते हुए कह दिया—'हाँ सरकार! ठाकुरजीके सारे बाल सफेद हो गये हैं।' राणाको पुजारीके इस उत्तरपर हँसी आ गयी। साथ ही पुजारीके प्रति मनमें रोष भी आया। उन्होंने गम्भीर होकर कहा—'मैं कल सबेरे स्वयं आकर देखूँगा।' यों कहकर वे लौट गये।

देवाजीने उतावलीमें राणासे कह तो दिया, पर अब उनको बड़ी चिन्ता हो गयी। प्रात:काल राणा आयेंगे और भगवान्‌के सफेद बाल न पाकर न जाने क्या करेंगे। देवाजीकी आँखोंसे नींद उड़ गयी, खाया तो कुछ था ही नहीं। आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली। देवाजीने कहा—'मेरे स्वामी! मेरे मुँहसे सहसा ऐसी बात निकल गयी! तुम तो नित्य नव किशोर हो। तुम्हारे सफेद केश कैसे? पर सबेरे महाराणा आकर जब तुम्हारे काले बाल देखेंगे, तब तुम्हारे इस सेवककी क्या स्थिति होगी?'

यों कहकर देवाजी फफक-फफककर रो पड़े। इसी प्रकार भगवान्‌को पुकारते और रोते-कलपते रात बीती। प्रात: देवाजीने नहा-धोकर काँपते-काँपते अन्तर्गृहके किंवाड़ खोले, उनका हृदय भयके मारे धक्-धक् कर रहा था। किंवाड़ खोलते ही देखा—कल्याणमय कृपा-कल्पतरु श्रीविग्रहके समस्त केश शुभ्र हो गये हैं। देवाके हृदयकी विचित्र दशा है—यह स्वप्न है कि साक्षात्? करुणा-वरुणालयकी इस अतुलनीय कृपा और दीनवत्सलताको देखकर प्रेमविह्वल और आनन्दोन्मत्त देवाकी बाह्य चेतना जाती रही। वे बेसुध होकर जमीनपर गिर पड़े।

बहुत देरके बाद देवाकी समाधि टूटी। उनके दोनों नेत्रोंसे आनन्द और प्रेमके शीतल आँसुओंकी वर्षा हो रही थी। इसी समय महाराणा परीक्षाके लिये पधारे। देवाजीको विकलतासे रोते देखकर उन्होंने समझा कि 'रात्रिको मुझसे कह तो दिया, पर अब भयके मारे रो रहा है।' इतनेमें ही उनकी दृष्टि भगवान्‌के श्रीविग्रहकी ओर गयी, देखते ही राणा आश्चर्य-सागरमें डूब गये—श्यामसुन्दरके समस्त केश सफेद चाँदीसे चमक रहे हैं। महाराणाको विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने समझा—'पुजारीने अपनी बात रखनेके लिये कहींसे सफेद बाल लाकर चिपका दिये हैं।' राणाके मनमें परीक्षा करनेकी आयी और उन्होंने अपने हाथसे चट भगवान्‌के सिरका एक बाल बलपूर्वक उखाड़ लिया। राणाने देखा—बाल उखाड़ते समय श्रीविग्रहको मानो दर्द हुआ और उनकी नाकपर सिकुड़न आ गयी। इतना ही नहीं, बाल उखड़ते ही सिरसे रक्तकी बूँद निकली और वह राणाके अंगरखेपर आ पड़ी। राणा यह देखते ही मूर्छित होकर जमीनपर गिर पड़े।

पूरा एक पहर बीतनेपर महाराणाको चेत हुआ। उन्होंने देवाजीके चरण पकड़कर कहा—'प्रभो! मैं अत्यन्त मूढ़, अविश्वासी और नीचबुद्धि हूँ। मैंने बड़ा अपराध किया है। भक्त क्षमाशील होते हैं—ऐसा मैंने सुना है। आप मेरा अपराध क्षमा कीजिये—मेरी रक्षा कीजिये।' यों कहते-कहते महाराणा अपने आँसुओंसे देवाजीके चरण धोने लगे। देवाजीने महाराणाको उठाकर हृदयसे लगा लिया और गद्‌गद वाणीसे कहा—'यह सब मेरे प्रभुकी महिमा है। मैं अशिक्षित गँवार केवल पेटकी गुलामीमें लगा था। भगवान्‌की पूजाका तो नाम था। पर मेरे नाथ कितने दयालु हैं, जो मेरी मिथ्या पूजापर इतने प्रसन्न हो गये और मुझ नालायककी बात रखनेके लिये उन्होंने अपने नित्यकिशोर सुकुमार विग्रहपर श्वेत केशोंकी विचित्र रचना कर ली। मैं क्या क्षमा करूँ—मैं तो स्वयं अपराधी हूँ! राजन्! मैंने तो झूठ बोलकर आपका तथा भगवान्‌का भी अपराध किया था। पर वे ऐसे दीनवत्सल हैं कि अपराधीके अपराधपर ध्यान न देकर उसकी दीनतापर ही रीझ जाते हैं।' राणा तथा देवा दोनों ही भगवान्‌की कृपालुताका स्मरण करते हुए रो पड़े!

श्रीचतुर्भुजजीने राणाको आज्ञा की—तुम्हारे लिये यही दण्ड है कि जो भी राजगद्दीपर बैठे, वह दर्शनोंके लिये मेरे मन्दिरमें न आये। इस आज्ञाके अनुसार उनकी आन मानकर जो भी राजा उदयपुरकी राजगद्दीपर बैठते हैं, वे दर्शन करने मन्दिरमें नहीं आते हैं।

***श्रीप्रियादासजी भगवान्‌की इस भक्तवत्सलताका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—***

**दरसन आयो राना रूप चतुर्भुज जू कैं रहे प्रभु पौढ़ि हार सीस लपटाये हैं।**
**वेगि ही उतारि कर लैकै गरे डारि दियो देखि धौरो बार कही धौरे आये? आये हैं॥**
**कहत तो कही गई सही नहीं जात अब महीपति डारै मारि हरिपद ध्याये हैं।**
**अहो हृषीकेश करौ मेरे लिये सेतकेस लेसहूँ न भक्ति कही किये देखो छाये हैं॥ २२७॥**
**मानि राजा त्रास दुखरासि सिंधु बूड्यौ हुतो सुनिकै मिठास बानी मानौं फेरि जियौ है।**
**देखे सेत बार जानी कृपा मो अपार करी भरी आँखैं नीर सेवा लेस मैं न कियौ है॥**
**बड़ेई दयाल सदा भक्त प्रतिपाल करैं मैं तो हौं अभक्त ऐपै सकुचायौ हियौ है।**
**झूठे सनबन्धहूँ तै नाम लाजै मेरोई जू तातैं सुख साजै यह दरसाय दियौ है॥ २२८॥**
**आयो भोर राना सेत बार सो निहारि रह्यो कह्यौ केस काहूके लै पंडाने लगाये हैं।**
**ऐंचि लियो एक तामैं खैंचिकै चढ़ाई नाक रुधिरकी धार नृप अंग छिरकाये हैं॥**
**गिर्‌यो भूमि मुरछा ह्वै तनकी न सुधि कछू जाग्यो जाम बीते अपराध कोटि गाये हैं।**
**यही अब दण्ड राज बैठे सो न आवै इहाँ अब लौं हूँ आनि मानि करैं जो सिखाये हैं॥ २२९॥**

## श्रीकामध्वजजी

बहुत पहलेकी बात है, राजस्थानके उदयपुर राज्यमें एक सेवक-परिवार रहता था। उस परिवारमें चार भाई थे। उनमेंसे तीन भाई तो उदयपुरके शासक राणाजीके यहाँ सेवा-कार्य करते थे, परंतु चौथे भाई श्रीकामध्वजजी भगवद्भक्त थे। वे वनमें रहकर भजन करते और समयपर घर आकर भोजन-प्रसाद पाकर फिर वनमें चले जाते। यही उनका नित्यका कार्य था। उनके तीनों भाई उनको 'कामके न काजके दुश्मन अनाजके' मानकर उनसे नाराज ही रहा करते थे। एक दिन तीनों भाइयोंने कामध्वजजीसे कहा—'भाई! यदि तुम थोड़ी देरके लिये राणाजीके दरबारमें चलकर हाजिरी लगा दिया करो तो हमें तुम्हारा भी वेतन मिल जाया करे, जिससे घरका खर्च भी ठीकसे चल सके।' इसपर श्रीकामध्वजजी बोले—'मैं जिसका सेवक हूँ, उसकी सेवा करता हूँ और उसीकी हाजिरी बजाता हूँ, दूसरेसे हमे क्या काम?' भाई लोग उनका उत्तर सुनकर बहुत नाराज हुए और बोले—'जब तुम मर जाओगे तो तुम्हें जलायेगा कौन?' श्रीकामध्वजजीने उत्तर दिया—'जिसके हम सेवक हैं, वही हमें जलायेगा।' भाइयोंने समझ लिया कि इनसे कुछ कहना-सुनना बेकार है, ये कुछ करेंगे नहीं। सो उन्हें उनके हालपर छोड़कर चले गये। इधर एक दिन भजन करते-करते श्रीकामध्वजजीका शरीर छूट गया।

भक्तका कार्य तो अब पूरा हो चुका था, आगे भगवान्‌की बारी थी; क्योंकि भक्तके कथनकी पूर्ति तो भगवान्‌को ही करनी होती है। कामध्वजजीका शव वनमें पड़ा हुआ था। बन्धु-बान्धवोंको न कोई खबर थी न ही वे खोज-खबर रखनेकी जरूरत ही समझते थे, परंतु दीनबन्धु भला अपने ऐसे अनन्य सेवकको कैसे भुला सकते थे! उन्होंने अपने उस सेवक (श्रीकामध्वजजी)-की दाहक्रियाका भार अपने सेवकश्रेष्ठ श्रीहनुमान्‌जीको सौंपा।

धन्य हो गये श्रीकामध्वजजी! उन्हें जो सौभाग्य मिला, वह तो ऋषि, मुनि, देव, मनुज—सबके लिये दुर्लभ था। स्वयं भक्तराज श्रीहनुमान्‌जी महाराजने उनके लिये चन्दनकी चिता तैयार की, उसपर श्रीकामध्वजजीका शरीर रखा और उसकी दाहक्रिया की। जिस वनमें श्रीकामध्वजजी रहते थे, वहाँ बहुत-से प्रेत भी रहते थे। श्रीकामध्वजजीकी चिताग्निसे निकले परम पवित्र धुएँके स्पर्श और आघ्राणसे वे लोग उस अपवित्र प्रेतयोनिसे मुक्त हो गये। दैवयोगसे उस प्रेतमण्डलीका एक सदस्य उस समय कहीं चला गया था, वापस लौटनेपर जब उसने अपने संगी-साथियोंको गायब देखा तो रोने लगा। वहीं एक सिद्ध सन्त रहते थे, उसने उनसे पूछा तो सारा वृत्तान्त मालूम हुआ। अब तो वह लगा पछताने कि हाय! मैं ही एक अभागा था, जो समयपर यहाँ नहीं था, अन्यथा मुझे भी इस कुत्सित पापयोनिसे मुक्ति मिल जाती। उसने उन सिद्ध सन्तसे प्रार्थना की कि प्रभो! मेरे ऊपर कृपा करें, अभी इस पुण्यात्मा महापुरुषकी चितामें अग्नि अवशिष्ट है, आप थोड़ा तृण-काष्ठ आदि इसमें डाल दें तो इसमेंसे धुआँ निकलने लगेगा और उसके स्पर्श एवं आघ्राणसे मेरी भी मुक्ति सम्भव हो जायगी। सन्तने उसके दुःख और उसकी सच्ची भावनासे द्रवित हो उस चिताग्निमें तृण-काष्ठादि डाल दिये, जिससे उसमेंसे पुनः धूम उठने लगा और उसके स्पर्श एवं आघ्राणसे वह बचा हुआ प्रेत भी मुक्त होकर भगवद्धामको चला गया।

***श्रीप्रियादासजी महाराज श्रीकामध्वजजीके इस चरितका वर्णन अपने कवित्तमें इस प्रकार करते हैं—***

**भये चारि भाई करैं चाकरी वै रानाजूकी तामैं एक भक्त करै बनमें बसेरो है।**
**आय कै प्रसाद पावै फेरि उठि जाय तहीं कहैं नेकु चलौ तौ महीना लीजै तेरो है॥**
**जाके हम चाकर हैं रहत हजूर सदा मरै तौ जरावै कौन? वही जाको चेरो है।**
**छूट्यो तन वन राम आज्ञा हनुमान आये कियो दाह धुआँ लगे प्रेत पार नेरो है॥ २३०॥**

## श्रीजयमलजी

भगवान् श्रीहरि अपने अनन्य भक्तोंका न केवल योग-क्षेम वहन करते हैं, अपितु अपने भक्तोंके मुखसे निकली वाणीको भी सत्य करते हैं; पुराणोंमें तो इसके अनेक प्रमाण प्राप्त होते ही हैं, ईसाकी सोलहवीं शताब्दीमें हुए राजा जयमलका जीवन-चरित भी इसका ज्वलन्त प्रमाण है।

राजा जयमल राजस्थानकी मेड़ता रियासतके राजा थे, इनके परदादा राव जोधाजीने प्रसिद्ध जोधपुर नगर बसाया था। आप रसिकशिरोमणि सन्त श्रीहितहरिवंशजीके शिष्य और श्रीराधा-माधवजीके अनन्य भक्त थे। श्रीठाकुरजीकी सेवा-पूजामें उनका बड़ा भारी अनुराग था, उसमें उन्हें जरा भी व्यवधान स्वीकार नहीं था। यहाँतक कि उस समय कोई कितनी भी महत्त्वपूर्ण राजकीय सूचना क्यों न हो, वे उसे नहीं सुनते थे और सन्देश लेकर आनेवालेको मृत्युदण्ड दे दिया करते थे। उनकी पूजा-सेवाका समय भी थोड़ा नहीं था, मन्दिरमें नित्य पूरे दस घड़ीतक वे भगवान्‌की सेवा किया करते थे।

राजाका एक भाई था, परंतु वह राजासे ठीक विपरीत स्वभावका था। उसे भगवान्‌की सेवा-पूजासे कोई मतलब नहीं था, साथ ही वह राजा जयमलसे द्वेष भी करता था। यद्यपि वह मँडोवर-जैसे समृद्ध राज्यका राजा था, पर उसकी महत्त्वाकांक्षा राजा जयमलके भी राज्यको हस्तगत कर लेनेकी थी। उसे किसी प्रकार राजाके सेवा-पूजाके नियमकी जानकारी हुई तो उसने एक कुटिल योजना बनायी। उस दुष्टने सोचा कि जब राजा जयमल पूजा कर रहे हों, तभी मेड़तापर आक्रमण कर देना चाहिये; क्योंकि मृत्युदण्डके भयसे उन्हें कोई आक्रमणकी सूचना देने नहीं जायगा और आसानीसे राज्य हस्तगत हो जायगा। ऐसा सोचकर उसने मेड़तापर आक्रमण कर दिया। राज्यपर आये इस प्रकारके संकटको देखकर मन्त्रियोंने विचार-विमर्श करके राजमातासे निवेदन किया कि आप ही महाराजको सूचना देनेमें समर्थ हैं; क्योंकि आपके प्रति पूज्य भावसे राजा आपको कुछ नहीं कहेंगे और उनतक सूचना भी पहुँच जायगी, फिर वे जैसा आदेश देंगे, हम लोग वैसा ही करेंगे, दूसरे किसीको भेजनेपर महाराज उसकी बात भी न सुनेंगे और प्राणदण्ड भी दे देंगे।

राज्यपर आये संकटकी गम्भीरताको देखते हुए राजमाता मन्त्रियोंके परामर्शसे मन्दिरमें गयीं और भगवान्‌की सेवा-पूजामें रत राजा जयमलको उन्होंने आक्रमणकी सूचना दी। राजा जयमलने माताकी बात सुनकर सिर्फ इतना कह दिया कि 'भगवान् सब अच्छा ही करेंगे' और स्वयं नित्यकी ही भाँति सेवा-पूजामें लगे रहे। इतने बड़े संकटकी सूचना भी उनके मनको सेवा-पूजासे न विचलित कर सकी और न ही उन्हें उद्विग्न कर सकी।

अब मन्त्रियोंके समक्ष समस्या थी, वे किंकर्तव्यविमूढ़ थे; क्योंकि राजाकी ओरसे कोई स्पष्ट आदेश उन्हें नहीं प्राप्त हो सका था। आक्रमणकर्ता राजाका भाई ही था, ऐसेमें साम-दामसे भी कार्य हो सकता था। राजाका स्पष्ट आदेश होता तो दण्डनीति अर्थात् युद्धके लिये सेनाको कूच कराया जाता। इधर राजमन्त्रियोंके समक्ष यह समस्या थी, उधर राजमन्त्रियोंकी यह किंकर्तव्यविमूढ़ता भगवान्‌के लिये समस्या बन रही थी; क्योंकि राजाने कहा था कि 'भगवान् सब अच्छा ही करेंगे', ऐसेमें सारा उत्तरदायित्व भगवान्‌का ही हो जाता था। आखिर भक्तके राज्य और उसके वचनकी रक्षा भी तो उन्हींका दायित्व है।

शत्रुसेना निर्बाध रूपसे बढ़ी चली आ रही थी; जब सेना मेड़ताके एकदम निकट पहुँच गयी तो भगवान्‌से रहा न गया। उन्होंने झट सैनिकका वेश बनाया; एक हाथमें तलवार ली, दूसरेमें भाला धारण किया। पीठपर ढाल बाँधी और राजाकी घुड़सालमें जाकर राजाकी सवारीका अश्व खोल लाये, फिर उसपर सवार होकर अकेले ही युद्धभूमिकी ओर चल दिये। भगवान्‌के सवार होते ही अश्व सरपट दौड़ चला, मानो उसमें भगवान् श्रीहरिके शाश्वत वाहन गरुड़जीका आवेश हो गया हो। पहले तो अकेले एकमात्र सैनिकको आते देखकर

शत्रु राजाने सोचा कि सम्भवतः यह सन्धि-प्रस्ताव लेकर आ रहा होगा, परंतु थोड़ी ही देरमें उसका वह भ्रम दूर हो गया, जब सैनिक बने श्रीभगवान् तलवार चलाते हुए शत्रुसेनामें घुस गये। उस समय उनकी तलवार बिजलीकी भाँति कौंधकर शत्रुओंको सिरविहीन कर रही थी और भालेका एक ही प्रहार हाथियोंके गण्डस्थलको फाड़कर उन्हें धराशायी कर दे रहा था। प्रथम तो शत्रुसेनाने उस सैनिकको घेरनेका प्रयास किया, पर वायुवेगसे दौड़ते अश्व और विद्युत्की भाँति चमकती तलवारके पास आनेका उनका साहस न हुआ और थोड़ी ही देरमें मैदान खाली हो गया। भला, जिसके भ्रूसंचालनमात्रसे प्रलय होता हो, उसके लिये थोड़ी-सी सेनाका क्या अस्तित्व! अब युद्धक्षेत्रमें सिर्फ शत्रु राजा ही अकेला बच रहा, उसकी सेना भाग खड़ी हुई थी। शत्रु भी मेरे भक्तका भाई ही है, यह सोचकर भगवान्ने उसका वध करनेके स्थानपर उसे अपनी उसी भुवनमोहिनी छविके दर्शन कराये, जिसका कि दर्शनकर खर-दूषण और त्रिशिरा मोहित हो गये थे। उस छवि और तेजको देखते ही राजाके भाईका शत्रुभाव नष्ट हो गया और वह मूर्च्छित होकर वहीं रणभूमिमें गिर पड़ा। संकट समाप्त हुआ देखकर भगवान् रणभूमिसे वापस लौट आये और घोड़ेको पुनः घुड़सालमें बाँध दिया।

इधर जब राजाने भगवान्की सेवा-पूजा कर ली तो उन्हें माताद्वारा दी गयी आक्रमणकी सूचनाकी याद आयी, फिर तो वे राजाके कर्तव्यका ध्यानकर युद्धभूमिमें जानेको उद्यत हो गये। उन्होंने सईसको तुरंत घोड़ा तैयारकर लानेके लिये कहा। सईसने घुड़सालमें जाकर देखा तो घोड़ा पसीनेसे पूरी तरह लथपथ था, ऐसा लगता था, जैसे उसे बहुत दौड़ाया गया हो। सईसने तुरंत जाकर राजाको इस बातकी सूचना दी। राजाने घुड़सालमें जाकर देखा तो सचमुच घोड़ा पसीनेसे लथपथ था। फिलहाल युद्धभूमिमें तो जाना ही था, अतः राजा दूसरे घोड़ेपर सवार हुए और युद्धभूमिकी ओर चल दिये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि आक्रमणकारी राजाकी सारी सेना घायल पड़ी है, आगे जानेपर देखा कि आक्रमण करनेवाला भाई भी घायल पड़ा है। उसने राजा जयमलको देखते ही सिर झुका लिया और बोला—आपको जो दण्ड देना हो, मुझे स्वीकार है। राजा जयमलने कहा कि पहले यह तो बताओ कि तुम्हारी सेनाका विनाश किसने किया और तुम कैसे घायल हो गये? उसने कहा—तुम्हारी ओरसे मात्र एक साँवला-सा सिपाही घोड़ेपर बैठकर आया था, उसने ही मेरी सेनाका विनाश किया और उसकी दृष्टि पड़ते ही मैं घोड़ेसे गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया। राजा जयमलको अब सब समझते देर न लगी कि वह साँवला सिपाही कौन था? वे तो उनके आराध्यदेव श्यामसुन्दर ही थे। राजाने सोचा जब उन्होंने इस शत्रुको क्षमा कर दिया तो मुझे दण्ड देनेका क्या हक है? अतः उन्होंने भाईसे कुशल-प्रश्नकर उसे वापस घर भेज दिया। उधर भाईके मनमें भी पश्चात्ताप हुआ कि मैंने अपने सन्तप्रकृति भाईसे इस प्रकारका द्रोह किया। उसने बार-बार क्षमा माँगी और स्वयं भी भगवद्भक्त हो गया।

इधर राजा जयमलके मनमें बड़ा दुःख हुआ कि मेरे कारण भगवान्को इतना कष्ट उठाना पड़ा। मैंने मातासे जो यह कह दिया था कि—'भगवान् सब अच्छा ही करेंगे;' इसीलिये भगवान् मेरे राज्यकी रक्षाके लिये स्वयं युद्ध करने गये।

इस प्रकार करुणामय प्रभुने अपने भक्त राजा जयमलके वचनकी रक्षा की।

***श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—***

**'मेरतै' प्रथम बास 'जैमल' नृपति ताकौं सेवा अनुराग नेकु खटकौं न भावहीं।**
**करै घरी दस तामैं कोऊ जो खबर देत लेत नहीं कान और ठौर मरवावहीं॥**
**हुतो एक भाई बैरी भेद यह पाइ लियो कियो आनि घेरौ माता जाइकै सुनावहीं।**
**'करैं हरि भली' प्रभु घोरा असवार भये मारी फौज सब कहैं लोग सचु पावहीं॥ २३१॥**

**देखैं हाँफैं घोरा अहो कौन असवार भयौ ? गयो आगे जबै देख्यो वही बैरी पर्‍यौ है।**
**बोल्यो सुखपाय अजू साँवरो सिपाही को है ? एकले ही फौज मारी मेरो मन हर्‍यौ है॥**
**तोही को दिखाई दई मेरे तरसत नैन बैनन सो जानी वही स्याम प्रभु ढर्‍यौ है।**
**पूछि कै पठाय दियौ वानै पन यहै लियौ कियौ इन दुःख 'करै भली' बुरो कर्‍यौ है॥ २३२॥**

## श्रीग्वालभक्तजी

बात पुरानी है, किसी गाँवमें एक ग्वालभक्त रहते थे। सन्त-सेवामें उनकी बड़ी प्रीति थी। घरमें जो भी उत्तम सामग्री बनती, उसे वे चुपचाप ले जाकर वनमें सन्तों-महात्माओंको निवेदित कर आते। ग्वालभक्तके पास बहुत-सी भैंसें थीं, दिनभर उन्हें चराना ही उनका नित्यकार्य था और उन्हींसे उनकी आजीविका चलती थी। घरमें उनकी माता और वे—कुल दो ही प्राणी थे।

एक बारकी बात है, उत्सवका दिन था। माँने घरमें अनेक प्रकारके स्वादिष्ट व्यंजन बनाये थे। रसोईसे आती भीनी-भीनी मधुर सुगन्ध ग्वालभक्तके अन्तःकरणको रससिक्त कर रही थी। वे सोच रहे थे कि माँ कब भोजन परोसें और मैं कब लेकर जाऊँ। जब उनसे रहा न गया तो माँसे बोले—'मैया! तू मेरे लिये पकवान अँगौछेमें बाँध दे, मैं वन में जाकर खा लूँगा, आखिर भैंसें भी भूखी होंगी, उन्हें भी तो चराना है।' भोली माँने अँगौछेमें ढेर सारे पकवान बाँध दिये, कुछ पकवान और भी ग्वालभक्तने माँकी नजरें बचाकर बाँध लिये और एक बड़ी-सी गठरी बना ली।

आज घरपर उत्सव होनेके कारण वन जानेमें विलम्ब हो गया था, बाहर द्वारपर बँधी भैंसें भी रँभा रही थीं। ग्वालभक्तजीने शीघ्रतापूर्वक भैंसोंको बन्धनमुक्त किया और सिरपर व्यंजनोंकी गठरी रख चल दिये वनकी ओर। वनमें पहुँचनेपर जब भैंसें चरनेमें मग्न हो गयीं तो आपने सिरपर गठरी उठायी और भैंसोंको छोड़कर चल दिये सन्तोंके आश्रमकी ओर। वहाँ पहुँचकर सन्तोंके चरणोंमें शीश रखकर विनय की कि प्रभो! घरमें उत्सव होने और अकेली बूढ़ी माँद्वारा ही व्यंजन बनानेके कारण देर हो गयी; कृपाकर क्षमा करें; क्योंकि बिना आप लोगोंके प्रसाद ग्रहण किये, मैं भी सीथ-प्रसादी नहीं पाऊँगा। ग्वालभक्तजीका ऐसा प्रेमभाव और ऐसी निष्ठा देखकर सन्तलोग भी गद्‌गद हो गये, भला हों भी क्यों न! इस भावके तो भगवान् भी भूखे रहते हैं।

सन्तोंकी पंगत बैठी; ***'सिय हरि नारायण गोविन्दे'*** का कीर्तन हुआ, बड़ी जय बोली गयी, फिर सबने धीरे-धीरे प्रसाद पाया। जब सब सन्तोंने प्रसाद पा लिया तो श्रीग्वालभक्तजीने सब पात्र धोये और स्वयं भी सीथ-प्रसादी पायी और तब पुनः वहाँ आये, जहाँ भैंसोंको चरनेके लिये छोड़ गये थे। वहाँ आकर देखा तो सभी भैंसें गायब! हुआ यह कि जब ये सन्तोंके पास चले गये थे, तो चोरोंने भैंसोंको बिना चरवाहेके चरते देखा और हाँक ले गये।

ग्वालभक्तजीको न तो भैंसोंकी चोरीका दुःख था, न ही सन्त-सेवा करनेका पछतावा। समस्या सिर्फ यह थी कि भैंसोंके बारेमें माँको क्या बतायेंगे ? पर उन्होंने उसका भी उपाय सोच लिया। रोजकी तरह शामको लौटकर आप घर आये तो माँने पूछा—भैंसें कहाँ हैं ? भक्तजीने सोचा कि सच्ची बात बता देंगे तो माँको बहुत दुःख होगा; जब-जब माँको भैंसोंकी याद आयेगी तब-तब वह मुझे डाँटें-फटकारेंगी, साथ ही सन्तोंको भी चार खरी-खोटी सुनायेंगी, इस तरह नित्यका क्लेश हो जायगा; अतः उन्होंने सच्ची बात छिपा ली और बोले—माँ! एक बेचारा गरीब ब्राह्मण भूखों मर रहा था, मैंने सब भैंसें उसे दे दी हैं। वह भैंसोंको चरायेगा और दूधसे घी बनाकर इकट्ठा कर लेगा तथा छाछ-मट्ठेसे अपना काम चलायेगा। कुछ दिनों बाद वह घी और भैंसोंको वापस कर जायगा। माँकी ब्राह्मणोंके प्रति विशेष भक्ति थी, अतः कुछ नहीं कहा और बेटेके इस कार्यको उचित ही माना।

धीरे-धीरे समय बीतता गया, भैंसोंकी बात भी आयी-गयी हो गयी। बीचमें कभी माँ पूछतीं भी तो

भक्तजी कह देते कि ब्राह्मण बेचारा गरीब है, जैसे ही उसकी आजीविकाकी कोई अन्य व्यवस्था हो जायगी, वह भैंसोंको वापस कर जायगा। भक्तजी यह बात केवल माँको समझानेके लिये ही नहीं कहते थे, बल्कि उनके मनमें यह दृढ़ विश्वास भी था कि सन्तोंकी सेवाके प्रतापसे मुझे भैंसें अवश्य वापस मिल जायँगी। अब उनके इस भावकी रक्षाका भार भगवान्पर था; क्योंकि सन्त तो भगवान्के प्रतिनिधि ही होते हैं।

कुछ दिन और बीत गये, दीवालीका त्यौहार आ गया। चारों ओर पटाखों, मिठाइयों और पकवानोंकी धूम थी, मस्तीका माहौल था। भगवान्की प्रेरणा! चोर भी उत्सवकी धुनमें उन्मत्त थे, उन्होंने भैंसोंका खूब शृंगार किया, उन्हें चाँदीकी हँसुलियाँ पहनायीं; सींग-पूँछ सब अलंकृत किये। उनकी प्रवृत्ति थी तामसी, अत: उनके लिये यही उत्सव था। रातभर आतिशबाजियाँ और पटाखे छूटते रहे, अचानक किसी बालकने भैंसोंके पास जाकर पटाखेकी एक लड़ी जला दी और वे चारों ओर धायँ-धायँ करके दगने लगे। भैंसोंके लिये यह एकदम नयी स्थिति थी। फिर क्या! वे सब रस्सी तोड़कर और खूँटे उखाड़कर भागीं। भक्तजीकी भैंसोंने कुछ दूर जानेके बाद भक्तजीके घरका रास्ता पकड़ा और उन्हींके पीछे चोरोंकी अन्य भैंसोंने भी अनुसरण किया। सुबह होते-होते सभी भैंसें आभूषणोंसे सजी-धजी भक्तजीके दरवाजेपर उपस्थित हो गयीं और रँभाने लगीं। भक्तजीकी माँने जब भैंसोंके रँभानेकी आवाज सुनी तो भक्तजीसे कहा—बेटा! ये तो अपनी भैंसोंकी आवाज है, जा-जाकर देख। भक्तजीने जब बाहर आकर देखा तो ठगे-से खड़े रह गये। उन्होंने माँको आवाज दी—माँ! देखो, अपनी भैंसें आ गयी हैं, बेचारे ब्राह्मणने भैंसोंको ड्योढ़ा-दूनाकर भेजा है और घी बेंचकर आभूषण बनवा दिये हैं। माँने देखा तो आश्चर्यसे कहने लगीं—बेटा! जिसके पास खानेका भी इन्तजाम नहीं था, उसने भला आभूषण कैसे बनवा दिये! घी बेचनेसे इतना पैसा कैसे इकट्ठा हो सकता है? माँकी बात सुनकर भक्तजीके सारी सच्ची घटना सुना दी। माँने खुश होकर कहा—बेटा! यह सारा धन सन्तोंकी कृपासे मिला है, मुझे तो मेरी भैंसें मिल गयीं, यही बहुत है; तू इन आभूषणोंको बेंचकर प्राप्त धनसे सन्त-सेवा कर दे।

इस प्रकार भगवान्ने सन्तोंकी कृपा और सच्ची सन्त-भक्तिका प्रभाव दरशाया।

***भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—***

**भयौ एक ग्वाल साधु सेवा सो रसाल करै परै जोई हाथ लैकै सन्तन खवावहीं।**
**पायो पकवान वन मध्य गयो ख्वाइबे कौं आइबे की ढील चोर भैंस सो चुरावहीं॥**
**जानिकै छिपाई बात माता सौं बनाइ कही दई विप्र भूखो घृत संग फेरि आवहीं।**
**दिन हो दिवारी कौ सु उन्हि पहिरायौ हाँस आइ घर जाम लिये रांभकै सुनावहीं॥ २३३॥**

## श्रीश्रीधर स्वामीजी

श्रीमद्भागवतके टीकाकारोंमें श्रीश्रीधर स्वामीका नाम अग्रगण्य है। उनके गृहस्थाश्रमकी बात है, एक बार आप रास्तेमें चले आ रहे थे। ठगोंने आपसे पूछा—तुम्हारे साथ और भी कोई है क्या? आपने कहा—मेरे प्राणोंके आधार श्रीरघुनाथजी मेरे साथ हैं। ठगोंने साथ चलकर किसीको न देखकर यह समझ लिया कि इनके साथ कोई भी नहीं है। तब वे इन्हें मारने और लूटनेका उपाय करने लगे। इसी बीच ठगोंने देखा कि धनुष-बाण धारण किये हुए परम सुकुमार प्रभु श्रीधरजीके साथ-साथ चल रहे हैं, बीच-बीचमें भगवान् ठगोंको नहीं दिखायी देते, ठग जैसे ही मारनेका प्रयत्न करते, वैसे ही बाण तानकर डराते हुए भगवान् दिखायी पड़ते। ठगलोग साथ-साथ लगे चले ही आये। जब वे अपने घर आ पहुँचे, तब ठगोंको श्रीरघुनाथजी कहीं भी नहीं दिखायी पड़े। तब वे श्रीश्रीधरस्वामीजीसे पूछने लगे—साँवलेसे धनुष-बाणधारी जो आपके साथ थे, वे कहाँ हैं? श्रीधरस्वामीजी समझ गये कि रघुनाथजीने ही वनमें साथ रहकर कष्ट दूर किया है। प्रभुकी

कृपाका अनुभव करके आपने गृहस्थाश्रमका भार अपने सिरसे उतार फेंका और भजन करने लगे। चोरोंने भी रहस्य जानकर स्वामीजीकी शिष्यता स्वीकार की। श्रीधरस्वामीका वर्णन छप्पय ४५ में भी आया है।

*श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—*

**भागवत टीका करी 'श्रीधर' सुजानि लेहु गेह में रहत करैं जगत व्यवहार हैं।**
**चले जात मग ठग लगे कहैं कौन संग? संग रघुनाथ मेरो जीवन अधार हैं॥**
**जानी इन कोऊ नाहिं मारिबो उपाय करें धरे चाप बान आवैं वही सुकुमार हैं।**
**आये घर ल्याये पूछैं स्यामसों सरूप कहाँ? जानी वे तौ पार किये आपु डार्‌यो भार हैं॥ २३४॥**

## भगवान्‌का भक्तप्रेम

**निहकिंचन इक दास तासु के हरिजन आए।**
**बिदित बटोही रूप भए हरि आपु लुटाए॥**
**साखि देन कौ स्याम खुरदहा प्रभुहि पधारे।**
**रामदास के सदन राय रनछोर सिधारे॥**
**आयुध छत तन अनुग के बलि बंधन अपु बपु धरैं।**
**भक्तनि सँग भगवान नित (ज्यों) गऊ बच्छ गोहन फिरैं॥ ५३॥**

भगवान् सर्वदा अपने भक्तोंके साथ इस प्रकार घूमा करते हैं, जैसे बछड़ेके पीछे-पीछे गाय। (श्रीहरिपाल नामक) एक भगवान्‌के भक्त अति निष्किंचन थे, उनके यहाँ भक्तगण पधारे। घरमें सेवायोग्य कुछ भी नहीं था। स्वयं भगवान् लक्ष्मीजीको साथ ले यात्री बनकर आये और उस निष्किंचन भक्तके हाथोंसे लुटे। साक्षी देनेके लिये भगवान् वृन्दावनसे एक भक्तके साथ खुर्दहा ग्रामको पधारे। श्रीरणछोड़रायजी द्वारकासे श्रीरामदासजीके घर डाकौरको आये और अपने सेवक रामदासजीके ऊपर पड़ी हथियारोंकी चोटको अपने शरीरपर ले लिया। राजा बलिको बाँधनेवाले भगवान्‌ने अपने श्रीविग्रहको कानकी सोनेकी बालीसे भी हलका कर लिया। ये चरित्र सर्वविदित हैं॥ ५३॥

*यहाँ इन भगवत्प्रेमी भक्तोंका चरित्र संक्षेपमें प्रस्तुत है—*

### निष्किंचन भक्त श्रीहरिपालजी

श्रीहरिपालजीका जन्म ब्राह्मण-कुलमें हुआ था, आप श्रीभगवान्‌के अकिंचन भक्त थे। सन्त-सेवामें आपकी बड़ी प्रीति थी। प्रतिदिन आपके यहाँ साधुओंकी पंगत हुआ करती थी। धीरे-धीरे जब घरका सारा धन समाप्त हो गया, तब आप बाजारसे उधार ला-लाकर सन्तोंके भोजन-प्रसादकी व्यवस्था करने लगे। थोड़े दिनमें बाजारमें भी जब हजारों रुपयेका कर्ज हो गया तो वहाँसे भी उधार मिलना बन्द हो गया। पास-पड़ोसके लोग इसलिये उधार देनेसे कतराते थे कि ये दिनभर तो साधु-सेवा करते हैं, कुछ काम-धन्धा तो करते नहीं, फिर वापस कहाँसे करेंगे। सन्त-सेवाके लिये जब कहींसे भी धनकी व्यवस्था न हो सकी तो ये अत्यन्त दुखी रहने लगे। ये सदैव यही सोचते कि धनकी व्यवस्थाका क्या उपाय किया जाय, जिससे सन्त-सेवा निर्बाध होती रहे। इसी क्रममें ये एक बार किसी वैश्यके यहाँ चोरी करनेके उद्देश्यसे घुसे थे। आधी रातका समय था, अचानक खटपट होनेसे वैश्यकी पुत्रीकी नींद टूट गयी। उसने अपने पितासे कहा—'पिताजी! लगता है, घरमें कोई चोर घुसा है! वैश्यने कहा—चिन्ता न करो, हमारे गाँवमें न कोई चोर है, न कभी चोरी होती है। अगर कोई होगा भी तो हरिपाल ही होंगे, वे सन्त-सेवाके लिये ही कुछ ले जाने आये होंगे, इसलिये तू चुपचाप सो जा।'

पिता-पुत्रीकी इस वार्ताको जब श्रीहरिपालजीने सुना तो उन्हें इस बातकी बड़ी ग्लानि हुई कि वे एक भगवद्भक्तके यहाँ चोरी करने घुसे हुए हैं। उन्होंने सारा सामान तो वहाँ छोड़ ही दिया, साथ ही वह चादर भी छोड़ दी, जिसमें उन्होंने चोरीका सामान बाँधा था। इस घटनाके बाद उन्होंने चोरी करना भी छोड़ दिया; क्योंकि इसमें इस बातका भय था कि कहीं गलतीसे किसी भक्तके यहाँ न चोरी हो जाय और अपराध बन जाय। परंतु साधु-सेवाके लिये धनकी भी व्यवस्था करनी थी, अतः उन्होंने जंगलमें जाकर वेशभूषा (तिलक, माला, कण्ठी आदि)-से परीक्षाकर अभक्तोंको लूटना शुरू किया और उसी धनसे सन्त-सेवा करते।

एक दिन द्वारपर बड़ी-सी सन्त-मण्डली आ पहुँची। इन्होंने पत्नीसे कहा—देवि! आज हमारे बड़े भाग्य हैं, जो इतने सन्त घरपर आये हैं। तुम इनके लिये भोजनका कुछ उपाय करो। पत्नीने कहा—स्वामी! घरमें तो एक दाना नहीं है, मैं क्या इन्तजाम करूँ? हरिपालजीने कहा—कहीं पास-पड़ोससे ही कुछ माँग लाओ। पत्नी बोली—पास-पड़ोसवाले कोई कुछ नहीं देते, यहाँतक कि मुझे देखकर ही लोग द्वार बन्द कर लेते हैं। अब तो भगवान् ही कोई उपाय कर सकते हैं। मैं तो यही कहूँगी कि हम दोनों बैठकर भगवान्से ही प्रार्थना करें, वे ही हम लोगोंकी सुनेंगे।

पत्नीकी बात सुनकर भक्त हरिपाल कुछ क्षणके लिये उदास हो गये, फिर बोले ठीक है, तू जैसा कहती है, वैसा ही करूँगा। फिर क्या था, भक्त दम्पतीने अत्यन्त दीन भावसे भगवान्की शरण ली और बोले—प्रभो! बाहर सन्त-मण्डली खड़ी है, दीनानाथ! अब लाज तुम्हारे ही हाथ है।

इधर अपने निष्किंचन और सन्त-सेवी भक्त हरिपालको चिन्तित जान द्वारकानाथ भगवान् श्रीकृष्ण व्याकुल हो गये; भक्तकी चिन्ता ही भगवान्की चिन्ता होती है और उसका निवारण करना ही उनका कार्य। भगवान्ने तुरंत सेठका रूप धारण किया, मूल्यवान् वस्त्र-आभूषण धारण किये और चलनेको तैयार हुए तो रुक्मिणीजीने पूछा—प्रभो! आप अचानक कहाँ चल दिये और यह क्या भेष बना रखा है? भगवान्ने कहा—एक भक्तके घर जा रहा था, पर तुमने टोक दिया, अब कुशल नहीं दीखती। श्रीरुक्मिणीजी किंचित् रोष व्यक्त करते हुए बोलीं—आपको तो जहाँ जाना होता है, अकेले ही चल देते हैं, मुझे तो पूछतेतक नहीं और जब आज मैने पूछा तो आप कह रहे हैं कि टोक दिया। भगवान्ने मुसकराते हुए कहा—अच्छा, आज तुम भी चलो। बड़ा भारी भक्त है, अतः खूब सज-धज लो, देखो, मैंने भी खूब सुन्दर वस्त्र और मूल्यवान् आभूषण धारण कर लिये हैं। भगवान्का प्रोत्साहन पाकर श्रीरुक्मिणीजीने नखसे शिखतक मणिरत्नजटित आभूषणोंसे शृंगार किया और चलनेके लिये तैयार हो गयीं।

भगवान् श्रीद्वारकानाथ और श्रीरुक्मिणीजी—दोनों सेठ-सेठानी बने भक्त हरिपालके द्वारपर आये और उनसे कहा—भाई! हमें अमुक गाँव जाना है, मार्गमें जंगल पड़ता है और मेरे पास रत्न-आभूषण आदि मूल्यवान् वस्तुएँ हैं, सो हमें कोई पहुँचा दे तो उसे हम मजदूरी दे देंगे। भला अन्धा क्या चाहे—दो आँखें; हरिपालजीको तो मुँहमाँगी मुराद ही मिल गयी थी। उन्होंने कहा—मेरे दरवाजेपर सन्तजन बैठे हैं, इनके लिये व्यवस्था करनी है, सो आप अगर मजदूरीके पैसे पहले दे दीजिये तो मैं आपके साथ-साथ चला चलूँ। भगवान् तो तैयार बैठे ही थे, उन्होंने तुरंत रुपये दे दिये। हरिपालजीने रुपये देकर पत्नीसे कहा कि इन रुपयोंसे तुम सन्तोंको बालभोग कराओ, मैं इन्हें पहुँचाकर अभी आता हूँ।

अब श्रीहरिपालजी आगे-आगे और सेठ-सेठानी बने भगवान् तथा रुक्मिणीजी पीछे। हरिपालजी सोचते चले जा रहे थे कि सेठके पास माल तो बहुत है, परंतु भक्त है कि नहीं! क्योंकि भक्तोंको लूटना नहीं है। अतः ये बार-बार पीछे मुड़कर सेठ-सेठानीको देख लेते और वेशके आधारपर परीक्षा करते। इन्हें इन लोगोंके शरीरपर न

कोई तिलक दिखायी दे रहा था, न ही माला-कण्ठी। रास्तेमें चर्चा भी केवल धन-दौलत और व्यापार-वाणिज्यकी ही हो रही थी। हरिपालजीके मनमें यह बात दृढ़ हो गयी कि ये लोग अवैष्णव और पक्के दुनियादारी व्यक्ति ही हैं, अतः इन्हें लूटना अनुचित नहीं है। यह विचारकर जब निर्जन सुनसान जंगलमें पहुँचे तो सेठ-सेठानीके गर्दनपर भाला रख दिया और गरजकर बोले—जो भी तुम लोगोंके पास हो, उसे निकालकर रख दो, नहीं तो बे-मौत मारे जाओगे; तुम लोगोंको मालूम नहीं, मेरा नाम हरिपाल है।

भगवान्‌ने काँपते हाथों चुपचाप जल्दी-जल्दी सारे आभूषण उतार दिये, आखिर वे तो आये ही इसीलिये थे। इसके बाद उन्होंने रुक्मिणीजीको भी संकेत किया कि जल्दीसे तुम भी सारे आभूषण उतार दो, नहीं तो अनावश्यक विपत्तिमें पड़ जाओगी। रुक्मिणीजीको बड़ा आश्चर्य हुआ कि आज प्रभु कैसी लीला कर रहे हैं! जिसके डरसे काल भी डरता हो, वे सर्वशक्तिमान् प्रभु इस मर्त्य मानवसे क्यों डर रहे हैं? फिर भी प्रभुकी इच्छा समझ उन्होंने सारे आभूषण उतार दिये, बस एक उँगलीमें एक छल्ला भर रह गया, जो जल्दीमें निकल नहीं रहा था। हरिपालजीने देखा कि सेठानीकी उँगलीमें अभी एक छल्ला है और उससे भी सन्त-सेवा हो सकती है, तो बड़ी निष्ठुरतापूर्वक उँगली मरोड़कर उसे भी निकाल ही लिया। अब तो रुक्मिणीजीको बहुत क्रोध आया कि इस दुष्टको इतने आभूषण दे दिये गये, फिर भी एक छल्लेके लिये इसने मेरी उँगली मरोड़ दी। वे शाप देनेको उद्यत हो गयीं। भगवान् उनके मनोभावको जान गये और कहीं श्रीरुक्मिणीजी शाप ही न दे दें—यह सोचकर तुरंत अपने असली रूपमें प्रकट हो गये और भक्त हरिपालको अपने वक्षःस्थलसे चिपटा लिया, मानो प्रभुने इस प्रकार श्रीरुक्मिणीजीको यह बता दिया हो कि इसे शाप न दो, अन्यथा इसका शाप भी मैं अपने ही ऊपर ले लूँगा।

जब हरिपालजीको यह पता चला कि जिन सेठ-सेठानीको मैंने लूट लिया है, वे तो मेरे परमाराध्य ही हैं, तो उनकी दशा विचित्र हो गयी। वे बार-बार प्रभुके चरणोंमें गिरकर क्षमा-याचना करते हुए प्रायश्चित्त करने और सारा धन वापस करने लगे। तब भगवान्‌ने कहा—भैया! यह तो मैं तुम्हारे लिये ही लाया था, तुम्हारी सन्त-सेवासे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम तो मेरे भक्तोंके मुकुटमणि 'भक्तराज' हो। तुम किसी प्रकारकी चिन्ता न करो और यह सारा धन ले जाकर सन्तोंकी सेवा करो। श्रीहरिपालजीने कहा—प्रभो! यदि सन्तोंको इस बातका पता लग जायगा, तो वे इसे स्वीकार नहीं करेंगे और मेरी जगहँसाई भी बहुत होगी? कि इसने तो भगवान्‌को ही लूट लिया। भगवान्‌ने कहा—डरो मत, यह सब मेरी ही इच्छासे हुआ है; अतः मैं किसीसे नहीं कहूँगा।

इस प्रकार वार्तालापकर और दर्शन देकर जब भगवान् जानेको उद्यत हुए तो हरिपालजीने कहा—प्रभो! यदि आपने सन्त-सेवासे सन्तुष्ट होकर मुझे दर्शन दिये हैं, तो इसकी प्रेरणा तो मुझे मेरी पत्नीने दी है, अतः कृपा करके उसे भी दर्शन दें। भगवान् भक्त हरिपालके भावको जानकर बहुत प्रसन्न हुए और घर चलकर दर्शन देनेकी स्वीकृति दे दी। फिर क्या था, हरिपालजी आनन्दसे नाच उठे। उन्होंने कन्धेपर एक ओर भगवान्‌को और एक ओर माता रुक्मिणीको बैठाया और घर लाकर सिंहासनपर बैठाकर उनकी सेवा-पूजा की। तत्पश्चात् सन्तोंका वृहद्भण्डारा हुआ। हरिपालजीकी पत्नी जब सन्तोंके लिये भोजन बनाने लगीं तो श्रीरुक्मिणीजीने भी साग्रह उसमें हाथ बँटाया, इसी प्रकार श्रीहरिपालजी जब परोसने लगे तो भगवान् भी उनके साथ-साथ जुट गये। सन्तोंने भक्त और भगवान्‌की जय-जयकार की और आनन्दपूर्वक भण्डारा सम्पन्न हुआ।

इस प्रकार श्रीभगवान् अपने भक्तोंसे उसी प्रकार स्नेह करते हैं, जैसे गोमाता अपने बछड़ेसे करती हैं, जैसे पयपान करते समय वत्स स्तनोंपर प्रहार करता है तो भी गोमाता उसे दूध देती हैं, वैसे ही भक्तद्वारा दिये कष्टको न ध्यान रखकर भगवान् सिर्फ उसके भावको ही देखते हैं।

***श्रीप्रियादासजी भक्त हरिपालकी इस सन्त-सेवा-निष्ठा और भगवान्‌की भक्तवत्सलताका इस प्रकार***

*वर्णन करते हैं—*

**भक्तनि के संग भगवान् ऐसे फिर्‌यो करैं जैसे बच्छ संग फिरै नेहवती गाइ है।**
**हरिपाल नाम विप्रधाम में जनम लियो कियो अनुराग साधु दई श्री लुटाइ है॥**
**केतिक हजार लै बजार के करज ख्वाए गरज न सरै कियो चोरी को उपाइ है।**
**विमुख को लेत हरिदास को न दुःख देत आये सन्त द्वार तिया संग बतराइ है॥ २३५॥**
**बैठे कृष्ण रुक्मिणी महल तहाँ शोच पर्‌यौ हर्‌यो मन साधु सेवा साहरूप कियो है।**
**पूछीं चले कहाँ? कही भक्त है हमारो एक मैं हूँ आऊँ? आओ, आये जहाँ पूछि लियो है॥**
**अजू मग चल्यौ जात बड़ो उतपात मधि कोऊ पहुँचावै देवौ लै रुपैया दियो है।**
**करो समाधान संत मैं लिवाइ जाऊँ इन्हें लाइ वन माँझ देखि बहुधन जियो है॥ २३६॥**
**देखैं जो निहार माला तिलक न सदाचार होयँगे भण्डार जो पै धन इतो लायो है।**
**लीजियै छिनाइ यह वारि कहै डारि देवौ दियौ सब डारि छला छिगुनीमें छायो है॥**
**अँगुरी मरोरि कही बड़ौ तूं कठोर अहो तोको कैसे छोड़ौं सन्त जेवैं मोको भायो है।**
**प्रगट दिखायो रूप सुन्दर अनूप वह मेरे भक्तभूप लैकैं छाती सों लगायो है॥ २३७॥**

**श्रीसाक्षीगोपालजीके भक्त**

बहुत पहलेकी बात है, गौड़ देशमें दो ब्राह्मण निवास करते थे। इन दोनोंमें एक कुल और आयु दोनोंमें बड़ा था और दूसरा नयी अवस्थावाला साधारण कुलका था। दोनों तीर्थयात्रा करनेके लिये घरसे चले। अनेक तीर्थोंका दर्शन करते हुए दोनों वृन्दावनधाममें आये। दैवयोगसे बूढ़ा ब्राह्मण बीमार हो गया। तब उस युवकने बड़े प्रेमसे खूब सेवा की। स्वस्थ हो जानेपर उसने अति प्रसन्न होकर वृद्ध ब्राह्मण श्रीगोपालजीको साक्षी बनाकर उसे अपनी कन्या देनेकी प्रतिज्ञा की, तब उस युवकने भी स्वीकार कर लिया। दोनों वृन्दावनसे चले और घूमते-घामते घरको पहुँचे। तब उस युवकने वृद्धसे कहा कि अब आप अपनी प्रतिज्ञाका पालन कीजिये और अपनी लड़कीका विवाह मेरे साथ कर दीजिये। वृद्धने अपनी स्त्री तथा कुटुम्बवालोंसे पूछा, उनकी सम्मति न पाकर अपनी प्रतिज्ञासे टल गया।

युवकने पंचायत जोड़ी। पंचोंने पूछा कि कोई स्त्री या पुरुष तुम्हारा गवाह है? उसने कहा—इन्होंने श्रीगोपालजीको साक्षी बनाया था, अतः वे ही साक्षी हैं। तब सब पंच बोले—इस सभामें आज लिखा-पढ़ी करवा लो। यदि श्रीगोपालजी आकर साक्षी देंगे तो तुम्हारे साथ बेटीका विवाह कर दिया जायगा।

तब वह युवक वृन्दावन आया और वृन्दावनवासी श्रीगोपालजीसे बोला—आप मेरे साथ गाँवको चलिये और साक्षी दीजिये, ऐसी लिखा-पढ़ी मैंने करवा ली है। उत्तरकी प्रतीक्षामें वह गोपालजीके सामने बैठा रहा, बैठे-बैठे कई पहर बीत गये। उसने अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं किया। तब भगवान् श्यामसुन्दर बोले—'प्रतिमा चलती नहीं है।' तब उसने कहा—फिर बोलती क्यों है? यदि भावमें भरकर बोल सकती है तो चल भी सकती है। भावपूर्ण उत्तर सुनकर श्रीगोपालजी साथ चलनेको तैयार हो गये और बोले—मैं तुम्हारे साथ चलूँगा, पर नित्य दो सेर उत्तम भोग मुझे अर्पण किया करना, हम दोनों उसमेंसे आधा-आधा खा लिया करेंगे। दूसरी प्रतिज्ञा यह है कि मैं तुम्हारे पीछे-पीछे अपने पैरोंके नूपुरोंको बजाता चलूँगा। उनकी ध्वनि तुम्हारे कानोंमें पड़ती रहेगी, पीछे घूमकर मत देखना। जहाँ घूमकर मुझे देखोगे बस, मैं वहीं रह जाऊँगा।

अब आगे-आगे भक्त पीछे-पीछे भगवान् वृन्दावनसे चले, जैसे ही गाँवके निकट पहुँचे, वैसे उस भक्तके मनमें आया कि जरा चलते हुए ठाकुरकी शोभा देख लूँ। घूमकर देखते ही श्रीगोपालजी खड़े हो गये और मन्द-मन्द मुसकराने लगे। भक्तने कहा—क्यों थक गये क्या? अब तो बस थोड़ी दूर चलना है। भगवान्ने

कहा—मैंने तो पहले ही कह दिया था, अब मैं यहाँसे आगे न जाऊँगा। पंचोंको यहाँ ही बुलाकर ले आओ। वह युवक विप्र गाँवमें आया और सबसे बोला कि चलकर देखो, स्वयं श्रीगोपालजी साक्षी देने पधारे हैं। यह सुनते ही सब लोग आश्चर्यचकित रह गये। गाँवके सभी लोग दौड़कर आये। पंचोंके सामने श्रीगोपालजीने श्रीमुखसे बोलकर साक्षी दी। इस प्रकार दोनों भक्तोंकी तथा अन्योंकी अभिलाषाएँ पूर्ण हो गयीं। फिर वह श्रीगोपालजीका श्रीविग्रह लौटकर वृन्दावन नहीं आया। राजाने श्रीगोपालजीके लिये प्रेमसे भोगरागका प्रबन्ध किया। अबतक वहीं (खुर्दहा) उड़ीसामें साक्षीगोपाल विराज रहे हैं।

*अपने भक्तकी साक्षी देनेके लिये भगवान्‌के वृन्दावनसे उड़ीसा आनेकी इस घटनाका श्रीप्रियादासजी महाराज अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—*

**गौड़ देश वासी उभै विप्र ताकी कथा सुनौ एक वैस वृद्ध जाति वृद्ध छोटो संग है।**
**और और ठौर फिरि आये फिरि आये बन तन भयो दुखी कीनी टहल अभंग है॥**
**रीझो बड़ो द्विज निज सुता तोको दई अहो रहो नहीं चाह मेरे लई बिनै रंग है।**
**साखी दै गोपाल अब बात प्रतिपाल करौ टरौ कुल ग्राम भाम पूछ्यो सो प्रसंग है॥ २३८॥**
**बोल्यौ छोटो विप्र छिप्र दीजियै कही जो बात तिया सुत कहैं अहो सुता याके जोग है।**
**द्विज कहै 'नाहीं कैसे करौं? मैं तो दैन कही' कही कहौ भूलि भयो विथाको प्रयोग है॥**
**भई सभा भारी पूछ्यो साखी नर नारी श्रीगोपाल बनवारी और कौन तुच्छ लोग है।**
**लेवोजू लिखाइ जोपै साखी भरैं आइ तो पै व्याहि बेटी दीजे लीजै करौ सुख भोग है॥ २३९॥**
**आयौ वृन्दावन वनवासी श्रीगोपालजू सों बोल्यौं चलौ साखी देवो लई है लिखायकै।**
**बीते कैयो याम तब बोले श्यामसुन्दरजू 'प्रतिमा न चलै' तो पै बोलै क्यों जू भायकै॥**
**लागे जब संग युग सेर भोग धरौ रंग आधे आध पावौं चलौं नूपुर बजायकै।**
**धुनि तेरे कान परै पाछैं जिनि दीठि करै करै रहौं वाही ठौर कही मैं सुनायकै॥ २४०॥**
**गये ढिग गाँव कही नेकु तौ चितावँ रहे चितए ते ठाढ़े दियो मृदु मुसकायकै।**
**ल्यावौ जू बुलाय कह्यो आय देखौ आये आप सुनतहिं चौंकि सब ग्राम आयो धायकै॥**
**बोलि कै सुनाई साष पूजी हिये अभिलाष लाख लाख भाँति रंग भर्‌यो उर भायकै।**
**आयो न सरूप फेरि विनै करि राख्यो घेरि भूप सुख ढेरि दियो अब लौं बजायकै॥ २४१॥**

## श्रीरामदासजी

भक्त रामदास द्वारकासे सात कोसकी दूरीपर डाकोर नामक गाँवमें रहते थे। 'रणछोड़' भगवान्‌के मन्दिरमें प्रति एकादशीको जागरण, कीर्तन आदि उत्सवका आयोजन होता था, उसमें वे नियमपूर्वक सम्मिलित होते थे और भगवान्‌के दर्शनसे अपने तन, मन और बुद्धिको पवित्र करते थे। भगवान् 'रणछोड़' ने एक बार उनके सामने प्रत्यक्ष प्रकट होकर कहा—'तुम वृद्ध हो चले हो, तुम्हें सात कोस आने-जानेमें जो कष्ट होता है, वह मेरे लिये नितान्त असह्य है।' भक्त रामदास तो भगवान्‌की रूप-माधुरीसे छकनेमें इतने तल्लीन हो गये कि उन्हें बाह्यज्ञान कुछ रहा ही नहीं, आने-जानेके प्रश्नने उनके मस्तिष्कको कुछ चिन्तित ही नहीं किया। भगवान्‌ने कृपापूर्वक उन्हें दर्शन दिया, इस बातको सोच-सोचकर वे प्रेम-विह्वल हो रहे थे। भगवान्‌के अन्तर्धान होते ही उनके वियोगमें प्राण छटपटा गये, अंग-अंग सिहरने लगा। अब तो उनका निश्चय और भी दृढ़ हो गया, वे समस्त सुखोंको तिलांजलि देकर दूने उत्साहसे जागरण-महोत्सवमें आने लगे। वे किसी भी मूल्यपर जागरणका आनन्द छोड़नेके लिये अपने-आपको समर्थ न पा सके।

भगवान्‌से भक्त रामदासका एकादशी-जागरणमें आना और न सहा गया, भक्तको सुख और आनन्द

देनेके लिये उन्होंने रामदाससे डाकोर चलनेका निश्चय प्रकट किया। भगवान् तो सच्ची निष्ठा और प्रेमके भूखे होते हैं। उन्होंने रामदासको गाड़ी लानेकी सम्मति दी और कहा—'मेरे विग्रहको अँकवारमें भर उसमें लिटा देना और यथाशीघ्र ही डाकोर पहुँचनेका प्रयत्न करना।' दूसरी एकादशीके जागरण-अवसरपर रामदास द्वारकामें गाड़ी ले गये, उनकी वृद्धावस्थासे किसीने उनपर सन्देह नहीं किया। द्वादशीकी रात आधी बीत चुकी थी। द्वारकावासी और मन्दिरके पुजारी तथा अन्य सेवक आदि नींदकी गहरी और मीठी लहरोंमें बह रहे थे। सारा-का-सारा वातावरण नीरव और शान्त था। रामदास अपने सौभाग्यपर फूले नहीं समाते थे, भगवान्‌के आतिथ्यका आनन्द सोच-सोचकर वे प्रतिक्षण कुछ और-से-और होते जा रहे थे। मन्दिरका पट अचानक खुल गया। वे मन्दिरमें पहुँच गये। थोड़े ही परिश्रमसे भगवान् उनकी गोदमें आ गये, भगवान्‌ने प्रसन्नतापूर्वक अपने चिन्मय मादक स्पर्शसे भक्तकी जन्म-जन्मकी तपस्या सफल कर दी। गाड़ी द्वारकासे बहुत दूर निकल गयी। रामदास झूम-झूमकर कीर्तन करते थे और भगवान् भक्तके संरक्षणमें सात कोसकी यात्रा पूरी कर रहे थे।

सबेरा होते ही लोगोंने रामदासका पीछा किया। भगवान् भास्करकी सुनहली किरणें पूर्वदिशाके अंचलमें विहार करनेवाली ही थीं कि रामदासने देखा कि कुछ लोग पीछा कर रहे हैं। उनके मस्तकपर पसीनेके कण बिखर गये, वे किसी अनहोनी और भीषण घटनासे रह-रहकर आशंकित हो उठते थे। कभी प्रभुका श्रीविग्रह प्रेमभरी दृष्टिसे देख लेते तो कभी गाड़ीको तेजीसे आगे बढ़ा देते। उन्हें पूरा-पूरा विश्वास था कि प्रभु जो कुछ भी करेंगे, उसीमें मेरा परम कल्याण है। पीछा करनेवाले थोड़ी ही दूर रह गये थे; पर भक्तने भगवान्‌को जगाना उचित नहीं समझा, उन्हें तो विश्वास था कि भगवान् गाड़ीपर लेटते ही सो गये। उन्होंने सोचा कि पीछा करनेवाले मुझसे भगवान्‌को छीन लेंगे और प्रभु नींदका सुख लेते द्वारका-मन्दिरमें प्रवेश करेंगे; इससे अधिक तो कुछ होगा नहीं। पर भगवान्‌की लीला-शक्ति तो जाग ही रही थी। भक्तभयहारी रासविहारीने कहा—'तुम मुझे सामनेकी बावलीमें छिपा दो और जब पीछा करनेवाले चले जायँ, तब गाड़ीमें रखकर डाकोर ले चलना।' रामदासने उनकी आज्ञाका पालन किया। पीछा करनेवाले पुजारी आदि आ पहुँचे, बिना कुछ पूछ-ताँछ किये ही उन्होंने रामदासको मारना आरम्भ किया। भगवान्‌की लीला-शक्तिने भक्त रामदासकी दृढ़ निष्ठा और धैर्य-परीक्षाकी महिमा प्रकट करनेके लिये दुष्टोंको अपनी मनमानी करने दी; पर उन्हें दण्डके ही माध्यमसे भक्तके शरीरका स्पर्श मिल चुका था, अतः उनका विवेक जाग उठा। गाड़ीमें भगवान्‌का श्रीविग्रह न पाकर उनके पश्चात्तापका पारावार उमड़ आया, उन्होंने महापापसे भी भीषण भक्तापराध कर डाला था। उन्होंने देखा कि बावलीका पानी किसीके खूनसे लाल हो गया है। सत्संगका प्रभाव तो मनपर था ही, भगवान्‌की लीला-शक्तिने अपना काम किया, वे प्रभुका विग्रह बावलीसे बाहर निकालकर अपने कियेपर पछताने लगे।

भगवान्‌ने दर्शन दिया, भक्त रामदास प्रभुके घायल शरीरको देखकर काँप उठे। मेरे कारण उन्हें इतना कष्ट सहना पड़ा! उनका हृदय हाहाकार कर उठा। भगवान्‌ने कहा—'मेरा भक्त मुझे मेरी आज्ञासे ले जा रहा है। तुमलोगोंने जो मेरे भक्तको मारा है, उस चोटको मैंने अपने शरीरपर ले लिया है, इसीसे मेरे शरीरसे खून बह रहा है। अब मैं तुम्हारे सम्पर्कमें नहीं रहना चाहता। मेरी दूसरी प्रतिमा, जो अमुक स्थानपर है, मन्दिरमें स्थापितकर भक्ति और प्रेमसे अपना अन्तःकरण पवित्र करो; इस महान् अपराधका यही प्रायश्चित्त है। अपनी आजीविकाके लिये मेरी इस मूर्तिके बाराबर सोना ले लो।' पुजारी लोग लोभवश राजी हो गये और बोले—'तौल दीजिये।' भगवान्‌ने रामदासको आज्ञा दी—'मेरे तौलके बराबर इन्हें सोना दे दो।' भक्त अपनी दरिद्रता और असमर्थतापर काँप उठे। उनकी स्त्रीके कानकी बाली पलड़ेमें रखी गयी, पलड़ा भारी हो गया, प्रतिमा उसकी तौलमें हलकी हो

गयी। पुजारी तथा अभक्त दुष्ट अपना-सा मुँह लेकर नौ-दो-ग्यारह हो गये। भगवान्ने भक्तकी इज्जत रख ली। भगवान् 'रणछोड़' उसी दिनसे 'आयुधछत' की उपाधिसे विभूषित हुए। अभीतक उनके घावपर पट्टी बाँधी जाती है। भक्तवर रामदासकी भक्तिकी महिमाका बखान तो भगवान् 'रणछोड़' की लीला-शक्ति ही कर सकती है। धन्य हैं भक्त रामदास!

*भक्त रामदासके प्रति भगवान्के इस अद्भुत प्रेमका श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार वर्णन किया है—*

**द्वारिका के ढिग ही डाकौर एक गाँव रहै रहैं रामदास भक्त भक्ति याको प्यारियै।**
**जागरन एकादशी करैं रनछोरजू के भयौ तन वृद्ध आज्ञा दई नहीं धारियै॥**
**बोले भरि भाय तेरौ आयबौ सह्यौ न जाय चलौं घर धाय तेरे ल्यावो गाड़ी भारियै।**
**खिरकी जु मन्दिर के पाछे तहाँ ठाढ़ी करौ भरौ अँकवारी मोकों बेग ही पधारियै॥ २४२॥**
**करी वाही भाँति आयौ जागरन गाड़ी चढ़ि जानी सब वृद्ध भयो थकी पाँव गति है।**
**द्वादशी की आधी रात लैकै चले मोद गात भूषण उतारि धरे जाकी साँची रति है॥**
**मन्दिर उघारि देखैं परो है उजारि तहाँ दौरे पाछे जानि देखि कही कौन मति है।**
**बापी पधराय हाँकि जाय सुखपाय रह्यो गह्यो चल्यो जात आनि मार्यौ घाव अति है॥ २४३॥**
**देखे चहुँ दिशि गाड़ी कहुँ पै न पाये हरि करि पछितावो कहैं भक्त कै लगाई है।**
**बोलि उठ्यो एक यहि ओर यह गयो हुतो जाय देखैं बावरी को लोहू लपटाई है॥**
**दास कों जु डारी चोट ओट लई अंग मैं ही नहीं मैं तो जाऊँ बिजै मूरति बताई है।**
**मेरी सम सोनो लेहु, कही जन तोलि देहु, मेरे कहाँ बोल्यो बारी तिया कै जताई है॥ २४४॥**
**लगे जब तौलिबे कों बारी पाछे डारि दई नई गति भई पल उठै नहीं बारी कौ।**
**तब तो खिसाने भये सबै उठि घर गये कैसैं सुख पावैं फिर्यो मत ही मुरारी कौ॥**
**घर ही विराजे आप कह्यौ भक्तिकौ प्रताप जाप करै जो पै फुरैं रूप लालप्यारी कौ।**
**बलि बन्ध नाम प्रभु बाँधे बलि भयो तब आयुधको छत सुनि आये चोट मारी कौ॥ २४५॥**

## भक्तके वश भगवान्

**जसू स्वामि के बृषभ चोरि ब्रजबासी ल्याए।**
**तैसेई दिए स्याम बरष दिन खेत जुताए॥**
**नामा ज्यों नँददास मुई इक बच्छि जिवाई।**
**अंब अल्ह कों नए प्रसिध जग गाथा गाई॥**
**बारमुखी के मुकुट को ( श्री ) रंगनाथ को सिर नयो।**
**बच्छ हरन पाछें बिदित सुनो संत अचरज भयो॥ ५४॥**

जैसे द्वापरयुगमें ब्रह्माने गोवत्स-हरण किया और सभी व्रजवासियोंने अपने घरोंमें गो-वत्स जैसे-के-तैसे देखे, उसी प्रकार कलियुगमें एक प्रसिद्ध एवं विचित्र आश्चर्य हुआ। उसे सन्तजन ध्यानपूर्वक सुनें—भक्त श्रीजसू स्वामीके बैलोंको व्रजवासी चोर चुरा लाये, तब श्यामसुन्दरने वैसे ही बैल उन्हें दिये। उनसे एक सालतक खेतोंकी जोताई हुई। श्रीनामदेवजीकी तरह श्रीनन्ददासजीने भी एक मरी हुई बछियाको जीवित किया। श्रीअल्हजीके लिये फलवान् आमके वृक्ष जिस प्रकार झुके—यह कथा संसारमें प्रसिद्ध है और अब भी गायी जाती है। एक भक्ता वेश्याके हाथसे मुकुट धारण करनेके लिये श्रीरंगनाथजीका सिर झुक गया॥ ५४॥

*श्रीजसू स्वामी, श्रीनन्ददासजी आदि इन भक्तोंके पावन चरित इस प्रकार हैं—*

## श्रीजसू स्वामीजी

गंगा और यमुनाके बीचके देशमें श्रीजसू स्वामी नामके एक भक्त रहते थे। वे प्रेमपूर्वक सदा साधु-सेवा किया करते थे और उसके लिये खेती करके अन्न पैदा कर लिया करते थे। एक बार व्रजवासी चोरोंने इनके बैल चुरा लिये, परंतु इन्हें यह बात मालूम ही नहीं हुई; क्योंकि उसी प्रकारके बैल श्रीश्यामसुन्दरने दे दिये। ये बैल पहले बैलोंकी अपेक्षा बहुत ही अच्छी प्रकार हलमें जुतकर चलते थे; क्योंकि दिव्य थे, अतः स्वामीजीको बहुत ही प्यारे लगते थे। एक वर्ष बाद एक दिन वे ही व्रजवासी आश्रमके निकट होकर निकले और बैलोंको देखकर मन-ही-मन कहने लगे कि इन्हें यहाँ कौन ले आया? उन्होंने घर जाकर देखा तो बैल वहाँ बँधे थे। वे लोग फिर आश्रममें आये तो देखते हैं कि बैल यहाँ भी बँधे हैं! ऐसे दो-चार बार चक्कर लगानेपर भी वे लोग वास्तविकताका निर्णय न कर सके। अन्तमें हारकर उन्होंने स्वामीजीसे पूछा, तब उन्हें मालूम पड़ा कि हम भी ले गये और यहाँ भी वैसे ही बैल निरन्तर काम कर रहे हैं। चोरलोग घरसे उन बैलोंको ले आये। उनके आते ही आश्रमके बैल अन्तर्धान हो गये।

उन चोरोंने श्रीजसू स्वामीका यह बड़ा भारी प्रभाव देखा कि इन्हें वैसे ही बैल देकर प्रभुने चिन्तासे बचाया। उनके मनमें स्वामीजीके प्रति प्रेमभाव हो गया। जाकर उनके चरणोंमें पड़ गये। स्वामीजीने उनके हृदयकी शुद्ध अभिलाषा देखी तो द्रवित हो गये; क्योंकि ये सहज ही दयाके सागर थे। इन सबको मन्त्र देकर अपना शिष्य बना लिया। इन्होंने भी चोरी छोड़ दी और साधुओंके मार्गपर चलने लगे। साधु-सेवाके लिये अन्न पहुँचाने लगे। दूध और दही देकर साधुओंकी सेवा करने लगे और सुखपूर्वक सेवा करके कृतार्थ हो गये।

*जसू स्वामीकी भक्ति और भगवान्‌की कृपाका श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार वर्णन किया है—*

**जसू नाम स्वामी गंगा जमुनाके मध्य रहैं गहैं साधु सेवा ताको खेती उपजावहीं।**
**चोरी गये बैल ताकी इनकौं न सुधि कछू तैसे दिये श्याम हल जुतैं मनभावहीं॥**
**आये ब्रजवासी पैंठ वृषभ निहारि कही 'इन्हें कौन ल्यायो?' घर जाय देखि आवहीं।**
**ऐसे बार दोय चारि फिरेउ न ठीक होत पूछी पुनि ल्याये आये उन्हें पै न पावहीं॥ २४६॥**
**बड़ोई प्रभाव देख्यो तैसे प्रभु बैल दिये भयो हिये भाय जाय पांयनि में परे हैं।**
**निपट अधीन दीन भाषि अभिलाष जानि दया के निधान स्वामी शिष्य लैकै करे हैं॥**
**चोरी त्यागि दई अति शुद्ध बुद्धि भई नई रीति गहि लई साधुपन्थ अनुसरे हैं।**
**अन्न पहुँचावैं दूध दही दै लड़ावैं आवैं सन्त गुण गावैं वे अनन्त सुख भरे हैं॥ २४७॥**

## श्रीनन्ददासजी वैष्णवसेवी

बरेलीके निकट हवेली नामका एक गाँव है, उसमें भगवान्‌के भक्त श्रीनन्ददासजी नामके एक ब्राह्मण निवास करते थे। ये साधु-सेवाके बड़े प्रेमी थे। इसीसे एक उसी गाँवका ब्राह्मण इनसे बड़ा भारी द्वेष रखता था। उसने एक बार एक मरी हुई बछिया लाकर श्रीनन्ददासजीके खेतमें डाल दी और इन्हें गाली देने लगा। सर्वत्र यह प्रचार करने लगा कि नन्ददासजीने अपने खेतमें चरती हुई बछियाको मार डाला है, अबतक उसके खेतमें पड़ी है। श्रीनन्ददासजीके समीप रहने एवं आने-जानेवाले साधुओंसे भी लड़ने लगा कि तुम कैसे वैष्णव हो, गायके हत्यारेके यहाँ रहते-खाते हो, जो हिन्दू होगा, वह गायको कभी भी नहीं मारेगा। यह तो मुसलमानसे भी गया-बीता बड़ा ही अभागी है। श्रीनन्ददासजीको जब यह बात मालूम हुई तो संतोंको साथ लेकर अपने खेतपर गये और उन्होंने उस बछियाको जीवित कर दिया। यह देखकर उनसे द्वेष करनेवाले सभी उनके चरणोंमें आ पड़े। श्रीनन्ददासजीने शरणागतोंको भक्तिभाव देकर कृतार्थ किया। उन सभीकी बुद्धि साधु-सेवा और भगवद्भजनमें लग गयी।

*इस घटनाका श्रीप्रियादासजी महाराज अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—*

**निकट बरेली गांव तामैं सो हबेली रहैं नन्ददास विप्र भक्त साधु सेवा रागी है।**
**करैं द्विज द्वेष तासों मुई एक बछिया लै डारि दई खेत माँझ गारी जक लागी है॥**
**हत्या कौ प्रसंग करैं सन्त जनहूं सों लरैं हिन्दू सो न मारै यह बड़ोई अभागी है।**
**खेत पर जाय वाहि लियो है जिवाय देखि द्वेषी परे पांय भक्ति भाय मति पागी है॥ २४८॥**

### श्रीअल्हजी

श्रीअल्हजी महाराज परम वैष्णव सन्त श्रीअनन्तानन्दजी महाराजके कृपापात्र शिष्य थे। तीर्थयात्रा और भगवद्भक्तिके प्रचारार्थ आप प्रायः देश-देशान्तरमें भ्रमण किया करते थे। एक बार विचरण करते हुए आप ऐसे राज्यमें पहुँच गये, जहाँका राजा महानास्तिक और भगवद्विमुख था। सन्तों और वैष्णवोंके प्रति उसके मनमें अकारण ही द्वेष था। यदि कोई सन्त भूले-भटके उसके राज्यमें चले जाते तो वह उन्हें गुलेलसे मारता। वह दुष्ट राजा सन्तोंके तिलकको लक्ष्य करके गुलेल चलाता था, जिससे कितने ही सन्तोंके सिर और नेत्र फूट गये थे। यथा राजा तथा प्रजा। राजासे पहले उसके नगरके लोग ही किसी सन्तको देखकर उसको भाँति-भाँतिसे तिरस्कृत करते, फिर भगा देते। जब श्रीअल्हजी उस राज्यमें जाने लगे तो बहुतसे लोगोंने उनसे उस राजाकी दुष्टताका वर्णन करके वहाँ जानेसे मना किया। सन्त श्रीअल्हजीने कहा—भाइयो! मैंने जीवनमें सन्त तो बहुत देखे हैं, परंतु नास्तिक कोई नहीं देखा। आज मेरे मनमें नास्तिकको देखनेका कौतूहल हो रहा है, अतः मैं वहाँ अवश्य जाऊँगा। आप लोग किसी प्रकारकी चिन्ता न करें, मंगलमय भगवान् सब मंगल ही करेंगे।

यह कहकर श्रीअल्हजी उस राज्यमें चले गये और सुन्दर स्थान देखकर राजाके उद्यानमें ही जाकर रुक गये। उद्यानमें आमके वृक्ष थे और उनपर सुन्दर पके हुए फल सुशोभित हो रहे थे। श्रीअल्हजीने वही आसन लगाया और श्रीभगवान्‌की सेवा-पूजा करनेका निश्चय किया। एक माली दिखा तो भगवान्‌को भोग लगानेके लिये उससे आमके पके फल माँगे। प्रथम तो मालीने इन्हें बहुत फटकारा कि बिना अनुमतिके राजकीय उद्यानमें कैसे चले आये? पर इनका दृढ़ निश्चय देखकर कहा कि यदि बिना लाठी-डण्डा या पत्थर चलाये आम ले सको तो ले लो। वस्तुतः वह इस प्रकार कहकर इनका तिरस्कार ही कर रहा था, परंतु श्रीअल्हजीने उसके कथनको तनिक भी अन्यथा नहीं लिया, उन्होंने तो इस प्रकारके भूले-भटकोंको मार्ग दिखानेका व्रत ही ले रखा था।

श्रीअल्हजी महाराज सिद्ध सन्त थे और उन सर्वसमर्थके आराधक थे, जो जड़को चेतन और चेतनको जड़ करते हैं, उन्हीं परमात्मा श्रीरघुनाथजीका ध्यान करके श्रीअल्हजीने आम्रवृक्षोंसे कहा—हे तरुवरो! तुम तो परोपकारियोंमें श्रेष्ठ गिने जाते हो, तुम अपने पल्लव-शाखा, फल-फूल आदि देकर लोकोपकार करते हो। जो तुमपर लाठी-डण्डे या पत्थरसे प्रहार करते हैं, उन्हें भी तुम मधुर फल ही देते हो, अतः आज मैं तुमसे भिक्षा माँगता हूँ, मेरे ठाकुरजीके भोगके लिये मुझे फल प्रदान करो।

ऐसा कहकर श्रीअल्हजीने जैसे ही वृक्षोंकी ओर देखा उनकी डालियाँ स्वतः झुक आयीं, आपने आवश्यकतानुसार आम तोड़ लिये और उनसे श्रीठाकुरजीका भोग लगाया। इस अद्भुत घटनाको देखकर माली तो ठगा-सा रह गया, फिर थोड़ी देर बाद जब उसे ज्ञान हुआ तो वह भागा-भागा राजाके पास गया और वहाँ सारी घटनाका वर्णन किया। सुनते ही राजा भी भागा-भागा श्रीअल्हजीके पास आया, उसे विश्वास हो गया कि ये कोई महापुरुष—सिद्ध सन्त है, चरणोंमें गिरकर वह अपने अपराधोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करने लगा। सन्तहृदय श्रीअल्हजी तो आये ही थे उसका उद्धार करने; उन्होंने कहा—राजन्! लोग व्यर्थ ही आपको नास्तिक कहते हैं, आप तो मुझे बड़े ही भक्त जान पड़ते हैं। राजाने कहा—प्रभो! मैं तो सचमुच बहुत पापी हूँ, यह तो आपके दर्शनका ही प्रभाव है कि मेरे-जैसे भगवद्विमुखके हृदयमें भक्तिका संचार

हो गया। कृपा करके मेरा उद्धार कीजिये। श्रीअल्हजीने कहा—'राजन्! भक्तिभावका ही सावधान होकर आश्रय लीजिये।' श्रीअल्हजीने उस राजा और राज्यको अपने सदुपदेशोंसे परम धार्मिक बना दिया। इस प्रकार प्रभुकृपासे सन्तजन इस कलियुगमें भी अद्भुत कर्म करते हैं।

***श्रीअल्हजीके इस चरितका श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—***

**चले जात अल्ह मग लाग बाग दीठि परयो करि अनुराग हरि सेवा विसतारियै।**
**पकि रहे आम मांगे माली पास भोग लिये कह्यो लीजै कही झुकि आईं सब डारियै॥**
**चल्यौ दौरि राजा जहाँ जायकै सुनाई बात गात भई प्रीति आषुतट पांय धारियै।**
**आवत ही लोटि गयो मैं तो जू सनाथ भयो, देवो लै प्रसाद भक्ति भाव ही सँभारियै॥ २४९॥**

## श्रीवारमुखीजी

गणिका थीं श्रीवारमुखीजी। लोक और वेद—दोनोंसे गर्हित था उनका कर्म; परंतु प्रभुकी कृपा कब किसपर हो जाय, कब किसके किस जन्मका पुण्य उदय हो जाय—यह पता नहीं होता। श्रीवारमुखीजी भी यह नहीं जानती थीं कि 'आज मेरे किस सौभाग्यका उदय हुआ है! एक वेश्याके द्वारपर साधु! कहीं ऐसा न हो कि मेरा परिचय पाकर महात्मा लोग चले जायँ।' दक्षिण देशकी उस गणिकाने नगरसे लौटकर देखा कि उसके द्वारके सम्मुख पीपलके पेड़के नीचेके चबूतरेपर वैष्णव सन्तोंने आसन कर रखा है। धूनी जल रही है। छत्ता गाड़कर उसके नीचे ठाकुरजीका सिंहासन लगा दिया गया है। साधुओंमें कोई चन्दन घिस रहा है, कोई पार्षद (पूजापात्र) मल रहा है और कोई तिलक कर रहा है। वेश्याने सोचा कि 'मैं इनका आतिथ्य करनेयोग्य तो हूँ नहीं, मेरा अन्न भला साधु कैसे ग्रहण करेंगे!' वह भीतर गयी। एक चाँदीकी थालीमें जितनी स्वर्ण-मुद्राएँ आ सकीं, उसने लाकर ठाकुरजीके सामने थोड़ी दूरीपर रख दिया।

'मैया! तू कौन है?' एक साधुने पूछा। इतना द्रव्य श्रद्धासे अनजान स्त्रीका निवेदन करना कम आश्चर्यजनक नहीं था।

'आप और चाहे जो पूछें, परंतु मेरा परिचय न पूछें!' उसने मुख नीचा करके प्रार्थना की।

'साधुसे भयकी क्या बात है?' महात्माने आग्रह किया।

'मैं महानीच हूँ। मेरे पापोंका कोई हिसाब नहीं। सम्भवत: मुझे देखकर नरकके जीव भी घृणा करेंगे। पाप ही मेरा जीवन है। शरीरको बेचकर मेरी जीविका चलती है।' रोते हुए उसने कहा।

'ले जा अपना थाल! साधु वेश्याओंका धन नहीं लिया करते!' एक साधुने झिड़क दिया।

'महाराज! मेरी-जैसी महापापिनीसे नरक या नारकीय जीवतक घृणा कर सकते हैं, किंतु गंगा, गोदावरी आदि पुण्यतोया नदियाँ तो घृणा नहीं करतीं। मैं नित्य गोदामाताकी पवित्र धारामें डुबकी लगाती हूँ। उन्होंने कभी मेरा तिरस्कार नहीं किया। सुना है कि साधु गंगा-गोदावरी आदि नदियोंसे भी अधिक पवित्र होते हैं। सन्त तो सुरसरिको भी पवित्र कर देते हैं। आप यदि मुझसे घृणा करेंगे तो फिर कौन पतितोंका उद्धार करेगा! मेरा दुर्भाग्य!' उसने अत्यन्त दु:खित होकर थाल उठा लिया।

'मैया! श्रीरंगनाथके लिये मुकुट बनवा दे,' मण्डलीमें जो सबसे वृद्ध थे, उन्होंने कहा। गणिकाकी भक्तिभरी वाणीने उन्हें द्रवित कर दिया था।

'जिसकी भेंट सन्त नहीं लेते, उसकी रंगनाथ तो क्या लेंगे! साधु तो भगवान्‌से भी अधिक दयालु होते हैं। वे तो उन सर्वेशसे भी अधिक पतितोंपर कृपा करते हैं। जिसका तिरस्कार साधुओंने ही कर दिया, उसके लिये भगवान्‌से क्या आशा रही।' वह रोती हुई जा रही थी।

'मैया! उपहार न लेना होता तो मुकुट बनानेका आदेश न देता! वृद्ध साधुने स्पष्ट समझाया। वह

द्रव्य साधुओंने स्वीकार कर लिया। तीन लाख रुपयोंसे वेश्याने एक सुन्दर रत्नजटित मुकुट बनवाया और उसे लेकर वह श्रीरंग पहुँची।'

'मैं अपवित्र हूँ, मेरा मन्दिरमें जाना उचित नहीं! आप मुकुट भगवान्‌को चढ़ा दें!' भला, श्रीरंगनाथके पुजारीजी यह वेश्याका आग्रह कैसे मान लें! उन्हें तो स्वप्नमें भगवान्‌ने स्पष्ट आदेश दिया था कि वे उसी वेश्याके हाथसे मुकुट धारण करेंगे। विवश होकर वह मुकुट लेकर गयी। दोनों हाथोंमें मुकुट उठाकर नृत्य करते हुए वह आगे बढ़ी। आज भगवान्‌के शृंगारमें मस्तकपर मुकुट नहीं था। सिंहासन ऊँचा था। मूर्तिके मस्तकतक वेश्याका हाथ पहुँच नहीं सकता था।

उसने मुकुट उठाया। सबने देखा कि श्रीरंगनाथके श्रीविग्रहने मस्तक झुका दिया है। वेश्याने मुकुट उठाकर रख दिया। मूर्ति पूर्ववत् हो गयी। मन्दिरके प्रांगणमें ही, भगवान्‌की इस असीम कृपाका अनुभव करके उनके दर्शन करते हुए ही उसने शरीर छोड़ दिया।

***भगवान्‌की भक्तवत्सलताकी इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—***

**वेश्याको प्रसंग सुनौ अति रसरंग भरयो भरयो घर धन अहो ऐपै कौन काम कौ।**
**चले मग जात जन ठौर स्वच्छ आई मन छाई भूमि आसन सो लोभ नहीं दाम कौ॥**
**निकसी झमकि द्वार हंससे निहारि सब कौन भाग जागे भेद नहीं मेरे नाम कौ।**
**मुहरनि पात्र भरि लै महन्त आगे धरयो ढरयो दृग नीर कही भोग करौ श्याम कौ॥ २५०॥**
**पूछी तुम कौन काके भौनमें जनम लियो ? कियो सुनि मौन महाचिन्ता चित्त धरी है।**
**'खोलिकै निसंक कहौ संका जिनि मानौ मन' कही 'वारमुखी' ऐपै पांय आय परी है॥**
**भरो है भण्डार धन करो अंगीकार अजू करिये विचार जो पै तो पै यह मरी है।**
**एक है उपाय हाथ रंगनाथजू को अहौ कीजिये मुकुट जामें जाति मति हरी है॥ २५१॥**
**विप्र हू न छूए जाको रंगनाथ कैसे लेत ? देत हम हाथ तो कौ रहें इह कीजियै।**
**कियोई बनाय सब घर कौ लगाय धन बनि ठनि चली थार मधि धरि लीजियै॥**
**सन्त आज्ञा पाइकै निसंक गई मन्दिरमें फिरी यौं ससंक धिक् तिया धर्म भीजियै।**
**बोले आप याकों ल्याय आप पहिराय जाय, दियौ पहिराय नयौ सीस मति रीझियै॥ २५२॥**

## ब्राह्मण-दम्पतीका भगवद्विश्वास

**बीच दिए रघुनाथ भक्त सँग ठगिया लागे।**
**निर्जन बन में जाय दुष्ट कर्म कियो अभागे॥**
**बीच दियो सो कहाँ राम कहि नारि पुकारी।**
**आए सारँगपानि सोक सागर ते तारी॥**
**दुष्ट किए निर्जीव सब दास प्रान संग्या धरी।**
**और जुगन तें कमलनैन कलिजुग बहुत कृपा करी॥ ५५॥**

सत्ययुग, त्रेता और द्वापर—इन तीनों युगोंकी अपेक्षा कलियुगमें कमलनयन भगवान् श्रीरामने अपने भक्तोंपर विशेष कृपा की है, यह बात इस प्रकारके भक्त-चरित्रोंसे सिद्ध होती है जैसे कि एक ब्राह्मण-भक्त अपनी पत्नीके साथ ससुरालसे आ रहे थे। भक्त-दम्पतीके साथ ठग लग गये। इन्हें वनके मार्गसे ले

चलते समय ठगोंने उन्हें विश्वास दिलानेके लिये कहा कि हमारे-तुम्हारे बीचमें श्रीरघुनाथजी हैं, यदि कोई विश्वासघात करेगा तो वे रक्षा करेंगे। निर्जन वनमें जाकर उन दुष्टोंने भक्त ब्राह्मणको मार डाला। भक्ता ब्राह्मणीने रोते हुए पुकारा—'जिन श्रीरामको बीचमें रखा गया था, वे कहाँ हैं, वे ही श्रीराम! रक्षा करें।' भक्ताकी दीन-पुकार सुनते ही शार्ङ्गधनुषधारी श्रीराम आ गये और शोक-सागरमें डूबती हुई भक्ताको उन्होंने उबार लिया। उन्होंने सभी दुष्टोंको श्वासहीन—मृतक कर दिया और दासको जीवित कर लिया। इस प्रकारकी कृपा भगवान् इस कलियुगमें करते हैं॥ ५५॥

*श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—*

**विप्र हरिभक्त करि गौनो चल्यो तिया संग जाके दूनौ रंग ताकी बात लै जनाइयै।**
**मग ठग मिले द्विज पूछैं अहो 'कहाँ जात?' जहाँ तुम जात यामैं मन न पत्याइयै॥**
**पन्थ को छुटाय चहैं वन में लिवाय जायं कहैं अति सूधो पैड़ो उर में न आइयै।**
**बोले 'बीच राम' तऊ हिये नेकु धकधकी कहै वह बाम 'श्याम नाम' कहाँ पाइयै॥ २५३॥**
**चले लागि संग अब रंग कै कुरंग करौ तिया पर रीझे भक्ति साँची इन जानी है।**
**गये वन मध्य ठग लोभ लगि मार्‍यो विप्र छिप्र लैकै चले वधू अति बिलखानी है॥**
**देखै फिरि फिरि पाछैं, कहैं 'कहा देखै? मार्‍यो' तब तो उचार्‍यो देखौं वाही बीच प्रानी है।**
**आये राम प्यारे सब दुष्ट मारि डारे साधु प्रान दै उबारे हित रीति यौं बखानी है॥ २५४॥**

## वेषनिष्ठ एक राजा

**तिलक दाम धरि कोइ ताहि गुरु गोबिंद जानै।**
**षटदरसनी अभाव सर्बथा घट करि मानै॥**
**भाँड़ भक्त को भेष हाँसि हित भँड़ कुट ल्याए।**
**नरपति कै दृढ़ नेम ताहि ये पाँव धुवाए॥**
**भाँड़ भेष गाढ़ो गह्यो दरस परस उपजी भगति।**
**एक भूप भागौत की कथा सुनत हरि होय रति॥ ५६॥**

एक राजा परम भागवत था, उसकी कथा सुनते ही भगवान्में भक्ति होती है। वह ऐसा वेषनिष्ठ था कि जो कोई भी तिलक और कण्ठी धारण करता, उसे वह गुरुदेव और भगवान्के समान मानता था। कोई कैसा भी षट् दर्शनका ज्ञाता क्यों न हो, पर राजा उसे वैष्णव-भक्तसे छोटा ही मानता था। एक बार भाँड़ोंने हँसी करनेके लिये तिलक-कण्ठी पहनकर भक्तोंका-सा वेष बनाया। जमात लेकर राजाके यहाँ पहुँचे। राजाका यह पक्का नियम था कि वैष्णवोंका भगवान्के समान पूजन करना। उसीके अनुसार राजाने भाँड़ोंके चरण धोये। उन्होंने भी सहर्ष धुलवाया। राजाकी भक्तिका दर्शन और स्पर्श पाकर इन सबके हृदयमें भक्ति उत्पन्न हो गयी। भाँड़ोंने दृढ़तापूर्वक वैष्णव-वेषको धारण कर लिया, फिर कभी उसका त्याग नहीं किया। मनोरंजनमें भक्तके दर्शन-स्पर्शका यह फल प्राप्त हुआ॥ ५६॥

*श्रीप्रियादासजीने राजाकी संतवेषनिष्ठाका इस प्रकार वर्णन किया है—*

**राजा भक्तराज डोम भाँड़ कौ न काज होय भोय गई याको धन हरीको न दीजियै।**
**आए भेष धारि लै पुजाय नाचैं दैकै तारि नृपति निहारि कही यों निहाल कीजियै॥**
**भोजन कराये भरि मुहरनि थार ल्याये आगे धरि विनय करी अजू यह लीजियै।**
**भई भक्ति रासि बोले आवै बास भावै नाहिं बाहिं गहि रहै कैसै चले मति भीजियै॥ २५५॥**

## अन्तर्निष्ठ नरपाल

**हरि सुमिरन हरि ध्यान आन काहू न जनावै।**
**अलग न इहि बिधि रहै अंगना मरम न पावै॥**
**निद्रा बस सों भूप बदन तें नाम उचार्‌यो।**
**रानी पति पर रीझि बहुत बसु तापर वार्‌यो॥**
**रिषिराज सोचि कह्यो नारि सों आज भक्ति मेरी कजी।**
**अंतरनिष्ठ नृपाल इक परम धरम नाहिन धुजी॥५७॥**

एक राजा अन्तर्निष्ठ (गुप्त भक्त) था। उसने हरि-भक्तिकी ध्वजा नहीं लगा रखी थी अर्थात् वह बाह्य चिह्न कण्ठी-तिलक आदिको नहीं धारण करता था। भगवान्‌का स्मरण और ध्यान निरन्तर करता था, पर किसीको जनाता न था। कोई नहीं जानता था कि राजा भक्त है। वह अपनी पत्नी-परिवार या कर्मचारियोंसे अलग नहीं रहता था, किंतु नामजप-ध्यान आदि इस प्रकार करता था कि उसकी स्त्री भी नहीं जान पाती थी। राजा भगवान्‌से अलग नहीं रहता था। लेकिन रानी राजाको अभक्त जानकर मन-ही-मन दुखी रहती थी। एक दिन शयन करते हुए राजाने मुखसे अचानक ही भगवान्‌के नामका उच्चारण किया। इससे राजाको परम भक्त मानकर रानी बहुत प्रसन्न हुई। बहुत-सा धन राजापर न्यौछावर कर दिया। राजाने रानीसे इस प्रसन्नताका कारण पूछा तो रानीने बताया—आपने सोते समय भगवान्‌का नाम लिया, इसीसे प्रसन्नता हुई। इसपर उस राजर्षिने शोक करते हुए अपनी रानीसे कहा—आज मेरी भक्ति प्रकट हो गयी, अत: लुट गयी। अब मैं जीवित नहीं रह सकता हूँ (राजाने विचारा कि भगवन्नाम ही हमारे प्राण और जीवन थे, वे जब मुखसे निकल गये, मेरी भक्ति प्रकट हो गयी तो अब रह ही क्या गया। यह सोचकर नामके वियोगमें उन्होंने प्राण त्याग दिये)। पतिरूपी भगवान्‌के महाविरहमें रानीने भी प्राण त्याग दिये॥ ५७॥

***श्रीप्रियादासजी राजाकी इस गुप्त भक्तिका वर्णन इस प्रकार करते हैं—***

**तिया हरि भक्त कहै 'पति पै न भक्त पायों' रहै मुरझायो मन सोच बढ़्यो भारी है।**
**मरम न जान्यो निशि सोवत पिछान्यो भाव विरह प्रभाव नाम निकस्यो बिहारी है॥**
**सुनत ही रानी प्रेम सागर समानी भोर सम्पति लुटाई मानो नृपति जियारी है।**
**देखि उत्साह भूप पूछ्यो सो निबाह कह्यो रह्यो तन ठौर नाम जीव यों विचारी है॥ २५६॥**
**देखि तन त्याग पति भई और गति याकी ऐसे रतिवान मैं न भेद कछु पायो है।**
**भयो दुःख भारी सुधि बुधि सब टारी तब नेकु न बिचारी भावराशि हिये छायो है॥**
**निशि दिन ध्यान तजे विरह प्रबल प्रान भक्ति रसखान रूप कापै जात गायो है।**
**जाके यह होय सोई जानैं रस भोय सब डारै मति खोय यामैं प्रगट दिखायो है॥ २५७॥**

## गुरुनिष्ठ शिष्य

**अनुचर आग्या माँगि कह्यो कारज कों जैहौं।**
**आचारज इक बात तोहि आए तैं कहिहौं॥**
**स्वामी रह्यो समाय दास दरसन कों आयो।**
**गुरु की गिरा बिस्वास फेरि सब घर मैं ल्यायो॥**

**सिषपन साँचो करन कों ( बिभु ) सबै सुनत सोई कह्यो।**
**गुरु गदित बचन सिष सत्य अति दृढ़ प्रतीति गाढ़ो गह्यो ॥ ५८ ॥**

श्रीगुरुदेवके द्वारा कहे हुए वाक्योंको एक शिष्यने पूर्ण सत्य माना और उनमें दृढ़ विश्वास किया। गुरुदेवकी आज्ञाको दृढ़तासे स्वीकारकर जीवनभर उसका पालन किया। एक बार शिष्यने गुरुदेवसे आज्ञा माँगी, कहा कि कार्यवश मैं दूसरे गाँवको जाऊँगा। श्रीगुरुजीने कहा—जाओ, एक बात तुमसे तब कहूँगा, जब लौटकर आओगे। शिष्य बाहर चला गया, श्रीगुरुदेव भगवान्के धामको चले गये। लौटकर शिष्य जब दर्शन करने आया। उस समय लोग अन्तिम संस्कार करनेके लिये गुरुदेवके शरीरको ले जा रहे थे। शिष्यको गुरुदेवजीकी वाणीमें विश्वास था। इसलिये शवको लौटाकर फिर घरमें ले आये। शिष्यने प्रार्थना की—प्रभो! आपने कहा था कि लौटकर आओगे तो एक बात कहूँगा। अब कृपा करके वही बात कहिये। अपने विश्वासी शिष्यकी बातको सत्य करनेके लिये गुरुदेव पुनः जीवित हो गये और सर्वसमर्थ गुरुदेवने सबके सामने शिष्यसे कहा कि सन्तोंकी मेरे समान ही सेवा किया करो। सबोंने सुना और शिष्यने इस आज्ञाका भलीभाँति पालन किया (गुरु महाराज एक वर्षतक रहकर शिष्यकी सन्त-सेवा देखते रहे, फिर शरीर त्यागकर भगवान्के धामको गये) ॥ ५८ ॥

*श्रीप्रियादासजी शिष्यकी श्रद्धाका इस प्रकार वर्णन करते हैं—*

**बड़ो गुरुनिष्ठ कछु घटी साधु इष्ट जाने स्वामी सन्त पूज्य मानैं कैसे समझाइयै।**
**नितही विचारे पुनि टारे पै उचारे नाहिं चल्यो जब रामती कों कही फिरि आइयै॥**
**सपथ दिवाई न जराइबें को दियो तन ल्यायो यों फिराइ वहे बात जू जनाइयै।**
**साँचो भाव जानि प्रान आये सो बखान कियो 'करो भक्तसेवा' करी वर्षलौं दिखाइयै ॥ २५८ ॥**

## श्रीरैदासजी

**सदाचार श्रुति सास्त्र बचन अबिरुद्ध उचार्‌यो।**
**नीर खीर बिबरन्न परम हंसनि उर धार्‌यो॥**
**भगवत कृपा प्रसाद परम गति इहि तन पाई।**
**राजसिंहासन बैठि ग्याति परतीति दिखाई॥**
**बरनाश्रम अभिमान तजि पद रज बंदहिं जासु की।**
**संदेह ग्रंथि खंडन निपुन बानि बिमल रैदास की॥ ५९ ॥**

सन्तशिरोमणि श्रीरैदासजीकी निर्मल वाणी सन्देहकी ग्रन्थियोंको खोलनेमें पूर्ण समर्थ है। श्रीरैदासजीने जो भी कहा है, वह सदाचार (स्मृति) वेद-शास्त्रोंके अनुकूल ही है। उन्होंने नीर-क्षीर अर्थात् सत् और असत्का विवरण करनेवाला परमहंसोंका भाव अपने हृदयमें धारण किया तथा सार-असारका निर्णय करनेवाली उनकी वाणीको परमहंसोंने अपने हृदयमें धारण किया। आपने अपने इसी मर्त्य शरीरसे भगवान्की कृपा और परम श्रेष्ठ गति प्राप्त की। राजसिंहासनपर बैठकर अपने शरीरमें सोनेका यज्ञोपवीत दिखाकर अपने पूर्वजन्मकी ब्राह्मण जातिका विश्वास लोगोंको दिलाया। महान् पुरुषोंने अपने ऊँचे वर्ण एवं आश्रमके अभिमानको छोड़कर जिनकी चरण-धूलिकी वन्दना की, उन श्रीरैदासजीकी वाणी शंकाओंको खण्डन करनेमें अति ही चतुर है ॥ ५९ ॥

*सन्त श्रीरैदासजीका संक्षेपमें परिचय इस प्रकार है—*

### ( क ) श्रीरैदासजीके जन्मकी कथा

आचार्य श्रीस्वामी रामानन्दजीका एक ब्रह्मचारी शिष्य था। वह नित्य आटेकी चुटकी ब्राह्मणोंके यहाँसे

माँगकर लाता था। उसीसे ठाकुरजीका भोग लगता था और साधु-सेवा होती थी। मार्गमें एक बनियेकी दूकान थी। वह बनिया प्राय: नित्य ही ब्रह्मचारीजीसे कहता था कि आप मेरा सीधा-सामान भी स्वीकार करो। इस प्रकार उसने दस-बीस बार कहा, परंतु नियमके विरुद्ध उस बनियेसे सामान लेना ब्रह्मचारीजीने स्वीकार नहीं किया। एक दिन बड़े जोरकी वर्षा हो रही थी, चुटकी माँगकर लाना सम्भव नहीं था। अत: उस बनियेसे ब्रह्मचारीजीने जो भी आवश्यक था सीधा-सामान ले लिया। जब श्रीआचार्यने ठाकुरजीको भोग लगाया तो उस दिन प्रभु भोग आरोगते हुए ध्यानमें नहीं आये। तब उन्होंने ब्रह्मचारीसे पूछा—कहो, आज भिक्षा कहाँ-कहाँसे लाये हो? उसने उत्तर दिया—एक बनियेसे। श्रीस्वामीजीने कहा—जाओ, पता लगाओ। पूछनेसे मालूम पड़ा कि बनियेने किसी निम्न वर्णकी प्रेरणासे अन्न दिया है। वस्तुत: काशीमें रघु नामक एक चर्मकार था। पूछनेपर किसी सज्जनने उससे कहा था कि तुम्हारी भिक्षा स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी स्वीकार कर लें तो निश्चय ही तुम्हें सन्तान-लाभ हो सकता है। अत: विश्वासपूर्वक पुत्रकी कामनासे उसने ही बनियाके माध्यमसे स्वामीजीके पासतक भिक्षा पहुँचायी थी। वस्तुस्थिति ज्ञात होनेपर अपने ब्रह्मचारी शिष्यको श्रीस्वामीजीने बड़ा भारी शाप दिया कि तूने मेरी बात नहीं मानी, निम्नवर्णकी भिक्षा ली, अत: जाकर उसी घरमें जन्म लो। वही दूसरे जन्ममें श्रीरैदास भक्त हुए।

माता अपने बालक रैदासको दूध पिलाना चाहती थी, पर बालक रैदास दूध पीनेकी कौन कहे, इन्हें माताका छूना भी अच्छा नहीं लगता था; क्योंकि गुरुदेवकी उत्तम सेवाके प्रतापसे इन्हें पूर्वजन्मकी सब बातें याद थीं। इसी समय श्रीस्वामीजीके लिये आकाशवाणी हुई कि आपके शापसे आपके शिष्यका जन्म रघु चमारके घरमें हुआ है और वह दूध नहीं पी रहा है, उसपर कृपा कीजिये। दयावश श्रीस्वामीजी शीघ्र ही स्वयं चलकर वहाँ आये। बालकके दूध न पीनेसे पिता-माता बड़े दुखी थे। स्वामीजीको देखते ही वे दौड़कर इनके चरणोंमें लिपट गये और प्रार्थना करने लगे कि कोई उपाय करके बालकको बचाइये। तब स्वामीजीने बालकको दीक्षा देकर शिष्य बनाया और दूध पीनेकी आज्ञा दी। बालकके सब पाप दूर हो गये और वह दूध पीने लगा। श्रीरैदासजी आचार्यको ईश्वरके समान जान-मानकर मनमें पछताने लगे कि मैं बिलकुल ही अज्ञानी और अपराधी था, पर स्वामीजीने मेरे अपराधोंको भुलाकर इतनी कृपा की कि स्वयं पधारे।

***श्रीरैदासजीके जन्म-सम्बन्धी इस घटनाका वर्णन श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—***

**रामानन्द जू कौ शिष्य ब्रह्मचारी रहे एक गहे वृत्ति चूटकीकी कहे तासों बानियों।**
**करो अंगीकार सीधो कहि दस बीस बार बरषे प्रबल धार तामें वापि आनियों॥**
**भोगको लगावै प्रभु ध्यान नहिं आवै अरे कैसे करि ल्यावै जाइ पूछि नीच मानियों।**
**दियो शाप भारी बात सुनी न हमारी घटि कुलमें उतारी देह सोई याकों जानियों॥ २५९॥**
**माता दूध प्यावे याकों छुयोऊ न भावे सुधि आवे सब पाछिली सुसेवाको प्रताप है।**
**भई नभ बानी रामानन्द मन जानी बड़ो दण्ड दियो मानीं बेगि आये चल्यो आप है॥**
**दुखी पिता माता देखि धाय लपटाय पाय कीजिये उपाय कियो शिष्य गयो पाप है।**
**स्तन पान कियो जियो लियो उन ईस जानि निपट अजानि फेरि भूले भयो ताप है॥ २६०॥**

## (ख) रैदासजीका सन्तप्रेम और भगवान्से वार्तालाप

श्रीरैदासजी महान् सन्त थे, ये भगवान्के भक्तोंसे बड़ा प्रेम करते थे। सन्त-सेवामें धनका सदुपयोग करते थे। इनका यह आचरण पिताजीको अच्छा न लगा। अत: उन्होंने इन्हें अलग कर दिया और घरके पीछेकी जमीन रहनेके लिये दे दी। यद्यपि घरमें बहुत-सा धन-माल था, पर उसमेंसे पिताजीने अलग करते समय एक कण भी नहीं दिया। इससे रैदासजी और उनकी स्त्रीको बड़ा सुख हुआ; इन लोगोंको भगवान्पर

पूर्ण भरोसा था। रैदासजी जूतियोंको गाँठते थे, पक्का चमड़ा लाकर जूते बनाते थे। साधु-सन्तोंको पहनाते थे। अपनी इस सेवाको प्रकट न करके गुप्त ही रखते थे। आपने एक छप्पर डालकर उसमें भगवान्‌की सेवाके योग्य स्थान बनाया। उसीमें सन्तजन भी निवास करते थे। पर स्वयं आप खुलेमें ही रहते थे। मजदूरीसे प्राप्त धनको आप अतिथियोंमें बाँटकर खाते थे। ऐसी दैनिक जीवनचर्यासे आप रहते थे।

एक दिन स्वयं भगवान् भक्तका वेष बनाकर श्रीरैदासजीके यहाँ पधारे और श्रीरैदासजीको पारसमणि देते हुए कहा कि 'इसे सँभालकर रखना।' श्रीरैदासजीने कहा—मेरे धन तो श्रीरामजी हैं। इस पत्थरसे मेरा काम नहीं चलेगा। मैं धन-सम्पत्तिको नहीं चाहता हूँ। मैं तो यह चाहता हूँ कि सन्त-भगवन्तकी सेवामें अपना यह शरीर भी न्यौछावर कर दूँ। सन्त-भगवान्‌ने पारसका प्रत्यक्ष प्रभाव दिखानेके लिये उसे लोहेकी राँपीसे छुवा दिया, वह सोनेकी हो गयी। फिर पारस देकर श्रीरैदासजीसे बोले कि आप कृपा करके इसे रख लो और आवश्यकता पड़नेपर इसे निकाल लेना। तब श्रीरैदासजीने कहा—यदि आप नहीं मानते हो तो इसे ठाकुरजीके छप्परमें रख दो, जब इच्छा हो, तब निकाल ले जाना।

साधुवेषधारी भगवान् श्यामसुन्दर तेरह मास बीत जानेके बाद फिर श्रीरैदासजीके यहाँ आये और बड़े प्रेमसे बोले—कहिये, रैदासजी! पारसका प्रयोग करके क्या सेवा की? श्रीरैदासजी बोले—जहाँ आप रख गये थे, वहाँ ही रखा होगा। आप उसे ले लीजिये। श्रीरैदासजीकी ऐसी बात सुनकर पारसको लेकर वे चले गये। अब इसके बाद भगवान्‌ने जो नयी लीला रची, उसे सुनिये—प्रातःकाल जब श्रीरैदासजी ठाकुर-सेवा करने जाते तो नित्य पाँच मुहरें वहाँ मिलतीं। बिच्छूकी तरह उन्हें चिमटेसे पकड़कर रैदासजी नित्य गंगामें डाल आते। अब तो रैदासजीको ठाकुरजीकी सेवासे भी भय लगने लगा। तब भगवान्‌ने स्वप्नमें श्रीरैदासजीसे कहा—तुम अपना हठ छोड़ दो और मैं जैसा चाहता हूँ, वैसा करो।

अन्तमें श्रीरैदासजीने भगवान्‌की बात (आज्ञा) मान ली। नित्य प्राप्त मुहरोंसे नयी जगह लेकर विशाल सन्त-निवास और भगवान्‌का भव्य मन्दिर बनवाया। उसमें दिन-रात सेवा और भजन-कीर्तनसे ऐसा लगता था कि श्रीभक्तिदेवी यहीं रम गयी हैं।

उसी समय उरप्रेरक रघुवंशविभूषणने ब्राह्मणोंके हृदयोंमें प्रेरणा की कि 'रैदासकी सेवाका विरोध करो, उसे बन्द करा दो।' तब बहुत-से ब्राह्मणोंने एकत्र होकर राजाके आगे भरी सभामें श्रीरैदासजीको गालियाँ देते हुए पुकार की, उनपर आरोप लगाया कि वे शूद्र होकर पूजा करते हैं। यह अन्याय है, इसे रोका जाय, अन्यथा आपका राज्य नष्ट हो जायगा। तब राजाने श्रीरैदासजीको बुलवाया तथा उनका चमत्कार देखकर न्याय किया और श्रीरैदासजीको सेवाका अधिकार प्रदान किया।

***सन्त श्रीरैदासजीकी उपर्युक्त जीवनचर्याका श्रीप्रियादासजी अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—***

**बड़ेई रैदास हरि दासनि सों प्रीति करी पिता न सुहाई दई ठौर पिछवारहीं।**
**हुतो धन माल कन दियो हू न हाल तिया पति सुख जाल अहो किये जब न्यारहीं॥**
**गाठैं पगदासी कहूँ बात न प्रकासी ल्यावें खाल करैं जूती साधु सन्त को सँभारहीं।**
**डारी एक छानि कियो सेवाको सुस्थान रहें चौंड़े आप जानि बाँटि पावें यहि धारहीं॥ २६१॥**
**सहे अति कष्ट अंग हिये सुख सील रंग आए हरि प्यारे लियो भक्त भेष धारि कै।**
**कियो बहुमान खान पान सो प्रसन्न ह्वै कै दीनों कह्यो पारस है राखियो सँभारि कै॥**
**मेरे धन राम कछु पाथर न सरै काम दाम मैं न चाहौं चाहौं डारौं तन वारि कै।**
**रांपी एक सोनो कियो दियो करि कृपा राखो राखो यहु छानि मांझ लैहो जु निकारि कै॥ २६२॥**

आये फिरि श्याम मास तेरह बितीत भये प्रीति करि बोले कहो पारसकी रीति कौ।
वाही ठौर लीजै मेरो मन न पतीजै अब चाहो सोई कीजै मैं तो पावत हौं भीति कौ॥
लै कै उठि गये नये कौतुक सो सुनो पावैं सेवत मुहर पाँच नित ही प्रतीति कौ।
सेवा हू करत डर लाग्यो निसि कह्यो हरि छोड़ो अर आपनी औ राखो मेरी जीति कौ॥ २६३॥
मानि लई बात नई ठौर ले बनाय चाय सन्तनि बसाय हरि मन्दिर चिनायो है।
विविध वितान तान गनौं जो प्रमान होइ भोइ गई भक्ति पुरी जग जस गायो है॥
दरसन आवैं लोग नाना विधि राग भोग रोग भयो विप्रनि कौं तन सब छायो है।
बड़ेई खिलारी वे रहे हैं छानि डारि करी घर पै अँटारी फेरि द्विजन सिखायो है॥ २६४॥
प्रीति रस रास सों रैदास हरि सेवत हैं घरमें दुराय लोक रंजनादि टारी है।
प्रेरि दिये हृदै जाय द्विजनि पुकारि करी भरी सभा नृप आगे कह्यो मुख गारी है॥
जनकौं बुलाय समझाय न्याय प्रभु सौंपि कीनों जग जस साधु लीला मनुहारी है।
जिते प्रतिकूल मैं तो माने अनुकूल याते सन्तनि प्रभाव मनि कोठरी की तारी है॥ २६५॥

## (ग) चित्तौड़की रानीद्वारा इनका शिष्य बनना

चित्तौड़ नगरमें झाली नामकी एक रानी रहती थी। किसी गुरुसे उसने कानमें मन्त्र नहीं लिया था। वह काशी आयी और श्रीरैदासजीके सुयशको सुनकर एवं दर्शनमात्रसे सद्गुरुबुद्धि आनेपर उनकी शिष्या हो गयी। उसके साथ बहुत-से ब्राह्मण थे, यह समाचार सुनते ही द्वेषवश उनके शरीरमें आग-सी लग गयी। वे सब लोगोंकी भीड़को लेकर राजाके पास गये और कहा—रैदासको दीक्षा देनेका अधिकार नहीं है, उन्होंने अनधिकार चेष्टा की है। आप न्याय करें। तब राजाने रैदासजीको बुलवाया और भगवान्‌की मूर्तिको सिंहासनपर विराजमान कराकर कहा—'बुलानेसे भगवान् जिसके पास चले जायँगे, वही उनकी सेवाका तथा उनके मन्त्रको देनेका अधिकारी समझा जायगा।' ब्राह्मणोंने सस्वर वेदपाठ करके भगवान्‌का आवाहन किया, किंतु भगवान् उनके पास नहीं गये। पश्चात् श्रीरैदासजीने ***'पतित पावन नाम आज प्रकट कीजै'*** यह पद गाया। तब भगवान् श्रीरैदासजीकी गोदीमें आकर विराजमान हो गये।

झाली रानीके बुलानेपर श्रीरैदासजी चित्तौड़को पधारे। रानीने बड़ा भारी स्वागत किया और बहुत-सा धन तथा वस्त्र न्यौछावर किये। साधुओंके विशाल भण्डारे हुए। यह सुनकर बहुत-से ब्राह्मण भी पधारे। उन्होंने भण्डारेमें भोजन करना स्वीकार नहीं किया, इसलिये इन्हें सीधा-सामान दिया गया। ब्राह्मणोंने रसोई की और जब भोजन करनेके लिये बैठे तो उन्हें पंक्तिमें दो-दो ब्राह्मणोंके बीचमें एक रैदास बैठे दिखायी पड़े। यह चमत्कार देखकर उनकी आँखें खुल गयीं। तब वे दीनवाणीसे अपराध क्षमा करनेकी प्रार्थना करने लगे। लाखों ब्राह्मण भी उनके शिष्य हो गये। श्रीरैदासजीने अपने शरीरकी त्वचाको चीरकर सोनेका यज्ञोपवीत सबको दिखाया। इससे सबको विश्वास हो गया कि 'ये दिव्य पुरुष हैं'।

***रानी झालीके श्रीरैदासजीकी शिष्या बननेकी घटनाका वर्णन करते हुए श्रीप्रियादासजी कहते हैं—***

बसत चित्तौर मांझ रानी एक झाली नाम नाम बिन कान खाली आनि शिष्य भई है।
संग हुते बिप्र सुनि छिप्र तन आगि लागि भागी मति नृप आगे भीर सब गई है॥
वैसेहि सिंहासन पै आनि कै विराजे प्रभु पढ़े वेद बानी पै न आये यह नई है।
पतित पावन नाम कीजिये प्रकट आजु गायो पद गोद आइ बैठे भक्ति लई है॥ २६६॥
गई घर झाली पुनि बोलिकै पठाये अहो जैसे प्रतिपाली अब तैसे प्रतिपारियै।
आपुहू पधारे उन बहु धन पट वारे विप्र सुनि पांव धारे सीधो दै निवारियै॥

करिकैं रसोई द्विज भोजन करन बैठे द्वै द्वै मधि एक यों रैदासको निहारियै।
देखि भई आखें दीन भाषैं सिख लाखैं भये स्वर्णको जनेऊ काढ़्यो त्वचा कीनी न्यारियै॥ २६७॥

## श्रीकबीरदासजी

**भक्ति बिमुख जो धर्म सोइ अधरम करि गायो।**
**जोग जग्य ब्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो॥**
**हिंदू तुरक प्रमान रमैनी सबदी साखी।**
**पच्छपात नहिं बचन सबहि के हित की भाषी॥**
**आरूढ़ दसा ह्वै जगत पर मुख देखी नाहिंन भनी।**
**कबिर कानि राखी नहीं बरनाश्रम षटदरसनी॥ ६०॥**

श्रीकबीरदासने भक्तिहीन षड्दर्शन एवं वर्णाश्रम धर्मको मान्यता नहीं दी। वे भक्तिसे विरुद्ध धर्मको अधर्म ही कहते थे। उन्होंने बिना भजनके योग, यज्ञ, व्रत और दान आदिको व्यर्थ सिद्ध किया। उन्होंने अपने बीजक—रमैनी, शबदी और साखियोंमें किसी मतविशेषका पक्षपात न करके सभीके कल्याणके लिये उपदेश दिया। हिन्दू-मुसलमान सभीके लिये उनके वाक्य प्रमाण हैं। वे ज्ञान एवं पराभक्तिकी आनन्दमयी अवस्थामें सर्वदा स्थित रहते थे। श्रीकबीरदासजीने किसीके प्रभावमें आकर मुँहदेखी बात नहीं कही। वे जगत्के प्रपंचोंसे सर्वथा दूर रहे॥ ६०॥

*सन्त श्रीकबीरदासजीका जीवन-चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—*

उच्चश्रेणीके भक्तोंमें कबीरजीका नाम बहुत आदर और श्रद्धाके साथ लिया जाता है। इनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कई प्रकारकी किंवदन्तियाँ हैं। कहते हैं, जगद्गुरु रामानन्द स्वामीके आशीर्वादसे ये काशीकी एक विधवा ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न हुए। लज्जाके मारे वह नवजात शिशुको लहरताराके तालके पास फेंक आयी। नीरू नामका एक जुलाहा उस बालकको अपने घर उठा लाया, उसीने उस बालकको पाला-पोसा। यही बालक 'कबीर' कहलाया। कुछ कबीरपन्थी महानुभावोंकी मान्यता है कि कबीरका आविर्भाव काशीके लहरतारा तालाबमें कमलके एक अति मनोहर पुष्पके ऊपर बालकरूपमें हुआ था। एक प्राचीन ग्रन्थमें लिखा है कि किसी महान् योगीके औरस और प्रतीचि नामक देवांगनाके गर्भसे भक्तराज प्रह्लाद ही कबीरके रूपमें संवत् १४५५ ज्येष्ठ शुक्ल १५ को प्रकट हुए थे। प्रतीचिने उन्हें कमलके पत्तेपर रखकर लहरतारा तालाबमें तैरा दिया था और नीरू-नीमा नामके जुलाहा-दम्पती जबतक आकर उस बालकको नहीं ले गये, तबतक प्रतीचि उनकी रक्षा करती रही। कुछ लोगोंका यह भी कथन है कि कबीर जन्मसे ही मुसलमान थे और सयाने होनेपर स्वामी रामानन्दके प्रभावमें आकर उन्होंने हिन्दूधर्मकी बातें जानीं। ऐसा प्रसिद्ध है कि एक दिन एक पहर रात रहते ही कबीर पंचगंगाघाटकी सीढ़ियोंपर जा पड़े। वहींसे रामानन्दजी स्नान करनेके लिये उतरा करते थे। रामानन्दजीका पैर कबीरके ऊपर पड़ गया। रामानन्दजी चट 'राम-राम' बोले उठे। कबीरने इसे ही श्रीगुरुमुखसे प्राप्त दीक्षामन्त्र मान लिया और स्वामी रामानन्दजीको अपना गुरु कहने लगे। स्वयं कबीरके शब्द हैं—

**'हम कासी में प्रगट भये हैं, रामानन्द चेताये।'**

मुसलमान कबीरपन्थियोंकी मान्यता है कि कबीरने प्रसिद्ध सूफी मुसलमान फकीर शेख तकीसे दीक्षा ली थी। परंतु कबीरने शेख तकीका नाम उतने आदरसे नहीं लिया है, जितना स्वामी रामानन्दका। इसके सिवा कबीरने पीर पीताम्बरका नाम भी विशेष आदरसे लिया है। इन बातोंसे यही सिद्ध होता है कि कबीरने हिन्दू-मुसलमान भेदभाव मिटाकर हिन्दू-भक्तों तथा मुसलिम फकीरोंका सत्संग किया और उनसे जो कुछ भी तत्त्व प्राप्त हुआ, उसे हृदयंगम किया।

जनश्रुतिके अनुसार कबीरके एक पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्रका नाम था कमाल और पुत्रीका कमाली। इनकी स्त्रीका नाम 'लोई' बतलाया जाता है। इस छोटे-से परिवारके पालनके लिये कबीरको अपने करघेपर कठिन परिश्रम करना पड़ता था। घरमें साधु-सन्तोंका जमघट रहता ही था। इसलिये कभी-कभी इन्हें फाकेमस्तीका मजा भी मिला करता था। कबीर 'पढ़े-लिखे' नहीं थे। स्वयं उन्हींके शब्द हैं—

**'मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।'**

कबीरकी वाणीका संग्रह 'बीजक' के नामसे प्रसिद्ध है। इसके तीन भाग हैं—रमैनी, सबद और साखी। भाषा खिचड़ी है—पंजाबी, राजस्थानी, खड़ी बोली, अवधी, पूरबी, व्रजभाषा आदि कई बोलियोंका पँचमेल है।

श्रीकबीरदासजी सिद्ध सन्त थे, इनके चमत्कारोंके अनेक प्रसंग आज भी जन-सामान्यमें प्रचलित हैं, परंतु इनका उद्देश्य सिद्धिका चमत्कार-प्रदर्शन नहीं, अपितु सन्त-भगवन्तकी महिमाका ख्यापन और भगवद्भक्तिका प्रचार-प्रसार था।

कहते हैं कि एक बार प्रयागमें कुम्भके अवसरपर श्रीकबीरदासजी भी वहाँ गये थे तथा तत्कालीन यवन सुलतान भी मुसलमान फकीर शेख तकीको लेकर गया हुआ था। एक दिन वह श्रीत्रिवेणीजीके किनारे खड़ा था, श्रीकबीरदासजी भी स्नान करनेके लिये वहाँ आये थे। उसी समय एक मृत बालकका शव बहता चला आ रहा था। शेख तकीने सुलतानको दिखाकर कहा—हुजूर! देखिये, कैसा सुन्दर बालक है, दुनियाँसे चल बसा। सुलतानने श्रीकबीरदासजीकी ओर संकेत करते हुए शेख तकीसे कहा—ये साहबसे मिले हैं, चाहें तो जिन्दा कर सकते हैं। कबीरदासजीको लगा कि यह सुलतान अपनी सल्तनतके नशेमें मेरी भक्ति, प्रभुके प्रति श्रद्धा और विश्वासको चुनौती दे रहा है और एक मुसलमान फकीरके सम्मुख मेरी हँसी उड़ा रहा है, अतः उन्होंने उसको पुकारकर कहा—'ऐ बालक! तू कहाँ जा रहा है, आ मेरे पास।' इतना कहते ही वह बालक जीवित हो गया और लौटकर कबीरदासजीके पास आकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। इस अद्भुत चमत्कारको देखकर बरबस ही सुलतानके मुखसे निकल पड़ा—कमाल है! इसपर श्रीकबीरदासजीने उस बालकका नाम ही कमाल रख दिया और उसे अपना पुत्र बना लिया। इसी प्रकारकी कथा कमालीके विषयमें भी प्रसिद्ध है, वह एक राजकन्या थी। छोटी अवस्थामें ही उसकी मृत्यु हो गयी थी। राजाने अपने कुलकी प्रथाके अनुसार उसे पृथ्वीमें समाधि दे दी। फिर उसे पता चला कि श्रीकबीरदासजी परम सिद्ध सन्त हैं और वे मरे हुएको भी जिन्दा कर देनेमें समर्थ हैं, तबतक कमालके जीवित हो जानेकी घटना सर्वविदित हो चुकी थी। अतः राजाने श्रीकबीरदासजीको बुलवाया। राजाकी प्रार्थनापर श्रीकबीरदासजीने यह कहकर पुकारा कि बेटी! तुम्हारे पिता बुला रहे हैं, जीवित होकर चली आ। परंतु वह नहीं जीवित हुई। तब श्रीकबीरजीने पुनः कहा कि अच्छा बेटी! तुम्हारे पिता कबीर बुला रहे हैं, जीवित होकर चली आ। इतना कहते ही वह समाधिमेंसे जीवित निकलकर बाहर आ गयी। राजा-रानी बहुत प्रसन्न हुए वे प्रेमपूर्वक उसे गोदमें लेकर घर ले जाने लगे। तब उस राजकन्याने कहा कि मैं जिस पिताके नामपर जीवित हुई हूँ, उन्हींके साथ जाऊँगी। राजा-रानीने भी उसे श्रीकबीरदासजीके ही चरणोंमें डाल दिया।

इनके सम्बन्धमें इसी प्रकारकी एक और कथा प्रसिद्ध है। एक बार बलख बुखाराके बादशाहका पुत्र मर गया। उसे किसीसे ज्ञात हुआ कि भारतमें अनेक बड़े-बड़े सिद्ध फकीर हैं, जो मृत व्यक्तिको भी जिन्दा कर देते हैं। अतः उसने अपने पुत्रको जीवित करानेके लिये अपने वजीरको किसी सन्तको लानेके लिये भारत भेजा। वह समय भक्तिकाल था, ऐसे अनेक सिद्ध सन्त थे, जो मुर्देको भी जिन्दा करनेमें सक्षम थे, परंतु मुसलिम राष्ट्रमें जानेको कोई तैयार नहीं हुआ। अन्तमें वजीर श्रीकबीरदासजीके पास आया और उनसे प्रार्थना की। कबीरदासजी तैयार हो गये। वजीर इन्हें बड़े आदरके साथ बलख बुखारा ले गया। वहाँ भी इनका बड़ा आदर-सत्कार हुआ और इन्हें उस स्थानपर ले जाया गया, जहाँ शहजादेका शव रखा हुआ

था। बादशाह, वजीर और दरबारके दूसरे बड़े ओहदेदार भी वहाँ हाजिर थे। कबीरदासजीने शहजादेके शवको सम्बोधित करते हुए कहा—उठ, बादशाहके हुक्मसे; परंतु वह शव वैसे-का-वैसा ही पड़ा रहा। कबीरदासजीने फिर कहा—उठ, खुदाके हुक्मसे। फिर भी शव नहीं उठा तो कबीरने कहा—उठ, मेरे हुक्मसे। उनके इतना कहते ही वह बालक तुरंत जीवित होकर उठ बैठा। इस प्रकार श्रीकबीरदासजीने अनेक अद्भुत कर्म किये, जो उनके जैसे सिद्ध सन्तद्वारा ही सम्भव थे।

बुढ़ापेमें कबीरके लिये काशीमें रहना लोगोंने दूभर कर दिया था। यश और कीर्तिकी उनपर वृष्टि-सी होने लगी। कबीर इससे तंग आकर मगहर चले आये। ११९ वर्षकी अवस्थामें मगहरमें ही उन्होंने शरीर छोड़ा।

सन्त-शिरोमणि कबीरका नाम उनकी सरलता और साधुताके लिये संसारमें सदा अमर रहेगा। उनकी कुछ साखियोंकी बानगी लीजिये—

**ऐसा कोई ना मिला, सत्त नाम का मीत। तन मन सौंपै मिरग ज्यौं, सुन बधिक का गीत॥**
**सुखके माथे सिल परै, जो नाम हृदय से जाय। बलिहारी वा दुःख की, (जो) पल पल नाम रटाय॥**
**तन थिर, मन थिर, बचन थिर, सुरत निरत थिर होय। कह कबीर इस पलक को, कलप न पावै कोय॥**
**माली आवत देखि कै, कलियाँ करैं पुकारि। फूली फूली चुनि लिये, काल्हि हमारी बारि॥**
**सोऔं तो सुपिने मिलै, जागौं तो मन माहिं। लोचन राता, सुधि हरी, बिछुरत कबहूँ नाहिं॥**
**हँस हँस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय। हाँसी खेले पिउ मिलैं तो कौन दुहागिनि होय॥**
**चूड़ी पटकौं पलँग से, चोली लावौं आगि। जा कारन यह तन धरा, ना सूती गल लागि॥**
**सब रग ताँत, रबाब तन, बिरह बजावै नित्त। और न कोई सुनि सकै, कै साईं, के चित्त॥**
**कबीर प्याला प्रेमका, अन्तर लिया लगाय। रोम-रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय॥**

***कबीरदासजीसे सम्बन्धित कुछ घटनाएँ इस प्रकार हैं—***

**(क) श्रीरामानन्दजीका शिष्य बननेकी घटना**

श्रीकबीरदासजीकी बुद्धि अत्यन्त गम्भीर थी और उनका हृदय प्रेमाभक्तिसे सर्वथा परिपूर्ण एवं अति सरस था। उन्होंने भक्तिभावको अपनाकर जाति-पाँतिमें विवाद समझकर उसे बिलकुल त्याग दिया था। इसी समय एक दिन आकाशवाणी हुई कि 'अपने शरीरमें तिलक रमाओ, आचार्य श्रीरामानन्दको अपना गुरु बनाओ, गलेमें तुलसीमाला धारण करो।' यह सुनकर कबीरदासने कहा कि मैं उनसे मन्त्र-दीक्षा कैसे लूँगा, वे मुझे म्लेच्छ मानकर मेरा मुख भी नहीं देखना चाहेंगे, पुनः आकाशवाणीने कहा—वे गंगा-स्नान करने जाते हैं, उस समय मार्गमें अपनेको उनके चरणोंमें डाल देना। नित्य प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें ध्यानमग्न-प्रेमावेशसे आप गंगा-स्नान करने जाते थे। श्रीकबीरदासजी गंगाघाटकी सीढ़ीपर लेट गये। यथासमय श्रीस्वामीजी पधारे। उनका श्रीचरण कबीरजीके सिरपर पड़ गया। सहसा उनके मुखसे निकला—राम! राम! कहो। श्रीकबीरदासजीने राम-नामको मन्त्र-दीक्षाके रूपमें ग्रहण कर लिया। इस प्रकार आप श्रीस्वामीजीके शिष्य बनकर घरको चले आये।

श्रीकबीरदासजीने वही किया जैसा कि आकाशवाणीने कहा था अर्थात् अपने शरीरपर रामानन्दीय (द्वादश) तिलक लगाया और गलेमें तुलसी-कण्ठी पहन ली। अपने लड़केका साधुवेष देखकर एवं उसे रात-दिन राम-नाम जपते देखकर माताने इसे बड़ा उत्पात माना और बड़ा हल्ला मचाने लगी कि मेरे लड़केको किसीने हिन्दू-बाबाजी बना दिया। धीरे-धीरे यह बात श्रीरामानन्दजीके पासतक पहुँच गयी, फिर किसीने आकर यह भी बताया कि जब कोई उससे पूछता है कि तुम किसके शिष्य बन गये हो? तब वह आपका ही नाम लेता है। यह सुनकर श्रीस्वामीजीने आज्ञा दी कि 'उसे पकड़कर मेरे पास ले आओ।' आज्ञानुसार लोग कबीरदासजीको बुला लाये। परदेके पीछे बैठकर श्रीस्वामीजीने पूछा—हमने तुमको कब शिष्य बनाया? तब श्रीकबीरदासजीने गंगाघाटकी

सब घटना स्मरण करायी और बोले—श्रीरामनाम ही महामन्त्र है। यह बात सभी शास्त्रोंमें लिखी है। वही प्रदानकर आपने मुझे शिष्य बनाया। यह सुनकर श्रीस्वामीजी अति प्रसन्न हुए और परदा खोलकर बाहर आये तथा कबीरदासजीको छातीसे लगाकर बोले—वत्स! तुम्हारा सिद्धान्त सत्य है। श्रीरामनामको ही हृदयमें धारण करो।

***श्रीप्रियादासजी कबीरदासजीद्वारा श्रीरामानन्दजीको गुरु बनानेकी घटनाका इस प्रकार वर्णन करते हैं—***

**अति ही गम्भीर मति सरस कबीर हियो लियो भक्ति भाव जाति पाँति सब टारियै।**
**भई नभ बानी देह तिलक रमानी करौ करौ गुरु रामानन्द गरें माल धारियै॥**
**देखैं नहिं मुख मेरो मानिकै मलेछ मोंको 'जात न्हान गंगा कही मग तन डारियै'।**
**रजनी के शेष में आवेश सों चलत आप परै पग राम कहै मन्त्र सो विचारियै॥ २६८॥**
**कीनी वही बात माला तिलक बनाय गात मानि उतपात माता सोर कियो भारियै।**
**पहुँची पुकार रामानन्दजू कै पास आनि कही कोऊ पूछे तुम नाम लै उचारियै॥**
**ल्यावौ जू पकरि वाको कब हम शिष्य कियो? ल्याये करि परदा में पूछी कहि डारियै।**
**राम नाम मन्त्र यही लिखो सब तन्त्रनि में खोलि पट मिले सांचो मत उर धारियै॥ २६९॥**

## (ख) श्रीकबीरदासजीकी दिनचर्या और उनका भगवद्भाव

श्रीकबीरदासजी जीवन-निर्वाहके लिये ताने-बानेसे कपड़ा बुनते थे, किंतु उनके हृदयमें श्रीरामजीका नामरूप मँड़राया करता था। वे कपड़ा उतना ही बुनते थे, जितनेसे परिवारका खर्च चल जाय। एक बार बाजारमें कपड़ा बेचनेके लिये आप खड़े थे कि एक साधु आपके पास आकर बोला कि मुझे कपड़ा दीजिये, मेरे पास पहननेके लिये कुछ नहीं है। तब आप उसे आधा थान फाड़कर देने लगे। तो उसने कहा—इस आधे थानसे मेरा काम नहीं चलेगा। श्रीकबीरदासजीने कहा—यदि पूरा थान लेनेका निश्चय आपने अपने मनमें किया है तो लीजिये, यह पूरा थान ही लीजिये।

श्रीकबीरदासके घरपर उनकी स्त्री लोई, माता नीमा, पुत्र कमाल और पुत्री कमाली—ये सभी रास्ता देख रहे थे। घरमें भोजन-सामग्रीका अभाव था, अतः सभी भूखे थे। कपड़ा बेचकर मूल धनसे सूत और मुनाफेसे सामान खरीदकर आता था। उसीसे निर्वाह होता था। दूसरे दिनके लिये कुछ बचता ही न था। श्रीकबीरदासजीने विचार किया कि घरमें सभी भूखे होंगे। खाली हाथ चलकर क्या करूँ। वे बाजारमें ही इधर-उधर कहीं छिप गये। घरको क्या लेकर आते? पूरा थान-का-थान तो दान कर चुके थे। भगवान् घट-घट वासी हैं, श्रीकबीरदासके सच्चे भक्तिभावको जानकर और घरके लोगोंको दुखी देखकर वे व्यापारी केशव बनजारेका रूप धारणकर बैलोंके ऊपर बहुत-सा आवश्यक सामान लादकर लाये। सब सामान उन्होंने कबीरदासजीके घरमें रख दिया और कहा—यह सामान सुविधाके लिये है। इससे आरामसे निर्वाह करो।

तीन दिन बाद भी जब श्रीकबीरदासजी लौटकर घर नहीं आये, तब दो-चार आदमी गये और ढूँढ़कर उन्हें लिवा लाये। घर आकर कबीरदासजीने सब बात सुनी कि एक व्यापारी बहुत-सा सामान लाकर डाल गया, तो उन्होंने जान लिया कि मेरे कष्टको देखकर स्वयं भगवान्‌को कष्ट हुआ, तभी उन्होंने सामान पहुँचानेका कष्ट उठाया। विचारकर कि श्रीराम रघुवीरने मुझपर अत्यन्त कृपा की, आप परमानन्दमें मग्न हो गये। उसी समय भक्तोंकी भीड़को बुलाकर श्रीकबीरदासजीने सारा सामान लुटा दिया। ताना-बाना, कपड़ा बुनना सब आपने छोड़ दिया। हृदयमें आनन्दकी बाढ़ आ गयी। यह सुनकर ब्राह्मणोंका धैर्य छूट गया, वे क्रोधित होकर दौड़ते हुए कबीरदासजीके यहाँ आये और बोले—क्यों रे जुलाहे! तूने इतना धन पाया और हमलोगोंको नहीं बुलाया।

शूद्रोंको बुलाकर सब धन उन्हें दे दिया। या तो हमें भी धन दो, नहीं तो यहाँसे बाहर भाग जाओ।

श्रीकबीरदासजीने कहा—अब मेरे घरमें तो कुछ भी नहीं है, आपलोग घरमें घुसकर देख लीजिये। यदि आप नहीं मानते हैं तो यहीं बैठें, मैं मण्डीमें जाता हूँ, कुछ मिलेगा तो लाकर दे दूँगा। यह कहकर श्रीकबीरदासजीने बड़ी कठिनाईसे अपना पीछा छुड़ाया और मण्डीमें जाकर छिप गये। इस प्रकार उन्होंने संकटको टाला। इसी समय भगवान् श्रीकबीरदासजीका रूप धारण करके आये और बहुत-सा धन लाये। उन्होंने आदरपूर्वक ब्राह्मणोंको धन देकर उनका समाधान किया। वे लोग धन लेकर बड़े सुखी हुए। इस प्रकार भगवान्ने अपने भक्तकी उज्ज्वल कीर्तिको सम्पूर्ण जगत्में प्रकाशित किया।

***श्रीप्रियादासजीने कबीरदासजीकी आजीविका और भगवद्भक्तिका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—***

**बीनै तानौ बानौ हिये राम मडरानौ कहि कैसें कै बखानौं वह रीति कछु न्यारियै।**
**उतनोई करैं जामैं तन निरवाह होय भोय गई औरै बात भक्ति लागी प्यारियै॥**
**ठाढ़े मण्डी मांझ पट बेचन लै जन कोऊ आयो मोकों देहु देह मेरी है उघारियै।**
**लग्यौ देन आधो फारि आधे सों न काम होत दियो सब लियौ जोपैं यहै उर धारियै॥ २७०॥**
**तियासुत मात मग देखैं भूखे आवै कब? दबि रहे हाटनि में ल्यावैं कहा धाम कौं।**
**सांचो भक्तिभाव जानि निपट सुजान वे तौ कृपाके निधान गृह शोच पर्‍यो श्याम कौं॥**
**बालद लै धाये दिन तीन यों बिताये जब आये घर डारि दई दई हौं आराम कौं।**
**माता करै सोर कोऊ हाकिम मरोरि बाँधे डारो बिन जानै सुत लेत नहीं दाम कौं॥ २७१॥**
**गये जन दोय चार ढूंढ़ि कै लिवाय ल्याये आये घर सुनी बात जानी प्रभु पीर कौं।**
**रहे सुख पाय कृपा करी रघुराय दई छिन मैं लुटाय सब बोलि भक्त भीर कौं॥**
**दियो छोड़ि तानौ बानौ सुख सरसानौ हिये किये रोष धाये सुनि विप्र तजि धीर कौं।**
**क्यों रे तूं जुलाहे धन पाये न बुलाये हमें, शूद्रनिकों दियो जावौ कहैं यों कबीर कौं॥ २७२॥**
**क्यों जू उठि जाऊँ? कछु चोरी धन ल्याऊँ निज हरिगुन गाऊँ कोऊ राह मैं न मारी है।**
**उनिकौं लै मान कियो याहि मैं अमान भयौ दयौ जोपै जाय हमैं तौ ही तौ जियारी है॥**
**घरमें तौ नाहीं मण्डी जाहि तुम रहौ बैठे नीठिकै छुटायो पैड़ौ छिपे व्याधि टारी है।**
**आये प्रभु आप द्रव्य ल्याये समाधान कियो लियो सुख होय भक्त कीरति उजारी है॥ २७३॥**

## (ग) कबीरदासजीके जीवनके कुछ चमत्कार

ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करके भगवान्ने ब्राह्मणका रूप धारण किया और वहाँ पहुँचे, जहाँ श्रीकबीरदासजी छिपकर बैठे थे। भगवान्ने श्रीकबीरदासजीसे कहा—तू यहाँपर पड़ा हुआ, भूखों क्यों मरता है? श्रीकबीरदासजीके घरपर जा। जो भी कोई वहाँ जाता है, उसे वे ढाई सेर अन्न देते हैं, इसलिये अब तू देर मत कर, वहीं चला जा, जल्दीसे जा। श्रीकबीरदासजी घरको आये और सब समाचार देख-सुनकर प्रेमानन्दमें पूर्णरूपसे मग्न हो गये। भगवान्के द्वारा किये गये नये-नये कौतुकोंसे तथा वैभवकी वृद्धिसे परम अकिंचन भक्त श्रीकबीरदासजीका धैर्य कैसे रहे। बढ़ती हुई प्रतिष्ठाको घटानेके लिये श्रीकबीरदासने भी नये-नये कौतुकोंकी रचना प्रारम्भ कर दी। एक दिन आपने एक वेश्याको अपने साथमें ले लिया। उस समय ऐसा मालूम होता था कि भजन-भावको छोड़कर ये उसीके रंगमें रँग गये हैं। परंतु सच्ची बात तो यह थी कि मुझे कुमार्गी समझकर लोग मेरे पास न आयें, मेरे भजनमें बाधा न हो।

श्रीकबीरदासजीको एक वेश्याके साथ देखकर सन्तजन डर गये कि श्रीकबीरदासजी यदि मायासे मोहित

हो सकते हैं तो हम-सरीखे साधारण लोग कैसे बचेंगे और दुष्टोंके मनमें बड़ा भारी सुख हुआ। वे कहने लगे, हम तो कहते ही थे कि यह ढोंगी है, हमारी बात सच निकली। श्रीकबीरदासजीने जब सन्त और असन्तोंके ऐसे भाव जाने, तब वे वेश्याको साथ लिये हुए वहाँ पहुँचे, जहाँ काशीके राजाकी सभा लगी हुई थी। राजाने शिष्य होते हुए भी इनका कुछ भी सम्मान नहीं किया। फिर भी ये वहाँ बैठ गये और मानसी भावसे श्रीजगन्नाथभगवान्का ध्यान करने लगे। थोड़ी देर बाद इन्होंने उठकर वहीं अपने पात्रसे जल गिरा दिया। यह देखकर राजाके मनमें कुछ चिन्ता हुई और उसने पूछा—आपने यह क्या किया, जल क्यों गिराया? श्रीकबीरदासजीने कहा—श्रीजगन्नाथपुरीमें श्रीजगन्नाथजीका रसोइया भोगका थाल मन्दिरमें लिये जा रहा था, उसका पैर जलनेवाला था, इसलिये आगको बुझाकर मैंने उसकी रक्षा की है। यह सुनकर सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ। राजाने इसकी जाँचके लिये आदमी भेजे। उन्होंने लौटकर समाचार दिया कि श्रीकबीरदासजीकी बात सत्य है—बिलकुल सत्य है।

राजाने मनमें अपना अपराध मानकर रानीसे कहा—श्रीकबीरदासजीकी वह बात तो सत्य निकली। राजसभामें कृपा करके पधारे, मैंने उनका अपमान किया, इसलिये मेरे मनमें बड़ा भारी दुःख है। इस अपराधसे बचनेके लिये मैं कौन-सा उपाय करूँ? रानीने कहा कि उन्हींकी शरणमें जानेसे काम बनेगा। तब राजाने घासका एक बड़ा भारी बोझ सिरपर रख लिया और गलेमें कुल्हाड़ी बाँध ली। इस प्रकार भावमें भीगा हुआ राजा रानीको साथमें लेकर श्रीकबीरदासजीकी शरणमें चला। राजा-रानीने लोक-लज्जाका सर्वथा परित्याग कर दिया था। दोनों बाजारसे होकर निकले। हमने बड़ा अनुचित कार्य किया है ऐसा सोच-सोचकर उनके शरीर क्षण-प्रतिक्षण क्षीण हो रहे थे। श्रीकबीरदासजीने दूरसे राजाको आते देखा तो अत्यन्त व्याकुल हो गये। वे उठकर राजाके पास आये और उन्होंने घासका बोझ उतरवा दिया, गलेसे कुल्हाड़ी खुलवा दी। राजा-रानीके भावसे श्रीकबीरदासजी अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये। मैं तुम्हारे ऊपर रुष्ट नहीं हूँ, ऐसा कहते हुए उन्होंने उपदेश देकर उन्हें आनन्दित किया।

***श्रीकबीरदासजीके इन चरित्रोंका श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—***

**ब्राह्मनकौ रूप धरि आये छिपि बैठे जहाँ काहे को मरत भौन जावौ जू कबीर के।**
**कोऊ जाय द्वार ताहिं देत हैं अढ़ाई सेर बेर जिनि लावौ चले जावौ यों बहीर के॥**
**आये घर माँझ देखि निपट मगन भये नये नये कौतुक ये कैसे रहैं धीर के।**
**बारमुखी लई संग मानौ वाही रंग रँगे जानौ यह बात करी डर अति भीर के॥ २७४॥**
**सन्त देखि डरे सुख भयोई असन्तनिके तब तौ विचार मन माँझ और आयो है।**
**बैठी नृपसभा जहाँ गये पै न मान कियौ कियौ एक चोज उठि जल ढरकायो है॥**
**राजा जिय शोच पर्‍यो कर्‍यो कहा? कह्यो तब जगन्नाथ पण्डा पाँव जरत बचायो है।**
**सुनि अचरज भरे नृपने पठाये नर ल्याये सुधि कही अजू साँच ही सुनायो है॥ २७५॥**
**कही राजा रानी सों जु बात वह साँची भई आँच लागी हिये अब कहो कहा कीजियै।**
**'चले ही बनत' चले सीस तृण बोझ भारी गरेसों कुल्हारी बाँधि तिया संग भीजियै॥**
**निकसे बाजार ह्वै कै डारि दई लोकलाज कियो मैं अकाज छिन छिन तन छीजियै।**
**दूर ते कबीर देखि ह्वै गये अधीर महा आये उठि आगे कह्यौ डारि मत रीझियै॥ २७६॥**

## (घ) कबीरदासजी और बादशाह सिकन्दर लोदी

श्रीकबीरदासजीकी बढ़ती हुई महिमाको देखकर ब्राह्मणोंके हृदयमें ईर्ष्या पैदा हो गयी। उस समय भारतका तत्कालीन बादशाह सिकन्दर लोदी काशी आया हुआ था। भक्तिविमुख ब्राह्मणोंने श्रीकबीरदासजीकी माताको भी अपने पक्षमें कर लिया और इकट्ठे होकर सिकन्दर लोदीके दरबारमें गये। सबोंने पुकार की कि इस कबीरदासने सारे गाँवको दुखी कर रखा है। मुसलमान होकर हिन्दू बाबाजी बन गया है, किसी धर्मको न मानकर ढोंग फैलाता

रहता है। बादशाहने तुरंत आज्ञा दे दी कि उसे अभी पकड़कर मेरे पास ले आओ, मैं उसे देखूँगा कि वह कैसा मक्कार है। बादशाहकी आज्ञा पाकर सिपाहीलोग श्रीकबीरदासजीको ले आये और बादशाहके सामने खड़ा कर दिया। तब किसी काजीने श्रीकबीरदासजीसे कहा—ये बादशाह सलामत हैं, इन्हें सलाम करो। इन्होंने उत्तर दिया कि हम श्रीरामके अतिरिक्त दूसरे किसीको सलाम करना जानते ही नहीं हैं।

श्रीकबीरदासजीकी बातें सुनकर बादशाहने इन्हें लोहेकी जंजीरोंसे बँधवाकर गंगाजीकी धारामें डुबा दिया। परंतु ये जीवित ही रहे, लोहेकी जंजीरें न जाने कहाँ गयीं! ये गंगाजीकी धारसे निकलकर तटपर खड़े हो गये। पश्चात् बादशाहकी आज्ञासे बहुत-सी लकड़ियोंमें इन्हें दबाकर आग लगा दी गयी। उस समय नया आश्चर्य हुआ, सभी लकड़ियाँ जलकर भस्म हो गयीं और इनका शरीर इस प्रकार चमकने लगा, जिसे देखकर तपे हुए सोनेकी चमक भी लज्जित हो जाय। जब यह उपाय भी व्यर्थ हो गया तो एक मतवाला हाथी लाकर उसे उनके ऊपर झपटाया गया। परंतु लाख प्रयत्न करनेपर भी हाथी श्रीकबीरदासजीके पास नहीं आया। बड़ी जोरसे चिंघाड़कर वह दूर भाग जाता था। इनके समीपमें हाथीके न आनेका कारण यह था कि स्वयं श्रीरामजी सिंहका रूप धारणकर श्रीकबीरदासजीके आगे बैठे थे।

बादशाह सिकन्दर लोदीने श्रीकबीरदासजीका ऐसा अद्भुत प्रभाव देखा तो वह सिंहासनसे कूदकर इनके चरणोंमें गिर पड़ा और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा कि 'अब आप कृपा करके ईश्वरके कोपसे मुझे बचा लीजिये।' श्रीकबीरदासजीने कहा—'अब कभी भी किसी साधु-सन्तके ऊपर ऐसा गजब न करना।' बादशाहने कहा—'प्रभो! गाँव, देश तथा अनेक सुख-सुविधाके सभी सामान जो-जो आप चाहें, वह सब मैं आपको दूँगा।' तब आपने उत्तर दिया—हम तो केवल श्रीरामजीको चाहते हैं और उन्हींको अष्ट-प्रहर जपते हैं। दूसरे किसी धनसे हमें कुछ भी प्रयोजन नहीं है, इस प्रकार बादशाहसे सम्मानित होकर आप अपने घर आये।

श्रीकबीरदासजीकी विजयसे वे विरोधी ब्राह्मणलोग अत्यन्त लज्जित हुए। साधुओंसे शाप दिलाकर इन्हें परास्त करनेके विचारसे उन्होंने अपनेमेंसे चार ब्राह्मणोंके सुन्दर वैरागी साधुओंके-से वेष बनाये। उन चारोंको चारों दिशाओंमें भेज दिया। वे लोग दूर-दूरतक गाँवोंमें साधुओंके स्थानों और नामोंको पूछ-पूछकर सब जगह सबको न्यौता दे आये कि अमुक दिन श्रीकबीरदासजीके यहाँ भण्डारा है, वस्त्र और दक्षिणाका भी प्रबन्ध है, आप पधारें। भण्डारा सुनकर अगणित साधु-सन्त श्रीकबीरदासजीके यहाँ आये। तब आप घरसे अलग कहीं दूर जाकर छिप गये। अपने भक्तकी प्रतिष्ठा रखनेके लिये भगवान् स्वयं श्रीकबीरदासजीका रूप धारण करके आ गये और भण्डारेका प्रबन्ध करने लगे। बड़ी-बड़ी पंगतें बैठ गयीं। अब कबीरदासजी भी आकर इन्हींमें मिल गये। भगवान्ने खिला-पिलाकर और दान-सम्मानसे सभी साधु-सन्तोंको तथा श्रीकबीरदासजीको भी अच्छी प्रकारसे प्रसन्न किया।

***उक्त घटनाओंका वर्णन श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—***

**देखि कै प्रभाव फेरि उपज्यौ अभाव द्विज आयौ बादशाह सो सिकन्दर सुनाँव है।**
**विमख समूह संग माता हूं मिलाय लई जाय कै पुकारे जू दुखायो सब गाँव है॥**
**ल्यावो रे पकर वाके देखौं मैं मकर कैसो अकर मिटाऊँ गाढ़े जकर तनाँव है।**
**आनि ठाढ़े किये काजी कहत सलाम करौ जानै न सलाम जानै राम गाढ़े पाँव है॥ २७७॥**
**बाँधिकै जंजीर गंगानीर मांझ बोरि दिये जिये तीर ठाढ़े कहैं जन्त्र मन्त्र आवहीं।**
**लकरीन मांझ डारि अगिनि प्रजारि दई नई मानो भई देह कंचन लजावहीं॥**
**विफल उपाय भये तऊ नहीं आय नये तब मतवारो हाथी आनि कै झुकावहीं।**
**आवत न ढिग औ चिघारि हारि भाजि जाय आप आगे सिंह रूप बैठे सो भगावहीं॥ २७८॥**

**देख्यो बादशाह भाव कूदि परे गहे पाँव देखि करामात मात भये सब लोग हैं।**
**प्रभु पै बचाय लीजै हमें न गजब कीजै दीजै जोई चाहौ गाँव देस नाना भोग हैं॥**
**चाहैं एक राम जाकौं जपै आठो याम और दामसों न काम जामैं भरे कोटि रोग हैं।**
**आये घर जीत साधु मिले करि प्रीति जिन्हैं हरिकी प्रतीति वेई गायबेके जोग हैं॥ २७९॥**
**होयके खिसाने द्विज निज चारि विप्रनके मूड़न मुड़ायो भेष सुन्दर बनाये हैं।**
**दूर-दूर गांवनिमें नांवनिकौ पूंछि पूंछि नाम लै कबीरजूकौं झूठे न्यौति आये हैं॥**
**आये सब साधु सुनि ए तौ दूरि गये किहूं चहूँ दिसि सन्तनके फिरैं हरि धाये हैं।**
**इनहींको रूपधरि न्यारी न्यारी ठौर बैठे ऐऊ मिलि गये नीके पोषिकै रिझाये हैं॥ २८०॥**

### (ङ) भगवान्‌का कबीरदासजीको दर्शन देना

श्रीकबीरदासजीको मोहित करनेके लिये स्वर्गलोकसे एक अप्सरा सुन्दर वेश-भूषा बनाकर आयी। लेकिन इनके हृदयमें दृढ़ भक्तिभावको देखकर वह वापस चली गयी; क्योंकि उसकी लाग नहीं लगी। श्रीकबीरदासजीके सम्मुख आकर भगवान्‌ने अपना चतुर्भुज रूप प्रकट कर दिया। उसका दर्शन करके इनके नेत्र सफल हो गये। ऐसे परम सौभाग्यशाली सन्त श्रीकबीरदासजी थे। भगवान्‌ने अपना करकमल इनके मस्तकपर रखकर कहा—तुम धन्य हो, तुम्हारी बुद्धि मेरे नाम-रूपादिमें पग गयी है। अपनी इच्छानुसार जबतक चाहो, इस मर्त्यलोकमें रहो और मेरे गुणोंका गान करो। उसके बाद अपने इस शरीरके सहित मेरे परमधाम वैकुण्ठमें चले आना। मगहरमें जाकर आपने भगवद्भक्तिका प्रताप दिखाया। भक्तिका प्रचार किया। अन्त समयमें आपने बहुत-से पुष्प मँगाये, उन्हें बिछाकर लेट गये और भगवान्‌से जा मिले।

***इस घटनाका भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराजने इस प्रकार वर्णन किया है—***

**आई अपछरा छरिबे के लिए वेस किए हिये देखि गाढ़े फिरि गई नहीं लागी है।**
**चतुर्भुज रूप प्रभु आनिकै प्रगट कियौ लियो फल नैननि कौं बड़ौ बड़ भागी है॥**
**सीस धरैं हाथ तन साथ मेरे धाम आवौ गावौ गुण रहो जौलौं तेरी मति पागी है।**
**मगह में जाय भक्ति भावको दिखाय बहु फूलनि मँगाय पौढ़ि मिल्यौ हरि रागी है॥ २८१॥**

## श्रीपीपाजी

**प्रथम भवानी भक्त मुक्ति माँगन को धायो।**
**सत्य कह्यो तिहिं सक्ति सुदृढ़ हरि सरन बतायो॥**
**( श्री ) रामानँद पद पाइ भयो अति भक्ति की सीवाँ।**
**गुन असंख्य निर्मोल संत धरि राखत ग्रीवाँ॥**
**परसि प्रनाली सरस भइ सकल बिस्व मंगल कियो।**
**पीपा प्रताप जग बासना नाहर कों उपदेस दियो॥ ६१॥**

भक्तवर श्रीपीपाजी पहले भवानी देवीके भक्त थे। मुक्ति माँगनेके लिये आपने देवीका ध्यान किया, देवीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर सत्य बात कही कि 'मुक्ति देनेकी शक्ति मुझमें नहीं है, वह शक्ति तो भगवान्‌में है। उनकी शरणमें जाना ही सुदृढ़ साधन है।' देवीजीके उपदेशानुसार आचार्य श्रीरामानन्दजीके चरणकमलोंका आश्रय पाकर श्रीपीपाजी अतिभक्तिकी अन्तिम सीमा हुए। गुरुकृपा एवं अतिभक्तिके प्रभावसे आपमें असंख्य-अमूल्य सद्गुण थे, उन्हें सन्तजन सदा गाते रहते हैं। भक्त, भक्ति, भगवन्त और गुरुदेवकी आपने ऐसी आराधना की कि उसका स्पर्श करके अर्थात् देख-सुन और समझ करके सम्पूर्ण वैष्णवोंकी आराधना-प्रणाली अत्यन्त

सरस हो गयी। आपने अपने प्रभावसे सम्पूर्ण संसारका कल्याण किया। इसका प्रमाण यह है कि आपने परम हिंसक सिंहको उपदेश देकर अहिंसक और विनीत बना दिया॥ ६१॥

***श्रीपीपाजीसे सम्बन्धित कुछ विवरण इस प्रकार है—***

## (क) श्रीरामानन्दाचार्यजीका शिष्य बननेकी घटना

गागरौनगढ़ नामक एक विशाल किला एवं नगर है, वहाँ पीपा नामक एक राजा हुए। वे देवीके बड़े भक्त थे। एक बार उस नगरमें साधुओंकी जमात आयी। राजाने जमातका स्वागत करके कहा—देवीजीको चालीस मन अन्नका भोग लगता है, सभी लोग प्रसाद लेते हैं, आपलोग भी देवीजीका प्रसाद ग्रहण कीजिये। साधुओंने कहा—हमारे साथ श्रीठाकुरजी हैं, हम उन्हींको भोग लगाकर प्रसाद लेते हैं, दूसरे देवी-देवताओंका नहीं। तब राजाने उन्हें सीधा-सामान दिया। साधुओंने रसोई करके भगवान्का भोग लगाया और मन-ही-मन प्रार्थना की—'हे प्रभो! इस राजाकी बुद्धिको बदल दीजिये, इसे अपना भक्त बना लीजिये।' रातको जब राजा महलमें सोया तो उसने एक बड़ा भयानक स्वप्न देखा कि एक विकराल देहधारी प्रेतने मुझे पटक दिया है। मैं भयभीत होकर रोने लगा। जागते ही राजाने स्वप्नकी घटनापर विचार किया, तब उसे वैराग्य हो गया। अब राजाके सोचने-विचारनेकी रीति दूसरी हो गयी। उसे भगवान्की भक्ति विशेष प्रिय लगने लगी।

राजाने देवीसे मायासे मुक्ति एवं भगवत्प्राप्तिका मार्ग पूछा, तब देवीजीने सही बात कही कि 'काशीमें विराजमान श्रीस्वामी रामानन्दजीको अपना गुरु बनाओ और उनके बताये हुए मार्गपर चलकर भगवान्को प्राप्त करो।' देवीजीकी आज्ञा पाकर राजाने काशीको प्रस्थान किया। श्रीस्वामीजीके दर्शनोंकी इच्छासे राजाने जब श्रीमठमें प्रवेश करना चाहा तो द्वारपालोंने कहा कि आचार्यश्रीकी आज्ञाके बिना कोई भी भीतर नहीं जा सकता है। आप अपना परिचय दें। इन्होंने कहा—हम गागरौनगढ़के राजा हैं। जब स्वामीजीसे जाकर यह बात कही गयी। तब द्वारपालोंसे श्रीस्वामीजीने कहा कि हमलोग तो विरक्त हैं, राजाओंसे हमें क्या प्रयोजन? यह सुनकर पीपाजीने राजशाही वेषका त्याग करके फिर शरणागतिकी प्रार्थना कहला भेजी। देहासक्तिका निराकरण करनेके लिये श्रीस्वामीजीने आदेश दिया—'कुएँमें गिर पड़ो।' आज्ञा सुनते ही मनमें अत्यन्त प्रसन्न होकर पीपा कुएँमें गिरने चले। परंतु श्रीस्वामीजीके सेवकोंने पकड़ लिया। इनकी दृढ़ निष्ठा देखकर श्रीस्वामीजी बड़े प्रसन्न हुए और इन्हें बुलाकर दर्शन दिया।

श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजीने भक्त पीपाको मन्त्र-दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाया और इनके ऊपर विशेष कृपा की। गुरुदेवके अनुग्रहसे श्रीपीपाजीने भगवद्भक्तिको दृढ़तापूर्वक अपने हृदयमें धारण किया। श्रीस्वामीजीने इन्हें आज्ञा दी कि अब तुम अपनी राजधानी गागरौनगढ़को जाओ और वहीं घरमें रहकर साधु-सन्तोंकी सेवा करो। एक वर्ष बीतनेपर जब हम तुम्हारी सेवाको सरस जानेंगे और यह देख लेंगे कि तुम सन्तोंकी सेवामें सुख मानते हो और तुम्हारी सेवासे सुखी होकर सन्त तुम्हारे यहाँसे विदा होते हैं, तब हम तुम्हारे घर आयेंगे, वहीं हमारा दर्शन करना। श्रीस्वामीजीकी ऐसी आज्ञा पाकर श्रीपीपाजी घरको लौट आये और बड़ी सुन्दर रीतिसे सन्तसेवा करने लगे। जब वर्ष पूरा होने लगा, तब आपने गुरुदेवभगवान्को एक पत्रमें लिखकर भेजा कि 'दासपर आप कृपा कीजिये, अपने वचनोंका पालन कीजिये।' पत्र पाकर श्रीस्वामीजी अपने प्रिय चालीस भक्तोंको साथ लेकर गागरौनगढ़को चले।

***श्रीप्रियादासजीने श्रीपीपाजीके रामानन्दाचार्यजीका शिष्य बननेकी घटनाका वर्णन इस प्रकार किया है—***

**गागरौन गढ़ बढ़ पीपा नाम राजा भयो लयो पन देवी सेवा रंग चढ्यो भारियै।**
**आये पुर साधु सीधो दियो जोई सोई लियो कियो मन माँझ प्रभु बुद्धि फेरि डारियै॥**

सोयो निशिरोयो देखि सुपनो बेहाल अति प्रेत विकराल देह धरि कै पछारियै।
अब न सुहाय कछू वहू पायँ परि गई नई रीति भई वाहि भक्ति लागी प्यारियै॥ २८२॥
पूछ्यो हरि पायबे कौ मग जब देबी कही सही रामानन्द गुरु करि प्रभु पाइयै।
लोग जानैं बौरौ भयौ गयौ यह काशीपुरी फुरी मति अति आये जहाँ हरि गाइयै॥
द्वार मैं न जान देत आज्ञा ईश लेत कही राज सों न हेत सुनि सबही लुटाइयै।
कह्यौ कुवाँ गिरौ चले गिरन प्रसन्न हिये जिये सुख पायौ ल्याय दरस दिखाइयै॥ २८३॥
किये शिष्य कृपा करी धरी हरिभक्ति हृदै कही अब जावौ गृह सेवा साधु कीजियै।
बितये बरस जब सरस टहल जानि संत सुखमानि आवैं घर मधि लीजियै॥
आये आज्ञा पाय धाम कीन्ही अभिराम रीति प्रीतिकौ न पारावार चीठी लिखि दीजियै।
हूजिये कृपाल वही बात प्रतिपाल करौ चले जुग बीस जन संग मति रीझियै॥ २८४॥

## (ख) पीपाजीकी रानी श्रीसीता सहचरीका श्रीरामानन्दजीकी शिष्या बनना

आचार्य श्रीरामानन्दजी महाराज कबीरदास, रैदास आदि अपने चालीस शिष्य-सेवकोंको साथ लेकर गागरौनगढ़के निकट पहुँचे। श्रीगुरुदेवके शुभागमनका समाचार पाते ही पीपाजी पालकी लेकर आये। आपने स्तुति करके गुरुदेवको तथा सभी साधुओंको अलग-अलग दण्डवत् प्रणाम किया। उत्साहपूर्वक बहुत-सा धन 'मुहरें' न्यौछावर करके, लुटा करके समस्त समाजको अपने राजभवनमें पधराया। श्रीस्वामीजीने पीपाजीकी भक्त-भगवन्तमें दृढ़ भक्ति तथा सेवाकी सुन्दर रीति देखकर उनसे कहा—तुम्हारी इच्छा हो तो घरपर रहकर सेवा करो अथवा विरक्त होकर भजन करो, दोनों ही तुम्हारे लिये समान हैं। श्रीगुरुदेवमें तथा उनकी आज्ञामें विश्वास करके उनके श्रीचरणोंमें पड़कर पीपाजीने प्रार्थना की कि अपने चरणोंमें ही रखिये।

श्रीपीपाजी जब घर छोड़कर श्रीस्वामीजीके साथ चलनेको तैयार हुए, तब उनकी सभी बीसों रानियाँ भी उनके साथ चलनेके लिये तैयार हो गयीं। तब श्रीपीपाजीने कहा—यदि तुम सबको मेरे साथ ही चलना है तो कमरीको फाड़कर उसकी अलफी पहन लो और मूल्यवान् वस्त्र तथा सभी गहने उतारकर फेंक दो। साधुवेष धारण करके चलो। ऐसा त्याग वे नहीं कर सकीं, सभी रोने लगीं। परंतु उनमेंसे जो सबसे छोटी रानी सीता सहचरीजी थीं, वे इसके लिये तैयार हो गयीं। उन्होंने अलफी गलेमें डाल ली, सभी आभूषण उतार दिये, तब राजाने दूसरी आज्ञा दी कि अधोवस्त्र मात्र रखो, इस अलफीको भी उतारकर फेंक दो। सुनते ही सीता सहचरी अलफी उतारकर फेंकने लगीं। यह देखकर श्रीस्वामीजीको दया आ गयी। उन्होंने श्रीपीपाजीको आज्ञा दी कि इनको साथमें ही रखो।

***श्रीप्रियादासजी श्रीपीपाजीकी रानी श्रीसीता सहचरीजीके स्वामी श्रीरामानन्दजीकी शिष्या बनने और दोनोंके संन्यास ग्रहण करनेकी इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—***

कबीर रैदास आदि दास सब संग लिये आये पुरपास पीपा पालकी लै आयौ है।
करी साष्टांग न्यारी न्यारी बिनै साधुनको धनको लुटाय सो समाज पधरायौ है॥
जैसी कीन्हीं सेवा बहु मेवा नाना राग भोग बानीके न जोग भाग कापै जात गायौ है।
जानी भक्ति रीति घर रहौ कै अतीत होहु करिकै प्रतीति गुरु पग लगि धायौ है॥ २८५॥
लागी संग रानी दस दोय कही मानी नहीं कष्टको बतावैं डरपावैं मन लावहीं।
कामरीन फारि मधि मेखला पहिरि लेवो देवो डारि आभरन जो पै नहीं भावहीं॥
काहू पै न होय दियो रोय भोय भक्ति आई छोटी नाम सीता गरें डारी न लजावहीं।
यहू दूर डारौ करौ तनकौ उघारौ कियौ दया रामानन्द हियौ पीपा न सुहावहीं॥ २८६॥

## ( ग ) श्रीपीपाजी तथा उनकी रानीको श्रीकृष्णदर्शन होनेकी कथा

श्रीस्वामीजीके अधिक आग्रह करने और शपथ दिलानेपर श्रीपीपाजी सीता सहचरीको अपने साथ ले चलनेके लिये तैयार हो गये। राजाको रोकनेके लिये रानियोंने एक ब्राह्मणको बहुत-सा धन देकर उसे प्रेरित किया, उसने कहा—मैं राजाको कदापि न जाने दूँगा। श्रीपीपाजीके समझानेपर भी उसने अपना हठ नहीं छोड़ा। ये भी रुकनेको नहीं तैयार हुए, तब उस ब्राह्मणने विष खा लिया और मर गया। तब श्रीस्वामीजीने उसे जीवित करके उसे और रानियोंको लौटा दिया। कालान्तरमें श्रीपीपाजी और श्रीसीता सहचरीजी सन्त-समाजके साथ आनन्ददायिनी श्रीद्वारकापुरी पहुँचे। कुछ दिनोंतक सभी लोग वहाँ रहे। जब श्रीस्वामीजी अपने शिष्य-सेवकोंको लेकर वहाँसे काशीपुरीको चले, तब श्रीपीपाजीने प्रार्थना करके कुछ दिन द्वारकामें रहनेकी आज्ञा माँगी और आज्ञा पाकर वहीं रह गये। रहते-रहते इन्हें भगवान्‌के दिव्य द्वारकापुरीके दर्शनोंकी ऐसी उत्कट उत्कण्ठा हुई कि आप समुद्रमें कूद पड़े। उसी क्षण श्रीकृष्णने अपने कुछ सेवकोंको इन्हें लिवा लानेके लिये भेजा, वे इन्हें सादर लिवा लाये। श्रीपीपाजीने दिव्य द्वारकाका दर्शन किया। भगवान् श्रीकृष्ण बड़े प्रेमसे मिले और फिर सीता सहचरीसमेत श्रीपीपाजी सानन्द सात दिनतक वहाँ रहे। सात दिन बाद भगवान् श्रीकृष्णने इन लोगोंको इस दिव्य द्वारकासे उस द्वारकाको जानेकी आज्ञा दी। परंतु ये वहाँसे जाना नहीं चाहते थे। तब श्रीश्यामसुन्दरने बड़े प्रेमसे कहा—मेरे जिस रूपके दर्शन तुमने किये हैं, उसीमें मनको दिये हुए तथा उसी रूपमाधुरीका पान किये हुए, वहाँ जाकर भी उसे ही देखते रहोगे, अतः विरहव्यथा न व्यापेगी। यदि तुमलोग नहीं जाओगे तो संसारमें 'ऐसे भक्त डूब गये' यह जो कलंक लग गया है, कैसे मिटेगा? इसके पश्चात् भगवान्‌के द्वारा दी गयी शंख-चक्रकी छापको तथा भगवान्‌की आज्ञा आपने स्वीकार की।

भगवान् स्वयं भक्तवर श्रीपीपा और सीता सहचरीको पहुँचानेके लिये चले। समुद्रके बाहरतक पहुँचाकर आप लौट आये। सपत्नीक श्रीपीपाजी जब समुद्रसे निकलकर तटपर आये तो लोगोंने एक विचित्र बात देखी कि आप दोनोंके वस्त्र सूखे हैं, परंतु हृदय प्रेमसे सराबोर है। जिन लोगोंने समुद्रमें कूदते हुए इन्हें देखा था, उन्होंने पहचान लिया और सभी लोग आकर आप दोनोंके पैरोंमें लिपट गये। श्रीपीपाजीने भगवान्‌की दी हुई शंख-चक्रकी छाप लोगोंके शरीरपर लगायी। द्वारकामें आपके दर्शनोंके लिये नित्य भारी भीड़ होने लगी, तब सीता सहचरीजीने श्रीपीपाजीको समझाकर कहा कि 'अब यहाँसे कहीं अन्यत्र चलो, यहाँ भजनमें बाधा हो रही है।' दोनों द्वारकासे चल दिये। छठे मुकामपर पहुँचते ही इन्हें पठान मुसलमान मिल गये। उन्होंने सीता सहचरीको छीन लिया। उसी समय भगवान् दौड़कर आ गये और दुष्टोंको मारकर सीता सहचरीको ले आये। इस प्रकार इनकी रक्षा करके और दर्शन देकर प्रभुने इन्हें आनन्दित किया।

*श्रीपीपाजी-दम्पतीको दिव्य द्वारका और भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनकी इस घटनाका श्रीप्रियादासजी महाराज अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—*

**जोपै यापै कृपा करी दीजै काहू संग करि मेरे नहीं रंग यामैं कही बार बार है।**
**सौंह को दिवाय दई लई तब कर धरि चले ढरि विप्र एक छोड़ै न विचार है॥**
**खायौ विष ज्यायौ पुनि फेरिकै पठायौ सब आयौ यों समाज द्वारावती सुखसार है।**
**रहे कोऊ दिन आज्ञा माँगी इन रहिबे की कूदे सिन्धु माँझ चाह उपजी अपार है॥ २८७॥**
**आये आगे लैन आप दिये हैं पठाय जन देखि द्वारावती कृष्ण मिले बहु भाग्य कै।**
**महल महल माँझ चहल पहल लखी रहे दिन सात सुख सकै कौन गाय कै॥**
**आज्ञा दई जाइबे की जाइबौ न चाहैं दिये पिये वह रूप देखौ मोहीं को जु जाइ कै।**
**भक्त बूड़ि गयो यह बड़ोई कलंक भयौ मेटौ तम अंक संक गही अकुलाइ कै॥ २८८॥**

**चले पहुँचायबे को प्रीति के अधीन आप बिन जल मीन जैसे ऐसे फिरि आये हैं।**
**देखि नई बात गात सूखे पट भीजे हिये लिये पहिचानि आनि पग लपटाये हैं॥**
**दई लै कै छाप पाप जगत के दूर करौ ढरौ कहूँ और कहि सीता समझाये हैं।**
**छठेई मिलान बन मैं पठान भेंट भई लई छीनि तिया कियो चैन प्रभु धाये हैं॥ २८९॥**

## (घ) पीपाजीद्वारा हिंसक सिंहको अहिंसक वैष्णव बनाना

श्रीपीपाने श्रीसीता सहचरीसे कहा—देखो, यहाँ कैसे-कैसे संकट आते हैं, अतः अच्छा होगा कि अब भी तुम घरको चली जाओ। श्रीसीता सहचरीने उत्तर दिया—भगवन्! हरि ही भयको हरनेवाले हैं, रक्षक हैं, वे ही रक्षा करेंगे। इसके उपरान्त दोनों उसी मार्गसे चले, जिसमें एक सिंह रहता था। जो बहुतोंको मारकर खा चुका था, परंतु इनके दर्शनसे उसका अन्तःकरण पवित्र हो गया। वह विनीत भावसे इनके निकट बैठ गया। तब इन्होंने उसे शिष्य करके समझाया कि अब तुम वैष्णव हो गये, अतः किसीकी हिंसा न करना। इसके बाद वे दूसरे गाँवमें पहुँचे। वहाँ आपने शेषशायी भगवान्‌के दर्शन किये और दुकानदारके न देनेपर सूखे बाँसोंको हरा करके एक हरा बाँस भगवान्‌को अर्पण किया। वहाँसे चलकर आप परम प्रेमी भक्त श्रीचीधरजीके यहाँ पहुँचे।

*श्रीप्रियादासजीने श्रीपीपाजीद्वारा सिंहको वैष्णव बना लेनेकी इस घटनाका वर्णन इस प्रकार किया है—*

**अभू लगि जावो घर कैसे कैसे आवै डर बोली हरि जानियै न भाव पै न आयो है।**
**लेत हौं परिच्छा मैं तो जानौं तेरो सिच्छा ऐपै सुनि दृढ़ बात कान अति सुख पायो है॥**
**चले मग दूसरे सु तामें एक सिंह रहै आयो वास लेत शिष्य कियो समझायो है।**
**आये और गाँव सेषसाई प्रभु नांव रहै करे बाँस हरे ढरे चीधर सुहायो है॥ २९०॥**

## (ङ) श्रीचीधरदम्पतीकी सन्तनिष्ठा

भक्त चीधरजी और उनकी धर्मपत्नीने देखा कि परम भागवत श्रीपीपाजी अपनी स्त्रीसमेत पधारे हैं तो वे परम प्रसन्न हुए, परंतु घरमें खाने-पीनेका कुछ भी सामान नहीं था; क्योंकि इनकी वृत्ति अत्यन्त अपरिग्रही थी। श्रीचीधरजीकी स्त्रीने अपना एकमात्र वस्त्र दे दिया। श्रीचीधरजी उसे बेचकर सीधा-सामान ले आये और श्रीपीपाजीके सामने रखकर बोले—'महाराज! रसोई कीजिये और भगवान्‌का भोग लगाइये।' वस्त्र बिक जानेके कारण भगतिनका शरीर नग्न हो गया था, अतः श्रीचीधरने उन्हें कोठरीमें छिपा दिया। श्रीसीता सहचरीजीने रसोई तैयार कर दी, भगवान्‌का भोग लग गया। श्रीपीपाजीने श्रीचीधर भक्तसे कहा—भगतिनको बुला लाइये, आप और हम सब एक साथ ही बैठकर प्रसाद पायेंगे। श्रीचीधरजीने कहा—आपलोग प्रसाद पायें, उसे सीथ—प्रसाद प्रिय है। वह बादमें पा लेगी। तब श्रीपीपाजीने सीता सहचरीसे कहा—तुम भीतर जाकर उन्हें बुला लाओ और उन्हें भी साथ ही प्रसाद पवाओ। तब वे भीतर गयीं तो उन्होंने जाकर देखा कि वह नग्न बैठी हैं।

सीता सहचरीजीने जब भगतिनको नग्न देखा तो पूछा—कहिये, क्या बात है, आपका शरीर उघारा क्यों है? तब श्रीचीधरजीकी स्त्रीने कहा—हमलोगोंको सन्त-सेवा हृदयसे अत्यन्त प्रिय लगती है। अतः हमारा समय इसी प्रकार बीतता है। जब सन्त भगवान् पधारते हैं, तब उनका दर्शन-सत्संग एवं स्वागत करके हमें अपार सुख होता है। उस परमानन्दके सामने यह नश्वर शरीर ढका है अथवा उघारा है, इसकी क्या चर्चा की जाय? सीता सहचरीजीने जब ये बातें सुनीं, तो सब रहस्य उनकी समझमें आ गया। इसके उपरान्त सीता सहचरीजीने अपनी धोतीमेंसे आधी फाड़कर उन्हें दिया। उसे उन्होंने पहन लिया, तब उनका

हाथ पकड़कर उन्हें घरसे वहाँ लिवा लायीं। सबोंने एक साथ बैठकर प्रसाद पाया। सन्त-सेवाके प्रति निष्ठाकी इस अनोखी घटनाको सीता सहचरीने बादमें शयन करते समय पीपाजीको सुनाया।*

*श्रीचीधरजी एवं उनकी पत्नीकी इस अद्भुत सन्त-सेवाका वर्णन श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार किया है—*

**दोऊ तिया पति देखैं आये भागवत ऐपै घर की कुगति रति साँची लै दिखाई है।**
**लहँगा उतारि बेचि दियौ ताकौ सीधौ लियौ करो अजू पाक बधू कोठीमें दुराई है॥**
**करी लै रसोई सोई भोग लगि बैठे कह्यो आवौ मिलि दोई कही पाछे सीथ भाई है।**
**वाहू को बुलावौ ल्यावौ आनिकै जिमावौ तब सीता गई ठौर जाइ नगन लखाई है॥ २९१॥**
**पूछें कहौ बात ए उघारे क्यों हैं गात कही ऐसे ही बिहात साधु सेवा मन भाई है।**
**आवैं जब सन्त सुख होत है अनन्त तन ढँक्यो कै उघारौ कहा चरचा चलाई है॥**
**जानि गई रीति प्रीति देखी एक इनही में हमहूँ कहावैं ऐ पै छटा हूँ न पाई है।**
**दियौ पट आधौ फारि गहि कै निकारि लई भई सुखसैल पाछे पीपा सों सुनाई है॥ २९२॥**

## (च) श्रीसीता सहचरीजीकी सन्तसेवाका दृष्टान्त

सपत्नीक भक्त श्रीचीधरजीकी सन्त-सेवा-निष्ठासे प्रभावित होकर सीता सहचरीजीने अपने पतिदेवसे कहा—अब तो हमारा धर्म यह है कि हम अपना तन बेचकर भी सन्त-सेवा करें। ऐसा निश्चयकर वे दोनों वहाँ जाकर बैठे, जहाँ अनाजकी बड़ी मण्डी थी। श्रीसीता सहचरीकी अपार सुन्दरतासे आकृष्ट हो करके वे लोग एकत्र हो गये जो रूप निरखनेके लोभी थे। समीप आकर जब उन लोगोंने उनको देखा तो उनके नेत्रोंका रोग अर्थात् उनकी विषय-दृष्टि नष्ट हो गयी। लोगोंने श्रीसीता सहचरीजीसे पूछा कि आप कौन हैं? आपके साथ ये सज्जन आपके कौन हैं? इन्होंने उत्तर दिया—हम सन्त सेवाके लिये बिकनेको प्रस्तुत हैं, हमारे घर-द्वार कुछ भी नहीं है और हमारे साथमें यह हमारा सेवक है। यह सुनकर वे सब स्तब्ध खड़े-के-खड़े ही रह गये। फिर जिन लोगोंने उन्हें द्वारकामें देखा था, उन्होंने पहचानकर बताया—अरे! ये परमभक्त श्रीपीपाजी और ये उनकी धर्मपत्नी सीता सहचरीजी हैं। तब तो लोगोंने उनके आगे अन्न-वस्त्र और मुहरोंके ढेर लगा दिये। श्रीपीपाजीने वह सब सामान भक्त चीधरके यहाँ भेज दिया।

*श्रीसीता सहचरीजीकी इस अद्भुत सन्त-सेवा-निष्ठाका श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार वर्णन किया है—*

**करैं वेश्या कर्म अब धर्म है हमारो यही कही जाय बैठी जहाँ नाजनि की ढेरी है।**
**घिरि आये लोग जिन्हें नैननिकौ रोग लखि दूर भयो सोग नेकु नीके हू न हेरी है॥**
**कहैं तुम कौन? 'वारमुखी नहीं भौन संग भरुवा' सु गहैं मौन सुनि परी बेरी है।**
**करी अन्नरासि आगे मुहर रुपैया पागे पठै दई चीधर के तब ही निबेरी है॥ २९३॥**

## (छ) श्रीपीपाजीको स्वर्णमुहरोंकी प्राप्ति और उनका त्याग

श्रीचीधर भक्तसे आज्ञा माँगकर उनसे विदा लेकर सीता सहचरीसमेत श्रीपीपाजी टोंड़े ग्राम आये और गाँवसे बाहर कुटी बनाकर रहने लगे। एक दिन आप स्नान करनेके लिये गये थे तो वहाँ एकाएक आपको मुहरोंसे भरे हुए कई मटके दिखायी पड़े। उस मिले हुए धनको त्यागकर आप चले आये। रातमें सीता सहचरीजीसे आपने बताया कि उस सरोवरपर स्वर्णमुद्राओंसे भरे मटके मैं छोड़ आया हूँ। सुनकर उन्होंने कहा—अब आप उस तालाबपर स्नान करने मत जाइयेगा। संयोगवश चोरी करनेकी इच्छासे वहीं कहीं कुटीके पास छिपे हुए चोरोंने यह

* भक्तिभावका अतिरेक होनेके कारण भक्तमालमें कुछ ऐसी चमत्कारिक घटनाएँ मिलती हैं, जिनपर सामान्यजनोंको विश्वास करना कठिन है तथा आजके युगमें वे अनुकरणीय भी प्रतीत नहीं होती हैं।—सम्पादक

बात सुन ली। वे तुरंत उसी सरोवरपर गये और जाकर देखा तो उन पात्रोंमें साँप भरे हुए हैं। चोरोंने समझा कि वे हमें साँपोंसे कटवाकर मरवा डालनेके लिये ही ऐसी बातचीत आपसमें कर रहे थे। बदला लेनेकी भावनासे उन चोरोंने मुहरभरे सभी मटके उखाड़े और श्रीपीपाजीकी कुटीमें पटककर भाग गये। जब श्रीपीपाजीने गिना, तब मालूम पड़ा कि सात सौ बीस सोनेकी मुहरें हैं और एक-एक मुहर तौलमें पाँच-पाँच तोलेकी है।

*इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—*

**आज्ञा माँगि टोंड़े आये कभूँ भूखे कभूँ घाये औचक ही दाम पाये गयो हो स्नान को।**
**मुहरनि भांड़ो भूमि गाड़ो देखि छांड़ि आयौ कही निसि तिया बोली जावौ सर आन को॥**
**चोर चाहैं चोरी करैं ढरे सुनि वाही ओर देखैं जो उघारि सांप डारैं हतैं प्रान को।**
**ऐसे आय परीं गनी सात सत बीस भईं तोलै पाँच बाँट करैं एक के प्रमान को॥ २९४॥**

## (ज) राजा सूर्यसेनमलका पीपाजीका शिष्य बनना

श्रीपीपाजी उस धनसे साधु-महात्माओंको निमन्त्रण देकर बड़े-बड़े विशाल भण्डारे करने लगे। असंख्य सन्त प्रसाद पाने लगे। इस प्रकार खिला-पिलाकर सम्पूर्ण धनको श्रीपीपाजीने तीन दिनमें समाप्त कर दिया। आपकी इस विशाल कीर्तिको टोंड़ेके राजा सूर्यसेनमलने सुना तो वह दर्शन करनेके लिये आया और दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुआ। फिर बड़ी नम्रतासे राजाने प्रार्थना की और कहा—आप मुझे शिष्य बना लीजिये। जैसी आज्ञा मुझे देंगे, मैं वही करूँगा। तब आपने आज्ञा दी कि यदि ऐसा है तो आप अपनी सब सम्पत्ति और रानियोंको यहाँ लाकर मुझको अर्पण कर दो। राजाने राज्य और रानियाँ उन्हें अर्पण कर दीं।

इस प्रकार श्रीपीपाजीने राजाकी परीक्षा लेकर उसको मन्त्र-दीक्षा दी। फिर सम्पत्ति और रानियोंको लौटाकर कहा कि सम्पूर्ण राज्य तथा ये रानियाँ आजसे अब हमारी हैं, इनमें अब ममता न रखना। मेरी आज्ञासे इनका पालन-पोषण करना। रानियोंको आज्ञा दी कि सन्तोंकी सेवा करना। इसके बाद राजाने बहुत अनुनय-विनय करके गुरुदेवको एक घोड़ा और सन्त-सेवार्थ बहुत-सा धन भेंट किया। आपने उसमेंसे कुछ धन रख लिया। शेष लौटा दिया। गुरुदेवके उपदेशानुसार राजाने अहंकारको त्याग दिया और सभी जीव-जन्तुओंको अपनेसे बड़ा मानने लगा। यह समाचार सुनकर राजाके भाई-बन्धु जल-भुन गये, परंतु महान् प्रतापी सीतापति श्रीपीपाजीसे वे कुछ भी कह न सके। इसी बीच एक व्यापारी बैलोंको खरीदनेके लिये टोंड़े गाँवको आया। राजाके भाइयोंने उसे बहकाया कि पीपा भगत बैलोंके बहुत बड़े व्यापारी हैं, उनके पास बहुत अच्छे-अच्छे बैल हैं, वहीं चले जाओ।

*राजा सूर्यसेनके पीपाजीका शिष्य बननेकी इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार वर्णन किया है—*

**जोई आवै द्वार ताहि देत हैं अहार और बोलिकै अनंत संत भोजन करायो है।**
**बीते दिन तीन धन खाय प्याय छीन कियौ लियौ सुनि नाम नृप देखिबेको आयो है॥**
**देखिकै प्रसन्न भयौ, नयौ, देवौ दीक्षा मोहि, दीक्षा है अतीत करैं आप सो सुहायो है।**
**चाहो सोई करौं ह्वै कृपाल मोको ढरौ, अजू धरौ आनि संपति औ रानी जाइ ल्यायौ है॥ २९५॥**
**करिकै परीक्षा दई दीक्षा संग रानी दई भई ए हमारी करौ परदा न संतसों।**
**दीयौ धन घोरा कछू राख्यौ दै निहोरा भूप मान तन छोरा बड़ौ मान्यौ जीवजंतसों॥**
**सुनि जरि बरि गये भाई सेनसूरज के ऊरज प्रताप कहा कहैं सीता कंतसों।**
**आयो बनिजारौ मोल लियो चाहै खैलनिकौं दियो बहकाय कहौ पीपाजू अनंतसों॥ २९६॥**

## (झ) पीपाजीके जीवनकी विलक्षण घटनाएँ

लोगोंके बहकानेमें आकर वह व्यापारी श्रीपीपाजीके पास आया और थैली खोलकर रुपये इनके सामने

रखते हुए बोला—मैं बैल लेने आया हूँ, मुझे बैल दीजिये। श्रीपीपाजीने कहा—आपको जितने बैल चाहिये, उतने मिल जायँगे, परंतु आज अभी यहाँ नहीं हैं। गाँवमें चरनेके लिये भेज दिये गये हैं। कल दोपहरको आकर आप ले लीजियेगा। इसके बाद वह व्यापारी तो रुपये देकर चला गया। आपने सन्तोंको बुलवाकर भण्डारा महोत्सव कर दिया। उसीमें सब रुपये खर्च कर दिये। वह बनजारा निर्धारित समयपर आ गया और बोला—'मुझे बैल दीजिये। बैल कहाँ हैं ?' उस समय पंगत हो रही थी, सैकड़ों सन्त बैठे प्रसाद पा रहे थे। श्रीपीपाजीने पंगतकी ओर हाथसे संकेत करके कहा—'यही सब मेरे बैल (धर्मस्वरूप सन्त) हैं, मैं इन्हींका व्यापार करता हूँ। इनमेंसे जितने आपको चाहिये, आप उतने ले जाइये।' उस व्यापारीने सन्तोंके दर्शन किये, उसके हृदयमें भक्तिका भाव भर गया। वह उसी समय बाजार गया और वस्त्र लाकर उसने सभी साधुओंको पहनाया।

एक दिन श्रीपीपाजी घोड़ेपर चढ़कर स्नान करनेके लिये सरोवरपर गये। घोड़ेको वहीं छोड़कर आप स्नान करने लगे। इतनेमें ही दुष्ट चोरोंने आकर घोड़ा पकड़ लिया और उसे छिपाकर बाँध दिया। आप जब स्नान करके आये तो घोड़ा ज्यों-का-त्यों वहींपर खड़ा मिला। मानो उसीको ले आये हों। घोड़ेपर चढ़कर आप अपने आश्रममें आ गये। जब चोरोंने यह चमत्कार देखा तो वे डर गये और घोड़ेको ले आये। तब वह घोड़ा नहीं दिखायी पड़ा। उन्होंने चोरी छोड़कर शिष्यता स्वीकार की।

***इन घटनाओंका वर्णन भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने एक कवित्तमें इस प्रकार किया है—***

**बोल्यो बनिजारो दाम खोलि खैला दीजियै जू, लीजियै जू आय गाँव चरन पठाये हैं।**
**गये उठि पाछे बोलि संतनि महोच्छौ कियौ आयौ वाही समैं कही लेहु मन भाये हैं॥**
**दरसन करि हिये भक्ति भाव भर्‍यौ आनि आनिकै बसन सब साधु पहिराये हैं।**
**और दिन न्हान गये घोड़ा चढ़ि छोड़ि दियौ लियौ बांध्यौ दुष्टननि आयौ मानौ ल्याये हैं॥ २९७॥**

## (ञ) श्रीपीपादम्पतीके सन्तनिष्ठाकी अद्भुत कथा

एक बार श्रीपीपाजी राजा सूर्यसेनमलके यहाँ एक झगड़ेका फैसला करनेके लिये गये थे। आपके चले जानेके बाद कुटीपर कुछ सन्तजन पधारे। संयोगवश उस दिन कुटीमें अन्न-धन कुछ भी नहीं था। सन्त-सेवाके लिये कहीं जाकर कुछ ले आऊँ, ऐसा विचारकर श्रीसीता सहचरीजी बाजारको गयीं। वहाँ इन्हें देखकर एक दुराचारी बनियेने बुलाकर पूछा—आपने सामानकी आवश्यकता बतायी। तब उसने सब सीधा-सामान देकर कहा—'आप रातको मेरे पास अवश्य आइये।' सन्त-सेवाकी अपरिहार्य आवश्यकताके कारण सीता सहचरीजी मौन ही रहीं और आवश्यक सामग्री लेकर कुटीपर आ गयीं। रसोई हुई और भोग लगाकर जब महात्मालोग भोजन कर रहे थे, उसी समय श्रीपीपाजी पधारे। उन्होंने पूछा कि सामान कहाँसे आया तो श्रीसीता सहचरीजीने सब बात बतला दी। उसे सुनकर श्रीपीपाजीने उसकी सन्त-सेवा-निष्ठाकी बड़ी प्रशंसा की। सायंकाल सीतासहचरीजीको साथ लेकर वे स्वयं उस बनियेके यहाँ पहुँचे। इनके दर्शन-चिन्तनसे एवं अन्नके सन्त-भगवन्तकी सेवामें लगनेसे उसकी बुद्धि शुद्ध हो चुकी थी, अतः मुखपर दृष्टि न पड़कर उस बनियेकी दृष्टि इनके चरणोंपर पड़ी। इनके सूखे श्रीचरणोंको देखकर उसने पूछा—माताजी! आप यहाँतक कैसे आयी हैं? इन्होंने उत्तर दिया—'स्वयं श्रीस्वामीजी अपने कन्धेपर बिठाकर लाये हैं।' फिर उसने पूछा—'वे कहाँ हैं?' आपने कहा—'तुम जाकर देखो, वे बाहर ही होंगे।' यह सुनकर वह सीता सहचरीजीके चरणोंमें गिर पड़ा और रोने लगा। फिर बाहर आकर श्रीपीपाजीके चरणोंको पकड़कर बोला—'आप कृपा करके हमारी रक्षा करो, आप तो जीवमात्रको सुख देनेवाले सन्त हैं।' श्रीपीपाजीने कहा—'आप अपने मनमें किसी प्रकारकी शंका एवं भय न करें। निःसंकोच एवं निडर होकर अपना काम करें। आपने हमलोगोंके साथ बड़ा भारी उपकार किया है। जिस धनके वास्ते सहोदर भाई भी परस्पर लड़ते और मरते-मारते हैं। वह धन आपने बिना रुक्का लिखाये ही सन्तोंकी

सेवाके लिये दे दिया।' वह बनिया लज्जा और ग्लानिके मारे दबा मरा जा रहा था। वह चाहता था कि धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ तो अच्छा है। श्रीपीपाजीने उसे इस प्रकार दुखी देखा तो उन्हें बड़ी दया आयी। उसे दीक्षा दी, वह भगवद्भक्ति पाकर कृतार्थ हुआ।

*सन्तसेवाके प्रति पीपाजी-दम्पतीके इस दिव्यभाव और दुष्ट बनियेके हृदयपरिवर्तनकी इस घटनाका श्रीप्रियादासजी महाराजने अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—*

**गये हे बुलाये आप पाछे घर संत आये अन्न कछू नाहिं कहूँ जाय करि ल्याइयै।**
**विषयी बनिक एक देखि कै बुलाइ लई दई सब सौंज कही सही निसि आइयै॥**
**भोजन करत माँझ पीपा जू पधारे पूछी वारे तन प्रान जब कहि कै सुनाइयै।**
**करि कैं सिंगार सीता चली झुकि मेह आयो कांधे पै चढ़ायौ बपु बनिया रिझाइयै॥ २९८॥**
**हाट पै उतारि दई द्वार आप बैठे रहे चहे सूके पग माता कैसे करि आई हौ।**
**स्वामीजू लिवाय ल्याये, कहाँ है? निहारौ जाय आय पांय पर्‍यो डर्‍यो राखौ सुखदाई हौ॥**
**मानौ जिनि संक काज कीजिये निसंक धन दियो बिन अंक जापै लरैं मरैं भाई हौ।**
**मर्‍यौ लाज भार चाहै धसौं भूमि फार दृग बहै नीरधार देखि दई दीक्षा पाई हौ॥ २९९॥**

## (ट) राजा सूर्यसेनमलको ज्ञान प्रदान करना

श्रीपीपाजीके सीता सहचरीको कन्धेपर चढ़ाकर बनियेके यहाँ पहुँचानेकी बात चलते-चलते राजा सूर्यसेनमलके कानोंमें पड़ी। राजाकी भरी सभामें भक्तिविमुख ब्राह्मणोंने श्रीपीपाजीकी निन्दा करते हुए कहा—'उनका यह आचरण धर्मशास्त्रके बिलकुल विरुद्ध है।' राजाके मनमें भी यही आया, इसलिये गुरुदेवके श्रीचरणोंमें भी उसकी प्रीति घट गयी। यह जानकर समर्थ श्रीपीपाजी उसे समझाने एवं उसके हृदयमें भक्ति सुस्थिर करने चले। राजद्वारपर पहुँचकर द्वारपालोंके द्वारा अपने आगमनकी सूचना भेजी। भीतरसे राजाने कहला भेजा कि इस समय पूजा कर रहे हैं। कुछ देर बाद आयेंगे।' यह सुनकर श्रीपीपाजीने कहा—'राजा बड़ा मूर्ख है, मोचीके घरपर बैठकर जूते गाँठ रहा है और कहता है कि मैं सेवा-पूजा कर रहा हूँ।' राजाने द्वारपालोंके मुखसे जब यह बात सुनी तो दौड़कर आया और चरणोंमें गिर पड़ा। वह आश्चर्यचकित था, वस्तुतः मनसे मोचीके घरपर पहुँच गया था।

उस राजाके महलमें एक अत्यन्त रूपवती, परंतु बन्ध्या रानी थी। उसमें राजाकी विशेष आसक्ति जानकर श्रीपीपाजीने कहा—'तुम शीघ्र उस रानीको मेरे पास ले आओ।' राजा महलकी ओर चला, परंतु उसे बड़ा शोक और संकोच हो रहा था कि मैं रानीको कैसे लाऊँ। चलते समय उसके पैर डगमगा रहे थे। रनिवासमें घुसते ही उसे भयंकर सिंह दिखायी पड़ा। उसे देखकर राजा डर गया और वहीं खड़ा हो गया। पीछे लौटनेमें बुराई और आगे जानेका साहस नहीं रहा। फिर वह सिंह गायब हो गया। राजा किसी प्रकार रानीके पास पहुँचा तो उसके पास अभीका जन्मा हुआ एक बालक दिखायी पड़ा। अब राजाकी समझमें आया कि गुरुदेव भगवान्‌में कितनी सामर्थ्य है। वहीं पृथ्वीपर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके राजाने स्तुति की—'हे प्रभो! हम आपकी मायाको नहीं जान सकते हैं। आपके सिंह एवं शिशु दोनों ही रूप वन्दनीय हैं।' राजाकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर निज स्वरूपसे श्रीपीपाजी वहीं प्रकट हो गये और फटकारते हुए बोले—कहो, वह पहलेवाला रंग कहाँ गया, जब तुमने लोकलज्जा और मोहका त्याग करके सारा राज्य और रानियाँ मुझे अर्पण की थीं और मेरे शिष्य हुए थे।

*इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—*

**चलत चलत बात नृपति श्रवन परी भरी सभा विप्र कहैं बड़ी विपरीति है।**
**भूप मन आई यह निपट घटाई होत भक्ति सरसाई नहीं जानै घटी प्रीति है॥**

**चले पीपा बोध दैन द्वार ही ते सुधि दई लई सुनि कही आवौं करौं सेवारीति है।**
**बड़ौ मूढ़ राजा मोजा गाँठै बैठ्यो मोची घर, सुनि दौरि आयो रहे ठाढ़े कौन नीति है॥ ३००॥**
**हुती घर माँझ बाँझ रानी एक रूपवती माँगी वही ल्यावौ बेगि चल्यौ सोच भारी है।**
**डग मग पाँव धरै, पीपा सिंह रूप करै ठाढ़ौ देखि डरै इत आवै आप ख्वारी है॥**
**जाय तौ बिलाय गयो तिया ढिग सुत नयौ नयौ भूमिपर कला जानी न तिहारी है।**
**प्रगट्यौ सरूप निज खीझिकै प्रसंग कह्यौ, कहाँ वह रंग? शिष्य भयौ लाज टारी है॥ ३०१॥**

## (ठ) दुराचारी भगवद्विमुखोंको सन्तभाव प्रदान करना

अब जब राजाका अन्त:करण पवित्र हो गया, तब श्रीपीपाजीने उसे अनन्य भक्तिका उपदेश दिया। एक दिन एक साधुरूपधारी दुराचारी श्रीपीपाजीके पास आकर बोला—'आप अपनी स्त्रीको मुझे एक रातके लिये दे दें।' आपने कहा—'ले जाओ।' उसने सीता सहचरीजीसे कहा—'आप मेरे संग दौड़कर चलो।' आज्ञाके अनुसार ये उसके साथ दौड़ती हुई चलने लगीं। परंतु दौड़ते-दौड़ते सारी रात बीत गयी फिर भी उसका घर नहीं आया। प्रात:काल हो गया। ये बैठ गयीं और बोलीं कि अब मैं आपके साथ एक पग भी नहीं चल सकती हूँ; क्योंकि मेरे स्वामीजीकी यह आज्ञा थी कि इनके साथ एक रात रहना। सो वह रात बीत गयी। उसने सोचा कि थक गयी हैं, अतः पालकी या गाड़ी ले आऊँ, उसमें बिठाकर ले चलूँ। वह गाँवमें गया तो घर-घरमें श्रीसीता सहचरीके दर्शन हुए। तब उसकी आँखें खुलीं। वहीं आकर बोला—'माताजी! चलो, आपको स्वामीजीके पास पहुँचा आयें।' आश्रममें आकर वह श्रीपीपाजीके और श्रीसीता सहचरीजीके पैरोंमें गिर पड़ा, उसके मनसे कामवासना दूर हो गयी और सन्त-भगवन्तकी भक्तिमें दृढ़भाव हो गया।

एक बार चार कामी-कुटिल दुष्टोंने सुन्दर माला-तिलक आदि धारण कर लिया और श्रीपीपाजीके निकट आकर बड़ी नम्रतासे बोले—'आप सच्चे सन्तसेवी हैं, आप अपनी स्त्री हमें दे दीजिये।' श्रीपीपाजीने उन्हें कामभावसे व्याकुल होकर प्रतीक्षा करते देखा तो कहा—'आपलोग कोठेमें जाइये।' जैसे ही ये लोग कोठेके द्वारपर गये, वैसे ही एक सिंहनी इन सबके ऊपर इन्हें फाड़ डालनेके लिये झपटी। परंतु उसने साधुवेष जानकर फाड़ा नहीं। वे चारों भयभीत होकर भागे और श्रीपीपाजीसे नाराज होकर बोले—'तुमने तो वहाँ हमलोगोंको मरवानेके लिये सिंहनी बैठा रखी है, तुम साधु नहीं दुष्ट मालूम पड़ते हो।' हँसकर आपने कहा—'आपलोग अपने हृदयकी कुत्सित भावनाओंको देखिये। अनधिकार भोग-भावना ही सिंहनी है। सद्भावसे पुनः जाकर देखिये।' उन लोगोंने फिर जाकर देखा तो सीता सहचरीजी विराजमान हैं। वे सब चरणोंमें पड़कर रोने एवं अपराध क्षमा करनेकी प्रार्थना करने लगे। श्रीपीपाजीकी बातको सत्य मानकर वे सब उनके शिष्य बन गये।

***श्रीप्रियादासजीने उक्त घटनाओंका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—***

**कियौ उपदेश नृप हृदैमें प्रवेश कियौ लियौ वही पन आप आये निज धाम है।**
**बोल्यौ एक नाम साधु एक निसि देहु तिया, लेहु, कही भागौ, संग भागी सीता वाम है॥**
**प्रात भये चलैं नाहिं, रैन ही की आज्ञा प्रभु चल्यौ हारि आगे घर घर देखो ग्राम है।**
**आयौ वाही ठौर चलो माता पहुँचाय आवौं, आय गहे पाँव भाव भयौ गयौ काम है॥ ३०२॥**
**विषयी कुटिल चारि साधु भेष लियो धारि कीनी मनोहारि कही तिया निज दीजियै।**
**करिकै सिंगार सीता कोठे माँझ बैठीं जाय चाहैं मग आतुर ह्वै अजू जाहु लीजियै॥**
**गये जब द्वार उठी नाहरी सुफारिबे कौं फारै नहीं बानौ जानि आय अति खीजियै।**
**अपनौ विचारौ हियौ कियौ भोग भावनाकौ मानि साँच भये शिष्य प्रभु मति धीजियै॥ ३०३॥**

## (ड) ग्वालिनको शिष्य बनाना

श्रीपीपाजीके यहाँ विराजमान साधु-सन्तोंने एक दिन दही पानेकी इच्छा प्रकट की कि आज तो श्रीरघुनाथजीका दहीभोग आरोगनेका मन है। उसी समय एक ग्वालिन दही बेचती हुई उधर आयी। इससे यह जाना गया कि भगवान् अपने भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करते हैं। श्रीपीपाजीने दहीका मूल्य पूछा तो उस ग्वालिनने तीन आना बताया। परंतु उस समय श्रीपीपाजीके पास एक भी पैसा नहीं था। उन्होंने उससे कहा—तू दही दे दे, पैसे अभी नहीं हैं, आज जो भी कुछ भेंटमें आ जायगा, वही तुझको मिल जायगा। यदि कुछ न आया तो तुम्हारा दही ही भेंट समझा जायगा। ग्वालिनने स्वीकार कर लिया। दहीका भोग लगा, साधुओंने शक्कर मिलाकर भोग लगाया और बड़े प्रेमसे दही पिया। उसी समय श्रीपीपाजीका एक शिष्य आया और उसने एक मोतीमालाके समेत बहुत-सा धन भेंट किया। इन्होंने मोतीमाला और सम्पूर्ण धन ग्वालिनको दे दिया। वह उस धनको घर लायी, उसमेंसे कुछ थोड़ा अपने पास रखा, शेषको भक्त-भगवन्त-सेवामें खर्च करके श्रीपीपाजीकी शिष्या बन गयी। ऐसे ही अनेकविध चरित्र थे पीपाजीके।

***श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—***

**गूजरी को धन दियौ पियौ दही संतनि नै, ब्राह्मनकौ भक्त कियौ देवी दी निकारिकै।**
**तेली कों जिवायो, भैंस चोरनिपै फेरि ल्यायौ, गाड़ी भरि आयौ, तन पाँच ठौर जारिकै॥**
**कागद लै कोरो कर्‍यौ बनियांको सोक हर्‍यौ, भर्‍यौ घर त्यागि, डारी हत्या हूँ उतारिकै।**
**राजा कौ औसेर भई, सन्त कौ जु विभौ दई, लई चीठी मानि गये श्रीरंग उदारिकै॥ ३०४॥**

## (ढ) श्रीरंगदासको भक्तिका मर्म समझाना

एक बार श्रीपीपाजी श्रीअनन्तानन्दस्वामीके शिष्य श्रीरंगजीके यहाँ पहुँचे, उस समय वे भगवान्‌का मानसी पूजन कर रहे थे। श्रीपीपाजी उनकी पौरपर बैठे रहे। श्रीरंगजी मानसी-पूजामें भगवान्‌का शृंगार कर रहे थे। पहले मुकुट धारण कराकर तब फूलोंकी माला पहना रहे थे। वह किंचित् छोटी होनेसे मुकुटमें अटक रही थी। उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि कैसे पहनाऊँ? श्रीपीपाजीका मानसी-सेवामें प्रवेश था, अतः बाहरसे ही कहा कि गाँठ खोलकर धारण करा दीजिये। श्रीरंगजीने ऐसा ही किया। फिर तुरंत ही विस्मित होकर आँख खोलकर इधर-उधर देखने लगे कि किसने इतनी गुप्त भावनाको प्रत्यक्ष देखकर मुझे उपाय बताया है। जब वहाँ कोई नहीं दिखायी पड़ा तो उत्सुकतावश बाहर आये। परम तेजोमय दिव्य भव्य, प्रसन्न मुख श्रीपीपाजीको देखकर श्रीरंगनाथजीने पूछा—आप कौन हैं, कृपा करके अपना नाम बताइये? श्रीपीपाजीने मुसकराकर कहा—सन्तोंसे इस प्रकार कुछ पूछनेकी विधि नहीं है। यह सुनकर श्रीरंगजी बड़े लज्जित हुए और समझ गये कि यह कोई परम ज्ञानवान् सिद्ध पुरुष हैं। अतः गीतोक्त विधिसे पुनः परिचय पूछा। जब श्रीपीपाजीने अपना नाम, ग्राम बताया तो सुनते ही वह इनके श्रीचरण-कमलोंमें लोट-पोट हो गये। इसके बाद वे हाथ जोड़कर बड़ी विनम्रतापूर्वक बोले—प्रभो! मेरा मन तो यह था कि जब आप आयेंगे तो मैं गाजे-बाजेके साथ चलकर आपकी अगवानी करूँगा। परंतु आप तो बिना किसी पूर्व सूचनाके एकदम द्वारपर ही आ गये। आप कृपा करके बागमें पधारें, मैं आपकी अगवानी करने चलूँगा। श्रीपीपाजीने कहा—अरे भाई! अब तो हम घरपर आ ही गये, अब अगवानीकी क्या जरूरत रह गयी? उन्होंने कहा—फिर तो महाराज, मेरी अभिलाषा अपूर्ण ही रह जायगी। अन्तमें उनके प्रेमसे हारकर श्रीपीपाजी घरसे एक कोस दूर बागमें जाकर विराजे। श्रीरंगजी खूब बाजे बजवाते हुए, मुहरें लुटाते हुए, प्रेमोन्मत्त होकर नृत्यगान करते हुए पालकी लेकर इनको लिवाने चले। श्रीपीपाजीने कहा कि पालकीपर तो हमारे श्रीसद्गुरुदेव श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजी चलते हैं, भला मैं पालकीपर कैसे चल सकता हूँ। यदि आपका ऐसा ही भाव है तो श्रीस्वामीजीकी छविको पालकीपर पधराकर ले चलें, मैं पैदल चलूँगा। ऐसा ही हुआ।

श्रीपीपाजी उनके प्रेमको देखकर एक महीनेतक उनके घर रहे। श्रीपीपाजीके सत्संगसे सम्पूर्ण गाँव श्रीरामरंगमें रँग गया। इसी प्रकार आपने दो स्त्रियोंको भक्तिका चेत कराया, ब्राह्मणकन्याका विवाह कराया, इत्यादि विविध चरित्रोंको प्रदर्शितकर पीपाजीने भक्तिका विस्तार किया। उनके उदात्त चरित्रका महान् विस्तार है।

*उपर्युक्त घटनाओंका श्रीप्रियादासजी महाराजने अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—*

**श्रीरंगके चेत धर्यौ तिया हिय भाव भर्यौ ब्राह्मणको शोक हरयौ राजा पै पुजाय कै।**
**चँदवा बुझाय दियौ तेली को लै बैल दियौ दियौ पुनि घर माँझ भयौ सुख आय कै॥**
**बड़ोई अकाल पर्यौ जीव दुख दूरि कर्यौ पर्यौ भूमि गर्भ धन पायौ दै लुटाय कै।**
**अति विसतार लियौ कियौ है विचार यह सुनै एक बार फेरि भूलै नहीं गाय कै॥ ३०५॥**

## श्रीधन्नाजी

**घर आए हरिदास तिनहि गोधूम खवाए।**
**तात मात डर खेत थोथ लांगलहिं चलाए॥**
**आस पास कृषिकार खेत की करत बड़ाई।**
**भक्त भजे की रीति प्रगट परतीति जु पाई॥**
**अचरज मानत जगत मैं कहुँ निपज्यौ कहुँवै बयो।**
**धन्य धना के भजन कों बिनहिं बीज अंकुर भयो॥ ६२॥**

परम पुण्यवान्, प्रशंसनीय भक्त श्रीधन्नाजीकी भगवद्भागवत-सेवाकी हम सराहना करते हैं, जिनके खेतमें बिना बीज बोये ही अंकुर जमा। घरपर वैष्णवोंके आनेपर बोनेके लिये रखा हुआ बीजका गेहूँ उन्हें खिला दिये और माता-पिताके डरसे खेतमें खाली-खाली हल चला दिये। (परंतु सन्तसेवाके प्रतापसे बिना बोये भी खेतमें गेहूँ बढ़िया जमा, अतः) पास-पड़ोसके किसान इनके खेतकी बड़ाई करते थे। (जब श्रीधन्नाजीने जाकर देखा तो) साधुसेवाकी प्रीतिरीति एवं प्रतीतिको प्रत्यक्ष पाया। इस बातको सुनकर संसारके लोग आश्चर्य मानते हैं कि बोया कहीं अन्यत्र गया और उपजा कहीं अन्यत्र॥ ६२॥

*श्रीधन्नाजीके पावन चरितका वर्णन इस प्रकार है—*

श्रीधन्नाजीके बाल्यकालकी घटना है—एक बार एक वैष्णव ब्राह्मण (श्रीत्रिलोचनजी) इनके घर आये। वे श्रीठाकुरजीकी सेवा बड़ी सुन्दर विधिसे करते थे। सेवाके समय बालक धन्ना भी वहीं आ गया और बोला कि मुझे भी श्रीठाकुरजीकी सेवा दीजिये, मेरी भी श्रीठाकुरसेवामें बड़ी प्रीति है। पण्डितजीने एक गोल पत्थर देकर कहा कि खूब प्रेमसे सेवा करना। बालक धन्नाने पत्थरको ही श्रीठाकुरजी समझकर हृदयसे लगा लिया और प्रेमपूर्वक भगवान्की सेवा करने लगा। भगवान्के आगे भोगके लिये रोटी रखकर, परदा करके आँखें बन्द कर लिया। थोड़ी देर बाद परदा खोलकर देखा तो भगवान्ने एक टुकड़ा भी रोटी नहीं खायी थी। तब धन्नाको बड़ा भय हुआ।

श्रीधन्नाजी बारंबार भगवान्के पाँवोंमें पड़कर अनुनय-विनय करने लगे। इतनेपर भी जब भगवान् नहीं पाये तो ये भी अड़ गये कि आप नहीं खायेंगे तो मैं भी नहीं खाऊँगा। फिर भी नहीं पाये तो ये भी उस दिन भूखे-प्यासे रह गये। धन्नाजीके हृदयका भाव सच्चा था, अतः प्रभुने इनके द्वारा अर्पित रोटियाँ पायीं। भगवान्को रोटियाँ बहुत ही प्यारी लगीं। श्रीधन्नाजी नित्य-प्रति जंगलमें गायें चराने जाते थे। इनको वहीं छाक आती तो ये बड़े प्रेमसे भगवान्को भोग लगाते। भगवान् पा करके छोड़ देते थे, वही यह भी पाते

थे। प्रीतिकी रीति कुछ ऐसी ही विलक्षण होती है।

एक दिन भगवान्‌ने श्रीधन्नाजीसे कहा—देखो धन्ना! जो कोई जिसका खाता है, वह उसकी सेवा भी अच्छी तरह करता है। अतः मुझे भी कोई सेवा बताओ। श्रीधन्नाजीके मना करनेपर भी श्रीठाकुरजी इनकी गायें रोज चराने लगे। एक वर्ष बाद वे ब्राह्मण फिर इनके यहाँ आये, परंतु घरमें सेवा-पूजाकी प्रीति-रीति कहीं खोजनेपर भी नहीं पाये। पूछनेपर श्रीधन्नाजीने कहा कि भगवान् गैया चराने गये हैं। पण्डितजीको विश्वास नहीं हो रहा था, कारण कि सेवा-पूजा करते-करते जन्म बीत गया और आजतक दर्शन नहीं हुआ था। फिर पण्डितजीकी प्रार्थनापर श्रीधन्नाजीने उन्हें भी भगवान् श्यामसुन्दरका दर्शन करा दिया।

फिर घर आकर श्रीधन्नाजीपर कृपा करके श्रीभगवान्‌ने आज्ञा दी कि तुम श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजीके पास जाओ और उन्हें अपना गुरु बनाओ अर्थात् उनसे विधि-पूर्वक मन्त्रदीक्षा ले लो। श्रीधन्नाजी जाकर श्रीस्वामीजीके शिष्य हो गये। शिष्य होनेपर भगवान्‌ने उन्हें हृदयसे लगा लिया। फिर श्रीधन्नाजी घरके सब काम-काज करते हुए भगवदाराधन करते रहे।

*श्रीप्रियादासजीने धन्नाजीके चरित्रोंका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—*

**खेत की तो बात कही प्रगट कवित्त माँझ और एक सुनौ भई प्रथम जू रीति है।**
**आयौ साधु विप्रधाम सेवा अभिराम करै ढर्‌यौ ढिंग आय कही मोहूँ दीजै प्रीति है॥**
**पाथर लै दियो, अति सावधान कियौ, छाती महँ लाय जियो सेवै जैसी नेह नीति है।**
**रोटी धरि आगे आँखि मूँदि लियौ परदाकै छियौ नहिं टूक देखि भई बड़ी भीति है॥ ३०६॥**
**बार बार पाँव परै अरै भूख प्यास तजी धरै हियै साँचौ भाव पाई प्रभु प्यारियै।**
**छाक नित आवै नीकै भोगको लगावै जोई छोड़ै सोई पावैं प्रीति रीति कछु न्यारियै॥**
**जाकौ कोऊ खाय ताकी टहल बनाय करै ल्यावत चराय गाय हरि उर धारियै।**
**आयौ फिरि विप्र नेह खोजहूँ न पायौ कहूँ सरसायौ बातैं लै दिखायौ स्याम ज्यारियै॥ ३०७॥**
**द्विज लखि गायनिमें चायनि समात नाहिं भायनिकी चोट दृग लागी नीर झरी है।**
**जायकै भवन सीता रँवन प्रसन्न करैं बड़े भाग मानि प्रीति देखी जैसी करी है॥**
**धनाकौ दयाल ह्वै कै आज्ञा प्रभु दई ढरौ करौ गुरु रामानन्द भक्ति मति हरी है।**
**भए शिष्य जाय आप छातीसों लगाय लिये किये गृह काम सबै सुनी जैसी धरी है॥ ३०८॥**

## श्रीसेनजी

**प्रभू दास के काज रूप नापित को कीनो।**
**छिप्र छुरहरी गही पानि दर्पन तहँ लीनो॥**
**तादृस ह्वै तिहिं काल भूप के तेल लगायो।**
**उलटि राव भयो सिष्य प्रगट परचो जब पायो॥**
**स्याम रहत सनमुख सदा ज्यों बच्छा हित धेन के।**
**बिदित बात जग जानिए हरि भए सहायक सेन के॥ ६३॥**

यह बात सर्वप्रसिद्ध है, सारा संसार जानता है कि श्रीभगवान् परम भागवत श्रीसेनजीके सहायक हुए। भक्तवत्सल प्रभुने अपने भक्त (सेनजी)-के लिये नाईका रूप बनाया और अत्यन्त शीघ्र बगलमें छुड़हरी लटकाये हाथमें दर्पण लिये ठीक सेनजीके समान ही रूप धारण करके जाकर राजाको तेलकी

मालिश की। जब राजाने यह रहस्य जाना तो वह उलटे श्रीसेनजीका ही शिष्य बन गया। जैसे नवीन ब्यायी हुई गाय हमेशा अपने बछड़ेके हितके लिये सामने ही रहती है, उसी प्रकार भगवान् श्रीश्यामसुन्दरजी श्रीसेनजीके हितके लिये सदा उनके सन्मुख ही बने रहते थे॥ ६३॥

***श्रीसेनजीसे सम्बन्धित कुछ विवरण इस प्रकार है—***

पाँच-छः सौ साल पहलेकी बात है। बघेलखण्डका बान्धवगढ़ नगर अत्यन्त समृद्ध था। महाराज वीरसिंह वहाँके राजा थे। इसी नगरमें एक परम सन्तोषी, उदार, विनयशील व्यक्ति रहते थे; उनका नाम था सेन। राजपरिवारसे उनका नित्यका सम्पर्क था; भगवान्‌की कृपासे दिनभरकी मेहनत-मजदूरीसे जो कुछ भी मिल जाता था, उसीसे परिवारका भरण-पोषण और सन्त-सेवा करके वे निश्चिन्त हो जाते थे।

वे नित्य प्रातःकाल स्नान, ध्यान और भगवान्‌के स्मरणपूजन और भजनके बाद ही राजसेवाके लिये घरसे निकल पड़ते थे और दोपहरको लौट आते थे। जातिके नाई थे। राजाका बाल बनाना, तेल लगाकर स्नान कराना आदि ही उनका दैनिक काम था। एक दिन वे घरसे निकले ही थे कि उन्होंने देखा एक भक्तमण्डली मधुर-मधुर ध्वनिसे भगवान्‌के नामका संकीर्तन करती उन्हींके घरकी ओर चली आ रही है। सेनने प्रेमपूर्वक सन्तोंको घर लाकर उनकी यथाशक्ति सेवा-पूजा की और सत्संग किया।

उधर महाराज वीरसिंहको प्रतीक्षा करते-करते अधिक समय बीत गया। इतनेमें सेन नाईके रूपमें स्वयं लीलाविहारी राजमहलमें पहुँच गये। सदाकी भाँति उनके कंधेपर छुरे, कैंची तथा अन्य उपयोगी सामान तथा दर्पण आदिकी छोटी-सी पेटी लटक रही थी। उन्होंने राजाके सिरमें तेल लगाया, शरीरमें मालिश की, दर्पण दिखाया। उनके कोमल करस्पर्शसे राजाको आज जितना सुख मिला, उतना और पहले कभी अनुभवमें नहीं आया था। सेन नाई बने भगवान् राजाकी पूरी-पूरी परिचर्या और सेवा करके चले गये।

उधर जब भक्तमण्डली चली गयी तो थोड़ी देरके बाद भक्त सेनको स्मरण हुआ कि मुझे तो राजाकी सेवामें भी जाना है। उन्होंने आवश्यक सामान लिया और डरते-डरते राजपथपर पैर रखा। वे चिन्ताग्रस्त थे, राजाके बिगड़नेकी बात सोचकर वे डर रहे थे।

'कुछ भूल तो नहीं आये?' एक साधारण राजसैनिकने टोक दिया।

'नहीं तो, अभी तो राजमहल ही नहीं जा सका।' सेन आश्चर्यचकित थे।

'आपको कुछ हो तो नहीं गया है? मस्तिष्क ठीक-ठिकाने तो है न?' 'भगवान्‌के भक्त कितने सीधे-सादे होते हैं, इसका पता तो आज ही चल सका।' सैनिक कहता गया। 'आज तो राजा आपकी सेवासे इतने अधिक प्रसन्न हैं कि इसकी चर्चा सारे नगरमें फैल रही है।' सैनिक आगे कुछ न बोल सका।

सेनको पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि मेरी प्रसन्नता और सन्तोषके लिये भगवान्‌को मेरी अनुपस्थितिमें नाईका रूप धारण करना पड़ा। वे अपने-आपको धिक्कारने लगे कि एक तुच्छ-सी सेवापूर्तिके लिये शोभानिकेतन श्रीराघवेन्द्रको बहुरूपिया बनना पड़ा। प्रभुको इतना कष्ट उठाना पड़ा! उन्होंने भगवान्‌के चरण-कमलका ध्यान किया, मन-ही-मन प्रभुसे क्षमा माँगी।

उनके राजमहलमें पहुँचते ही राजा वीरसिंह बड़े प्रेम और विनय तथा स्वागत-सत्कारसे मिले, भगवान्‌के साक्षात्कारका प्रभाव जो था। भक्त सेनने बड़े संकोचसे विलम्बके लिये क्षमा माँगी, सन्तोंके अचानक मिल जानेकी बात कही। दोनोंने एक दूसरेका जीभर आलिंगन किया। राजाने सेनके चरण पकड़ लिये। वीरसिंहने कहा—'राजपरिवार जन्म-जन्मतक आपका और आपके वंशजोंका आभार मानता रहेगा। भगवान्ने आपकी ही प्रसन्नताके लिये मंगलमय दर्शन देकर हमारे असंख्य पाप-तापोंका अन्त किया है।'

***श्रीप्रियादासजीने श्रीसेनजीकी सन्तसेवानिष्ठा और भगवान्‌की कृपाका इस प्रकार वर्णन किया है—***

मालिश की। जब राजाने यह रहस्य जाना तो वह उलटे श्रीसेनजीका ही शिष्य बन गया। जैसे नवीन ब्यायी हुई गाय हमेशा अपने बछड़ेके हितके लिये सामने ही रहती है, उसी प्रकार भगवान् श्रीश्यामसुन्दरजी श्रीसेनजीके हितके लिये सदा उनके सन्मुख ही बने रहते थे॥ ६३॥

***श्रीसेनजीसे सम्बन्धित कुछ विवरण इस प्रकार है—***

पाँच-छ: सौ साल पहलेकी बात है। बघेलखण्डका बान्धवगढ़ नगर अत्यन्त समृद्ध था। महाराज वीरसिंह वहाँके राजा थे। इसी नगरमें एक परम सन्तोषी, उदार, विनयशील व्यक्ति रहते थे; उनका नाम था सेन। राजपरिवारसे उनका नित्यका सम्पर्क था; भगवान्‌की कृपासे दिनभरकी मेहनत-मजदूरीसे जो कुछ भी मिल जाता था, उसीसे परिवारका भरण-पोषण और सन्त-सेवा करके वे निश्चिन्त हो जाते थे।

वे नित्य प्रात:काल स्नान, ध्यान और भगवान्‌के स्मरणपूजन और भजनके बाद ही राजसेवाके लिये घरसे निकल पड़ते थे और दोपहरको लौट आते थे। जातिके नाई थे। राजाका बाल बनाना, तेल लगाकर स्नान कराना आदि ही उनका दैनिक काम था। एक दिन वे घरसे निकले ही थे कि उन्होंने देखा एक भक्तमण्डली मधुर-मधुर ध्वनिसे भगवान्‌के नामका संकीर्तन करती उन्हींके घरकी ओर चली आ रही है। सेनने प्रेमपूर्वक सन्तोंको घर लाकर उनकी यथाशक्ति सेवा-पूजा की और सत्संग किया।

उधर महाराज वीरसिंहको प्रतीक्षा करते-करते अधिक समय बीत गया। इतनेमें सेन नाईके रूपमें स्वयं लीलाविहारी राजमहलमें पहुँच गये। सदाकी भाँति उनके कंधेपर छुरे, कैंची तथा अन्य उपयोगी सामान तथा दर्पण आदिकी छोटी-सी पेटी लटक रही थी। उन्होंने राजाके सिरमें तेल लगाया, शरीरमें मालिश की, दर्पण दिखाया। उनके कोमल करस्पर्शसे राजाको आज जितना सुख मिला, उतना और पहले कभी अनुभवमें नहीं आया था। सेन नाई बने भगवान् राजाकी पूरी-पूरी परिचर्या और सेवा करके चले गये।

उधर जब भक्तमण्डली चली गयी तो थोड़ी देरके बाद भक्त सेनको स्मरण हुआ कि मुझे तो राजाकी सेवामें भी जाना है। उन्होंने आवश्यक सामान लिया और डरते-डरते राजपथपर पैर रखा। वे चिन्ताग्रस्त थे, राजाके बिगड़नेकी बात सोचकर वे डर रहे थे।

'कुछ भूल तो नहीं आये?' एक साधारण राजसैनिकने टोक दिया।

'नहीं तो, अभी तो राजमहल ही नहीं जा सका।' सेन आश्चर्यचकित थे।

'आपको कुछ हो तो नहीं गया है? मस्तिष्क ठीक-ठिकाने तो है न?' 'भगवान्‌के भक्त कितने सीधे-सादे होते हैं, इसका पता तो आज ही चल सका।' सैनिक कहता गया। 'आज तो राजा आपकी सेवासे इतने अधिक प्रसन्न हैं कि इसकी चर्चा सारे नगरमें फैल रही है।' सैनिक आगे कुछ न बोल सका।

सेनको पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि मेरी प्रसन्नता और सन्तोषके लिये भगवान्‌को मेरी अनुपस्थितिमें नाईका रूप धारण करना पड़ा। वे अपने-आपको धिक्कारने लगे कि एक तुच्छ-सी सेवापूर्तिके लिये शोभानिकेतन श्रीराघवेन्द्रको बहुरूपिया बनना पड़ा। प्रभुको इतना कष्ट उठाना पड़ा! उन्होंने भगवान्‌के चरण-कमलका ध्यान किया, मन-ही-मन प्रभुसे क्षमा माँगी।

उनके राजमहलमें पहुँचते ही राजा वीरसिंह बड़े प्रेम और विनय तथा स्वागत-सत्कारसे मिले, भगवान्‌के साक्षात्कारका प्रभाव जो था। भक्त सेनने बड़े संकोचसे विलम्बके लिये क्षमा माँगी, सन्तोंके अचानक मिल जानेकी बात कही। दोनोंने एक दूसरेका जीभर आलिंगन किया। राजाने सेनके चरण पकड़ लिये। वीरसिंहने कहा—'राजपरिवार जन्म-जन्मतक आपका और आपके वंशजोंका आभार मानता रहेगा। भगवान्‌ने आपकी ही प्रसन्नताके लिये मंगलमय दर्शन देकर हमारे असंख्य पाप-तापोंका अन्त किया है।'

***श्रीप्रियादासजीने श्रीसेनजीकी सन्तसेवानिष्ठा और भगवान्‌की कृपाका इस प्रकार वर्णन किया है—***

'बांधौगढ़' बास हरि साधु सेवा आस लगी पगी मति अति प्रभु परचौ दिखायौ है।
करि नित्त नेम चल्यौ भूपकौ लगाऊँ तेल भयो मग मेल सन्त फिरि घर आयौ है॥
टहल बनाय करी नृपकी न संक करी धरी उर श्याम जाय भूपति रिझायौ है।
पाछे सेन गयौ पंथ पूछै हिये रंग छायौ भयौ अचरज राजा बचन सुनायौ है॥ ३०९॥
फेरि कैसे आये? सुनि अति ही लजाये कही सदन पधारे सन्त भई यों अबार है।
आवन न पायों वाही सेवा अरुझायौ राजा दौरि सिर नायौ देखि महिमा अपार है॥
भीजि गयौ हियौ दास भव दृढ़ लियौ पियौ भक्तिरस शिष्य ह्वै के जान्यो सोई सार है।
अब लौं हूं प्रीति सुत नाती वही रीति चलैं होय जौं प्रतीति प्रभु पावै निरधार है॥ ३१०॥

## श्रीसुखानन्दजी

**सुखसागर की छाप राग गौरी रुचि न्यारी।**
**पद रचना गुरु मंत्र मनों आगम अनुहारी॥**
**निसि दिन प्रेम प्रबाह द्रवत भूधर ज्यों निर्झर।**
**हरि गुन कथा अगाध भाल राजत लीला भर॥**
**संत कंज पोषन बिमल अति पियूष सरसी सरस।**
**भक्ति दान भय हरन भुज सुखानंद पारस परस॥ ६४॥**

श्रीसुखानन्दजीकी भुजा आश्रितजनोंको भक्तिका दान देनेवाली और संसारका भय हरनेवाली थी और इनका स्पर्श लौहवत् विमुख, दुष्टजनोंको स्वर्णवत् साधु सदाचारी बनानेके लिये पारसमणिके समान था। ये अपने पदोंमें 'सुखसागर' की छाप लगाते थे। राग गौरीमें इनकी विलक्षण रुचि थी। इनके द्वारा रचे गये पद मानो गुरुमन्त्रतुल्य होते थे तथा इनकी रचना शास्त्रसम्मत होती थी। इनके हृदयमें निरन्तर प्रेमका प्रवाह उमड़ता रहता था और इनकी आँखोंसे ऐसा अविरल अश्रुपात होता रहता था, जैसे पहाड़से झरना झर रहा हो। भगवान्के अनन्त गुण, कथा तथा लीलासे परिपूर्ण इनका उन्नत ललाट अत्यन्त सुशोभित लगता था। ये सन्तसमुदायरूपी कमलवनका पोषण करनेके लिये सूर्य तथा अत्यन्त निर्मल, सरस अमृतके सरोवरके समान थे॥ ६४॥

***श्रीसुखानन्दजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—***

श्रीसुखानन्दजीका जन्म उज्जैनके समीप किरीटपुर नामक स्थानपर श्रीजानकीनवमीके दिन हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीत्रिपुरारिभट्ट और माताका नाम श्रीगोहावरीबाई था। आपके बचपनका नाम चन्द्रहरि था। जन्मसे ही आप योगसिद्ध महात्मा थे और आपके नेत्र अर्धनिमीलित रहते थे। बचपनसे ही आपमें भक्तिके संस्कार प्रबल थे। आप प्रतिदिन माँकी अँगुली पकड़कर पासके मन्दिरमें भगवान्के दर्शन करने जाया करते और जब थोड़ा बड़े हो गये तो स्वयं अकेले ही जाकर दर्शन कर आते थे। यह आपका नित्य कृत्य था।

बचपनसे ही आपके जीवनमें अनेक चमत्कारी घटनाएँ घटीं। जब आप बालक थे और घुटनोंके बल चलते थे तो एक बार माँकी गोदसे उतरकर एक वृक्षके पीछे जाकर बैठ गये, थोड़ी देर बाद माता-पिताका जब उधर ध्यान गया तो देखा कि इनके सिरपर एक नाग फन फैलाये बैठा है। पिताके प्रार्थना करनेपर वह थोड़ी दूर जाकर अदृश्य हो गया। जब आप पढ़नेके लिये विद्यालय जाने लगे तो थोड़े ही समयमें आपने सम्पूर्ण श्रुति-शास्त्रोंका सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लिया और अपने विद्यागुरुसे कहा कि मुझे उस अक्षरका ज्ञान कराइये जो अक्षरातीतकी प्राप्ति करानेवाला हो। उपर्युक्त घटनाओंसे आपके माता-पिता और गुरुका

पूर्ण विश्वास हो गया कि आप कोई अवतारी महापुरुष हैं, साधारण बालक नहीं।

एक दिन एक ज्योतिषीने आपके विषयमें आपके माता-पितासे बताया कि ये एक अलौकिक विभूति हैं, परंतु ध्यान रखियेगा कि अठारह सालतक ये दर्पण अथवा जलमें अपना मुख न देख सकें; अन्यथा ये विरक्त हो जायँगे। ज्योतिषीकी चेतावनी सुनकर माता-पिता इस विषयमें विशेष सावधान रहते थे। संयोगसे एक दिन श्रीत्रिपुरारिजी शिप्रानदीमें स्नान करने गये थे, इधर रंगराज दीक्षित नामक पण्डितका एक दूत आकर आपसे वार्षिक कर माँगने लगा। जब आपने पूछा कि यह किस बातका कर है, तो उसने बताया कि आपके पितामह पण्डित श्रीरंगराजजीसे शास्त्रार्थमें पराजित हो गये थे, तबसे वे उन्हें वार्षिक कर देते रहे, यह परम्परा अभी भी चल रही है। इसपर आपने कहा कि श्रीरंगराजजीसे कहियेगा कि मैं आजके चौथे दिन आपसे शास्त्रार्थ करने आऊँगा। निश्चित समयपर आप रंगराजजीके यहाँ शास्त्रार्थके लिये गये और उन्हें पराजित करके वार्षिक कर देनेवाले सभी पण्डितोंका संकट दूर किया। जब श्रीत्रिपुरारिजीने इस शुभ समाचारको सुना तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और इस उपलक्ष्यमें उन्होंने बड़ा भारी उत्सव आयोजित किया। संयोगकी बात उसी दिन चन्द्रहरिकी दृष्टि जब जलमें पड़ी तो उन्हें उसमें अपने मुखका प्रतिबिम्ब दिखायी दे गया। फिर तो ये जगत्से उदासीन हो गये और रात्रिमें घर छोड़कर चल दिये। पिताने बहुत आग्रह किया, समझाया-बुझाया पर ये घर वापस नहीं आये। अन्तमें त्रिपुरारिजीने श्रीपंचोलीजी नामक एक परम विश्वासी व्यक्तिको इनके साथ कर दिया। एक रात स्वप्नमें आपको काशी जानेका दिव्यादेश प्राप्त हुआ। स्वप्नकी बात जब आपने श्रीपंचोलीजीसे बतायी तो उन्होंने श्रीरामानन्दजीकी चर्चा की। श्रीआचार्यचरणकी चर्चा सुनते ही आपका मन श्रीस्वामीजीके दर्शनके लिये आकुल-व्याकुल हो उठा और आप श्रीकाशीजीके लिये चल दिये। मार्गमें ही आपको श्रीरामभारती नामक एक संन्यासी मिले, इन्होंने आपको अधिकारी समझकर अष्टांग योगका ज्ञान दिया। अल्पकालमें ही आपने समस्त यौगिक क्रियाएँ सिद्ध कर लीं।

कुछ दिनों बाद आप श्रीरामभारतीजीके साथ स्वामी रामानन्दाचार्यजीके आश्रमपर गये और श्रीस्वामीजीकी शरण ली। श्रीस्वामीजीने आपका विधिपूर्वक पंच संस्कार करके श्रीराम-मन्त्रकी दीक्षा दी और चन्द्रहरिके स्थानपर 'सुखानन्द' नाम रख दिया। आप कुछ कालतक काशीमें ही रहकर श्रीआचार्यचरणकी सेवा करते रहे फिर उनके आदेशसे चित्रकूटमें रामशय्या नामक स्थानपर रहकर भजन-साधन करने लगे।

श्रीसुखानन्दजी महाराज एक सिद्ध सन्त थे, उनके चमत्कारोंकी अनेक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं; परंतु उनके चमत्कार अपनी प्रसिद्धिके लिये नहीं, अपितु दूसरोंका कल्याण करनेके लिये हुआ करते थे। कहते हैं कि एक बार एक पापी-दुराचारी व्यक्तिके सिरपर आपने हाथ रख दिया था, जिससे उसके अन्तःकरणकी मलिनता समाप्त हो गयी और वह भक्त हो गया।

एक बारकी बात है, आप एकान्त वनमें बैठकर भगवान्का ध्यान कर रहे थे, ध्यानमें आनन्दविभोर होकर आप गौरी रागमें एक भजन गाने लगे। आपकी अमृतमयी मधुर स्वरलहरी वन-प्रान्तको गुंजित करने लगी, जिसे सुनकर वनके समस्त मृग मुग्ध हो गये और आपके पास आकर खड़े हो गये। उसी समय एक राजकुमार शिकार खेलता हुआ वहाँ आ निकला और मृगोंको मारनेका उपक्रम करने लगा। आपने उसे रोका पर राजमदमें उसने परवाह न की; परिणामस्वरूप सभी मृग सिंह बनकर उस राजकुमारपर झपट पड़े। डरके मारे राजकुमारके हाथसे अस्त्र-शस्त्र छूटकर गिर पड़े और वह स्वयं भी मूर्च्छित हो गया, पुनः चैतन्य होनेपर उसने आपके चरणोंमें पड़कर क्षमा-याचना की और हिंसाप्रधान स्वभाव छोड़कर भक्त बन गया।

श्रीसुखानन्दजी महाराज भगवद्भक्तिका प्रचार-प्रसार करनेके लिये सन्त-मण्डली लेकर देश-देशान्तरमें

प्राय: भ्रमण करते रहते थे। भ्रमण करते हुए एक बार आप एक गाँवमें पहुँचे और एक विशाल वट वृक्षके नीचे ठहर गये। आपका नियम था कि आप किसीसे कुछ याचना नहीं करते थे, भगवत्कृपासे सब व्यवस्था हो जाया करती थी, परंतु उस दिन भोजनका समय हो जानेपर भी गाँववालोंकी ओरसे कुछ भी सीधा-सामान नहीं आया। सन्तोंको भूखा जानकर आपने श्रीभगवान्का ध्यान किया और भगवन्नाम-संकीर्तन शुरू किया। आपके संग-संग सन्त-समाज भी आनन्दविभोर होकर कीर्तन करने लगा। कीर्तनकी यह ध्वनि जब गाँववालोंके कानमें पड़ी तो वे भी मन्त्र-मुग्ध हो गये और बरबस खिंचे चले आये। बहुत देरतक श्रीहरि-कीर्तन होता रहा, गाँववाले भी आनन्दमग्न थे, उन्हें ऐसे अनिर्वचनीय सुखकी कभी अनुभूति नहीं हुई थी। थोड़ी देर बाद जब उन्हें इस बातका ज्ञान हुआ कि सन्तोंने अभी प्रसाद नहीं पाया है, तो सभी बहुत लज्जित हुए और बात-की-बातमें खाद्य-सामग्रीका पहाड़-सा ढेर लग गया। पूरा गाँव भगवद्भक्तिके रंगमें रँग गया। ऐसा था आपका विराट् व्यक्तित्व और अद्भुत चरित।

कहते हैं कि जब आपके भगवद्धाम जानेका समय हुआ तो स्वयं श्रीहनुमान्जी प्रकट हुए और आप उन्हींमें लीन हो गये।

## श्रीसुरसुरानन्दजी

**एक समै पथ चलत बाक्य छल बरा सुपाए।**
**देखादेखी सिष्य तिनहुँ पाछै ते खाए॥**
**तिन पर स्वामी खिजे बमन करि बिन बिस्वासी।**
**तिन तैसे परतच्छ भूमि पर कीनी रासी॥**
**सुरसुरी सुवर पुनि उदगले पुहुप रेनु तुलसी हरी।**
**महिमा महाप्रसाद की सुरसुरानंद साँची करी॥ ६५॥**

श्रीसुरसुरानन्दजीने भगवान्के महाप्रसादकी शास्त्रोक्त महिमाको सत्य करके दिखा दिया। एक बार मार्गमें चलते समय एक दुष्टके वाक्छलसे दही-बड़ा पा लिया। आपकी देखा-देखी शिष्योंने भी बादमें खूब पेटभर पाया। तब उन लोगोंपर श्रीस्वामी सुरसुरानन्दजी नाराज होकर बोले कि तुमलोगोंने प्रसादमें बिना विश्वासके ही स्वादबुद्धिसे दही-बड़ा खाया, अत: वमन करो। उन लोगोंने वमन करके जैसा-का-तैसा पृथ्वीपर प्रत्यक्ष बड़ोंका ढेर लगा दिया। इसके बाद परमसाधु श्रीसुरसुरीजीके पतिने वमन किया तो उनके उदरसे हरी तुलसी, फूल और रेणु निकली। प्रसादबुद्धिसे पानेसे उड़दका बड़ा ***'पुहुप रेनु तुलसी हरी'*** हो गया था॥ ६५॥

***श्रीसुरसुरानन्दजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—***

श्रीसुरसुरानन्दजी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके शिष्य थे। आपका बचपनका नाम भायण कुमार था। आपका जन्म वैशाख कृष्ण नवमी, गुरुवारको लखनऊके समीप परखम नामक ग्राममें हुआ था। आपके पिताका नाम पण्डित सुरेश्वरजी शर्मा और माताका नाम श्रीमती देवीजी था। बचपनसे ही आपमें भक्तिके संस्कार विद्यमान थे। उपनयन-संस्कारके समय जब इनको गायत्री मन्त्रकी दीक्षा दी गयी, तो उनके मनमें इसके प्रति अद्भुत आकर्षण जग गया और उन्होंने उसी समय गायत्री पुरश्चरणका संकल्प ले लिया। माता भगवतीकी कृपासे आपका पुरश्चरण निर्विघ्न पूर्ण हो गया और उससे आपके हृदयमें ऐसा वैराग्यभाव जाग्रत् हुआ कि आपने घर छोड़कर काशीके लिये प्रस्थान कर दिया।

'श्रीरामानन्दाचार्यचरितामृत' में श्रीसुरसुरानन्दजीको देवर्षि नारदका अवतार कहा गया है। कहते हैं कि आपके सभी शुभ संस्कारोंके अवसरपर एक नारायण नामके ब्राह्मण आया करते थे, जो अपने-आपको इनका

मामा बताया करते थे। वे उत्सवमें सम्मिलित होनेके बाद कहाँसे आते और कहाँ जाते थे—यह किसीको ज्ञात नहीं होता था। काशी-प्रस्थानके समय भी उन्होंने ही आपको श्रीरामानन्दाचार्यजीकी शरणमें जानेकी प्रेरणा दी थी।

काशी पहुँचकर आपने स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजसे दीक्षाहेतु निवेदन किया और साथ ही अपने नारायण नामधारी तथा कथित मामाके विषयमें भी जानकारी चाही। श्रीस्वामीजीने कहा कि धैर्य रखो, समय आनेपर स्वयं ही सब रहस्योद्घाटन हो जायगा।

दूसरे दिन सत्संगके समय श्रीरामानन्दाचार्यजीने शंखध्वनि की, उस दिव्य ध्वनिके श्रवणरन्ध्रोंमें प्रवेश करते ही आप मूर्च्छित हो गये। उसी अवस्थामें आपको अव्यक्त वाणी सुनायी दी कि नारदरूपमें मायाके वशीभूत होकर तुम विवाह करना चाहते थे, परंतु मैंने तुम्हें विवाह नहीं करने दिया, जिससे क्षुभित होकर तुमने मुझे शाप दे दिया, जिसे चरितार्थ करनेके लिये मैंने श्रीरामावतार धारण किया। यद्यपि मेरे समझानेसे तुम्हारी विवाहकी इच्छा समाप्त हो गयी, पर संस्काररूपमें वह तुम्हारे मनमें बनी रही; अतः इस जन्ममें तुम्हारी यह इच्छा पूरी की जायगी।

अब आपको अपने स्वरूपका बोध हो चुका था, साथ ही नारायणकी कृपा एवं नारायण नामधारी अपने मामाके रहस्यका भी उद्घाटन हो चुका था। आपके गाँवमें ही सुरसरी नामकी मातृपितृहीना ब्राह्मण बालिका रहती थी। उसने मनसा अपने-आपको आपके ही चरणोंमें समर्पित कर रखा था। जब उसे आपके काशीगमनका समाचार मिला तो वह भी काशी आ गयी और उसने भी श्रीस्वामीजीके चरणोंमें प्रणिपात करके परमार्थकी भिक्षा माँगी। श्रीस्वामीजीने उसे 'सौभाग्यवती भव' का आशीर्वाद दिया। फिर आप दोनोंको दीक्षा दी तथा पूर्वस्वरूपका बोध कराया। तत्पश्चात् श्रीस्वामीजीने आप दोनोंको परिणय-सूत्रमें निबद्ध कराया और भजन करनेका आदेश दिया। आप दोनों श्रीआचार्यचरणकी आज्ञा और आशीर्वाद ले अपने गाँव चले आये और वैदिक विधिसे विवाहकर भगवदाराधन और भक्तिभावमें प्रवृत्त हो गये। सुरसरीजी परम सती पतिव्रता नारी थीं। पतिके भावको समझकर उन्होंने भी वैराग्यपूर्वक सांसारिकताको त्याग दिया और दोनों पति-पत्नीने भी गृहत्यागकर वनको प्रस्थान किया। कुछ ही दिनों बाद श्रीसुरसुरीजीका महाप्रयाण हो गया और श्रीसुरसुरानन्दजी पुनः आचार्यचरणोंकी सेवामें काशी आ गये।

जिस समय आप आचार्य-चरणोंकी सेवा करते हुए काशीवास कर रहे थे, उस समय दक्षिण भारतमें अलाउद्दीन खिलजीका सेनापति मलिक काफूर हिन्दुओंपर कहर बरपा रहा था। श्रीस्वामीजीकी आज्ञासे हिन्दू तीर्थोंकी रक्षाके लिये आपने दक्षिण भारतकी यात्रा की और अपने सिद्धिबलसे मलिक काफूरको स्वप्नमें पैगम्बर हजरत मोहम्मद साहबसे उपदेश दिलाया कि हिन्दू और मुसलमान दोनोंका खुदा एक ही है, अतः तुम उपद्रव बन्द करो और श्रीसुरसुरानन्दजी जो कहें, वही करो। अब मलिक काफूरकी नींद काफूर हो चुकी थी, वह नंगे पैर दौड़ता श्रीसुरसुरानन्दजीके पास गया और उनके चरणोंमें पड़कर अपने अपराधके लिये क्षमा माँगने लगा। आपने उसे क्षमाकर उपदेश दिया, जिससे वह बहुत ही प्रभावित हुआ और सारे अत्याचार बन्द कर दिये। इस प्रकार आपने दक्षिण भारतमें अमन-चैनकी स्थापना की।

जीवनके अन्तिम कालमें आप श्रीअयोध्याजी चले आये और यहीं श्रीसरयूपुलिनपर श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नका दर्शन करते हुए दिव्य धाम साकेतको प्रस्थान कर गये।

## श्रीसुरसुरीजी

**अति उदार दंपती त्यागि गृह बन को गवने।**
**अचरज भयो तहँ एक संत सुन जिन हो बिमने॥**